TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_176381
UNIVERSAL
LIBRARY

O-i—…- - -4-8. -11, 00.

. OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Cl N. H81 P12M Ac sion No. P.G. H2141

Author पद्मावती शबनम

Title मीरा, एक अध्ययन. 1947.

This book should be returned on or before the date last marked below

मीराँ, एक अध्ययन

पद्मावती 'शबनम'

प्रकाशक
लोक-सेवक-प्रकाशन
बी २०/४७ ए, भेलूपुर
बनारस

प्रथम संस्करण
दीपावली सं० २००७ वि०
मूल्य ३।।)

चित्रकार
श्री इन्द्र दूगड़

मुद्रक
युनाइटेड कमर्शियल प्रेस, लि०
३२, सर हरिराम गोयनका स्ट्रीट
कलकत्ता

शिव को !

'शबनम' !

आलोचना व निबन्ध

वक्तव्य

आज, लेखनी उठाते उठाते सुदूर अतीत आँखों में नाच उठता है। माता-पिता की स्नेहमयी छत्रछाया, पितृ-कुल का सुरुचि और सुशिक्षा-पूर्ण वातावरण एक बार फिर सहसा ही प्रत्यक्ष हो उठता है। माता-पिता प्रदत्त उस शिक्षा के कारण ही मेरे लिये आज का यह छोटा सा प्रयास सम्भव हो सका। अपने श्रद्धेय माता-पिता को मैं नमस्कार करती हूं।

चित्र के पहलू बड़ी तीव्रता के साथ बदलते जाते हैं। गुरु के आशीर्वाद और कठिन प्रयास के कारण ही लिखने की ओर प्रवृत्ति हुई, भाषा और शैली का परिमार्जन हुआ। स्निग्ध अपितु कठोर प्रयास ही मूर्तिमान प्रेरणा में परिवर्तित हुआ। स्वजनों के स्नेहमय प्रोत्साहन और सहायता के कारण ही स्वाध्याय के लिये बनाये गये 'रफ नोट्स' ने ही वर्तमान रूप धारण कर लिया। इस प्रयास में बार बार हताश होने पर बार बार प्रोत्साहित करते हुए हर तरह की सहायता व पथ-प्रदर्शन करने का सम्पूर्ण श्रेय भाई श्री नर्मदेश्वर जी चतुर्वेदी और उनके अग्रज हिन्दी के प्रख्यात विद्वान् श्री परशुराम जी चतुर्वेदी को ही है। इन दोनों सज्जनों के प्रति कृतज्ञता प्रकाश तो असम्भव ही है तथापि इनके प्रयास को भी सवथा अवगुंठित नहीं रखा जा सकता। आशा करती हूं कि आगे भी दोनों भाइयों से मुझको वैसा ही स्नेहमय साथ और पथ-प्रदर्शन मिलता रहेगा जैसा कि अद्यावधि प्राप्त हुआ।

हिन्दी के क्वचित अन्य प्रसिद्ध साहित्यिकों से भी आशीर्वाद प्राप्त हुए जिनमें बनारस-हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष श्री हजारी प्रसाद जी द्विवेदी और इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रोफेसर, डा० श्री रामकुंवार वर्मा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। अपनी अति व्यस्त दिनचर्या के बावजूद भी आप लोगों ने मेरी पुस्तक को देख कर उस पर अपनी सम्मति देने का और उसमें उचित संशोधन करने का कष्ट उठा कर मुझको प्रोत्साहित किया है। आप लोगों के पथ-प्रदर्शन और सहायता के कारण ही अपने छिटपुट लेखों को पुस्तक का वर्तमान रूप दे सकी। पुस्तक को इस रूप मे प्रकाशित कराने का श्रेय कलकत्ते के प्रसिद्ध विद्वान् भाई श्री कमलेश जी को है। इनके सहयोग और तत्परता के बिना सफलता संदिग्ध ही थी। गुरुजनों के प्रति कृतज्ञता प्रकाश करना तो धृष्टता ही होगी, अतः मैं इनको नमस्कार करती हूं। भाई श्री अवधेश जी तिवारी और अपने देवर श्री जानकी प्रसाद जी झुनझुनवाला के पूर्ण सहयोग के कारण ही पुस्तक की प्रूफ-रीडिंग जैसे कठिन कार्य को भी सम्यक प्रकारेण कर सकी। इनके स्नेहमय सहयोग के लिये कृतज्ञता-प्रकाशन या धन्यवाद दोनों ही असम्भव हैं, स्नेह का एक अपना अस्तित्व है।

यहाँ अपने प्रयास के बारे में भी कुछ थोड़ा सा कहना चाहूंगी। मीराँ के पदों की कोई हस्तलिखित प्रति प्राप्त नहीं, मौखिक परम्परा ही विभिन्न संग्रहों के सम्पादन का आधार रही है। अतः निश्चित रूपेण किसी भी पद को प्रामाणिक या प्रक्षिप्त कहना असम्भव ही है। मीराँ के नाम पर प्रचलित

बहु संख्यक पदों में भाषा और अभिव्यक्ति के आधार पर मीराँ द्वारा रचित होने में संदेह होता है, प्रामाणिक या प्रामाणिकता के निकट पहुंचने वाले पदों को छांट लेना असम्भव नहीं तो अत्यधिक दुरूह अवश्य ही है क्योंकि प्राप्त सामग्री पर्याप्त नहीं। अद्यावधि प्राप्त मीराँ का जीवन-वृत इतना अधिक पौराणिक और अपूर्ण है कि इसको निश्चित इतिहास की संज्ञा तो कदापि नहीं दी जा सकती। साथ ही प्राप्त इतिहास विरोधात्मक भी है। इतिहास के अनुसार ही मीराँ एक भक्ति-परिप्लावित युग में अवतरित हुई थीं तथापि इतिहास के आधार पर ही 'जग-हाँसी' ही मीराँ का एक मात्र पुरस्कार है। एकलिंग और भवानी के उपासक होते हुए भी वैष्णव-धर्म को प्रश्रय देने वाले, तथा निर्गुणी संतों का भी सुसम्मान करने वाले राणा परिवार में भी मीराँ का विरोध कृष्ण-पूजा मात्र के लिये हुआ हो यह असंगत ही प्रतीत होता है। यह असंगति और भी स्पष्ट हो जाती है जब कि इतिहास के अनुसार महाराणा साँगा की माता महारानी झाली ने कबीर के गुरु भाई, निर्गुणी संत-चर्मकार रविदास को गुरु बनाया था और राणा कुम्भ, प्रसिद्ध वैष्णव भक्त थे। इतना ही नहीं, मीराँ के नाम पर प्रचलित पदों से व्यक्त होती किसी भी घटना का समर्थन प्राप्त इतिहास से नहीं होता। प्राप्त वृतान्त के आधार पर मीराँ की छोटी वयस में ही उनकी माता का निधन सर्वमान्य है। परन्तु प्राप्त पदों के आधार पर मीराँ के माता-पिता का जीवित होना ही सिद्ध होता है। प्राप्त इतिहास के आधार पर यह भी अनिश्चित ही है कि मीराँ के पिता राव रतन सिंह जी जोधपुर के संस्थापक राव जोधा के पुत्र या पौत्र थे। मीराँ

के मान्य पति, अल्पजीवी भोजराज का जन्म व मृत्यु संवत् भी अनिश्चित ही है। पदों से व्यक्त होती भावनाओं के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि मीराँ की किसी ननद का नाम ऊदाँ बाई था। प्राप्त इतिहास यहाँ भी खंडनात्मक ही है।

'बंगीय-हिन्दी-परिषद' से प्रकाशित 'मीराँ-स्मृति-ग्रन्थ', पृष्ठ ४४ पर अपने लेख 'जनम जोगिण मीराँ', में प्रोफेसर शम्भूप्रसाद बहुगुना लिखते हैं, "आधुनिक इतिहास मीराँ का जो जीवन बतलाता है वह मीराँ के नाम से मिलने वाले काव्य को नहीं सुलझा सकता है, न अनुश्रुतियों का ही समाधान कर पाता है। उसका भवन खंडन तर्क पर टिका है अपने पक्ष के समर्थन में प्रमाण नहीं देता बल्कि अनुश्रुति का भी सहारा ले लेता है।"

मेरे विनम्र विचार से वर्तमान परिस्थिति में जब कि किसी भी पद को प्रामाणिक या प्रक्षिप्त सिद्ध नहीं किया जा सकता, मीराँ के नाम पर प्रचलित सभी प्राप्त पदों और प्राप्त इतिहास की समन्वयात्मक विवेचना अत्यावश्यक हो उठती है। प्राप्त पदों से व्यक्त होती घटनाओं के आधार पर इतिहास की रूप-रेखा का निर्धारण और इस तरह निर्धारित इतिहास के आधार पर, पदों की प्रामाणिकता के बारे में हम अधिक सुनिश्चित हो सकते हैं। प्रत्येक कलाकार अपनी रचना से ही अमर है। कलाकार की कृति ही उसका सत्यतम चित्र है। भावावेश में मीराँ अपने दिल के असह्य दर्द को बोल-चाल की साधारण भाषा में गा उठती हैं। उनके पदों में काव्य और अलंकार का कोई विशेष स्थान नहीं। ये पदभावनाओं के शुद्ध-चित्र हैं अतएव सत्यतम अभिव्यक्ति हैं। इन चित्रों में प्रतिबिम्बित जीवन

को ही मीराँ का सत्य-जीवन मानना चाहिये। संभव है कि इसके कारण आजकल का हमारा सर्व-मान्य ऐतिहासिक सत्य गलत पड़ जाय अतः एक बार फिर से हमको एक नया प्रयास ,एकदम नूतन दृष्टिकोण से करना पड़े। यह प्रयास भी स्तुत्य होगा।

साहित्यिक-दृष्टिकोण से महत्व रखने वाला मीराँ के पदों का सर्व-प्रथम संग्रह वेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित हुआ। इसके अनन्तर कई अन्य संग्रह प्रकाशित हुए और अव तक होते आ रहे हैं। मुझको ऐसे कुल तीस संग्रह के नाम प्राप्त हो सके परन्तु दुर्भाग्यवश बीस ही सुलभ रहे हैं। 'हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग' द्वारा स्वीकृत दो पुस्तकें, एक श्री परशुराम जी चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित 'मीराँ बाई की पदावली' की और दूसरी डाक्टर श्री कृष्ण लाल द्वारा लिखित 'मीराँ बाई' ही मेरे अध्ययन का विषय रही है। अद्यावधि 'मीराँ बाई की पदावली' ही सर्वाधिक प्रामाणिक मानी गई है। प्रस्तुत पुस्तक में दिये गये कुछ दो चार उद्धरणों को छोड़ कर शेष सभी उद्धरण 'मीराँ बाई की पदावली' से लिये गये हैं। साथ ही यह भी ख्याल रखा गया है कि अपने समर्थन में वैसे ही पद या पदाँश दिये जाँय जो कि अधिकाँश प्राप्त संग्रहों में मिलते हैं और सर्वमान्य रूपेण मीराँ के ही समझे जाते हैं। कुछ उद्धरण 'मीराँ-माधुरी' से भी दिये गये हैं जिसका उल्लेख कर दिया गया है। यद्यपि ये विशेष पद 'मीराँ बाई की पदावली' में प्राप्त नहीं हैं तथापि अन्य अधिकाँश संग्रहों में प्राप्त हो जाते हैं। कुछ अन्य उद्धरण लोक-गीतों से भी दिये गये हैं। यहाँ एक और बात भी विशेष ध्यान देने योग्य है। विभिन्न

संग्रहों में प्राप्त अधिकाँश पदों से व्यक्त होती घटनाओं को इतिहास का समर्थन प्राप्त नहीं, तथापि लोक-गीत परम्परा से सुरक्षित कुछ ऐसे पद मिलते हैं जिन से व्यक्त होती घटनाओं को इतिहास का समर्थन प्राप्त है, फिर भी ऐसे पदों को किसी भी संग्रह में स्थान नहीं मिला। संभव है कि लोक-गीत परम्परा से कुछ ऐसे और भी पद प्राप्त किये जा सकें जिनसे प्राप्त सामग्री पर विशेष प्रकाश पड़े।

मीराँ के नाम पर प्रचलित अधिकाँश पदों में हुई इस धाँधली के कारण इस बात की नितान्त आवश्यकता प्रतीत होती है कि एक ऐसा संग्रह तैयार किया जाय जो विशेष सतर्कता द्वारा सम्पादित हो। मेरे विनम्र विचार से मीराँ के नाम पर प्रचलित सभी पदों का विभिन्न पाठान्तरों सहित संग्रह कर उनकी विवेचना करने पर हम शायद एक ऐसा संग्रह प्रस्तुत करने में सफल हो सकेंगे। एक ऐसा ही प्रयास मैंने किया भी है और आशा करती हूं कि उसको भी शीघ्र ही प्रकाशित कर सकूंगी।

विशेष सतर्क रहनेका प्रयत्न करते हुए भी मेरे इस प्रथम प्रयास में अनेकों त्रुटियाँ रह गई होगीं जिनके लिये मैं सभी विज्ञ पाठकों से क्षमा चाहती हूं। साथ ही यह भी आशा रखती हूं कि विज्ञ पाठक गण अपने सुझाव और समालोचना आदि से मुझ को प्रोत्साहित करेंगे।

कलकत्ता
दीपावली सं० २००७ — पद्मावती

भूमिका

मीराँबाई, अपने पदों की लोकप्रियता के कारण, बहुत दिनों से प्रसिद्ध हैं और उनके जीवन की घटनाओं के प्रति लोगों का आकर्षण भी प्रायः उतने ही समय से निरन्तर चला आया है। उनकी गणना हिन्दी के सुविख्यात भक्त कवियों में होती आई है और उनकी विचित्र जीवनी के सम्बन्ध में विविध कल्पनाएं भी की जाती रही हैं। व्यास जी, नाभादास, ध्रुवदास जैसे भक्त लेखकों ने उनका नाम बड़े आदर के साथ लिया है और उनकी परम्परा का अनुसरण करने वाले प्रियादास एवं 'रूपकला' जी जैसे टीकाकारों ने उसे बहुत विस्तार भी दिया है कम से कम विक्रम की बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक उनका परिचय बराबर, पौराणिक भक्तों की ही भांति दिया जाता रहा और 'सरोज'कार शिवसिंह तथा गुजराती साहित्य के इतिहासज्ञ जी०एम० त्रिपाठी तक ने उसकी ऐतिहासिकता पर विचार नहीं किया और न उनको आधार मान कर चलने वाले पीछे के अन्य लेखकों का ही ध्यान इधर जा सका। ऐसे लेखकों ने मीराँबाई का महाराणा कुम्भ (मृ० सं० १५२५) की समकालीन होना अनुमान किया था और, उन्हीं की भांति जनश्रुतियों के ही आधार पर, डाक्टर ग्रियर्सन ने उन्हें मैथिल कवि विद्यापति की समसामयिक बतलाया। उधर, अन्य लोक-परम्पराओं के अनुसार वे ही मीराँबाई महाराज रघुराजसिंह तथा बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री के विचार

से, वीर जयमल (मृ० स० १६२४) की पुत्री जान पड़ी और इस प्रकार, उनका समय लगभग सौ वर्षों तक पीछे चला आया।

राजस्थान के इतिहासकारों में से कर्नल टाड की खोजों द्वारा भी पता चला कि मीराँ बाई महाराणा कुंभ की स्त्री थी और इस बात से उक्त शिवसिंह एवं त्रिपाठी के कथनों को पूर्ण समर्थन प्राप्त हो गया। परन्तु मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ, म० म० गौरीशंकर हीराचंद ओझा हरविलास सारडा तथा चतुरसिंह जैसे अन्य इस प्रकार के लेखकों को इसके कई दोष दीख पड़े। मीराँ बाई का राव जोधाजी के वंश में जन्म लेना और उनका, विशेष कर 'मेड़तणी' कहलाना भी एक अड़चन थी। मेड़ता सं० १५१८ में राव दूदाजी द्वारा, जोधपुर से ४० मील की दूरी पर बसाया गया था जिस कारण वहाँ की निवासिनी को 'मेड़तणी' कहना उक्त समय के अनंतर ही संभव हो सकता था। इसके सिवाय, खोज करते समय प्राप्त की गई कतिपय वंशावलियों तथा अन्य पुराने पत्रादि से मीराँबाई को इधर की बतलाने में अधिक संगति भी बैठती जान पड़ती थी। अतएव, उक्त आधुनिक इतिहासकारों ने प्राय: एक स्वर से कह डाला कि मीराँबाई को महाराणा कुंभ की स्त्री मान लेना पूर्णत: भ्रमात्मक होगा। साराँश यह कि वर्तमान उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्रियों के आधार पर निश्चय करने वाले राजस्थान के इतिहास लेखकों का बहुमत इसी निर्णय पर पहुंचता जान पड़ता है कि मीराँबाई, महाराणा कुम्भ की पत्नी न होकर महाराणा साँगा की पुत्रवधू थीं और उनका जीवन काल विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध

तक जा सकता है तथा इस अनुमान से, सभी बातों की संगति का बैठ जाना भी संभव हो सकता है।

परन्तु जहाँ तक पता है, उक्त प्रसिद्ध इतिहासकारों में से किसी ने भी कभी मीराँबाई की कोई प्रामाणिक जीवनी नहीं लिखी। अपने भिन्न-भिन्न इतिहास ग्रंथों को लिखते समय उन्होंने प्रसंग वश मीराँबाई की भी चर्चा कर दी और, उनके जीवन की सभी प्रमुख घटनाओं की ऐतिहासिकता पर अंतिम विचार बिना किये ही, आगे बढ़ते चले गये। मुं० देवी प्रसाद मुंसिफ ने 'मीराँबाई का जीवन चरित्र' नाम की एक छोटी सी पुस्तक अवश्य लिखी थी जो लखनऊ के जैन प्रेस द्वारा सं० १९५५ में छपी थी किन्तु उसमें भी केवल काल सम्बन्धी विवेचन पर ही अधिक ध्यान दिया गया था। उनका प्रधान उद्देश्य, कर्नल टाड द्वारा प्रचलित की गई धारणा को निराधार सिद्ध कर, उसके स्थान पर एक नया प्रस्ताव उपस्थित कर देना मात्र था, जिसका समर्थन उसके पीछे लिखने वाले लेखकों ने भी प्रायः उन्हीं के शब्दों में किया है। किन्तु केवल समय पर प्रकाश डालकर मीराँबाई के जीवन के अन्य विवरणों की भी पर्याप्त चर्चा न न करना, न उनके लिये प्रमाण देना ठीक न था। महाराणा साँगा की पुत्रवधू कही जाने वाली मीराँ का, वास्तव में पति कौन था? वह कब तक जीवित रहा? और, यदि जीवित रहा तो, उसके साथ मीराँ का सम्बन्ध कैसा रहा? जैसी अनेक बातें, इसके अनंतर, आपसे आप उठने लगीं जिनके उत्तर उस समय के साथ संबद्ध सामग्रियों तथा मीराँबाई की रचनाओं में ढूंढ़े जाने लगे। मीराँबाई के प्रचलित राजस्थानी, गुजराती एवं ब्रजभाषा के

पदों की एक एक पंक्ति उक्त प्रकार के प्रश्नों के उत्तर पाने के लिये, सावधानी के साथ पढ़ी जाने लगी और उसका उपयुक्त अर्थ लगाया जाने लगा। फिर भी मीराँ सम्बन्धी कई बातों का समाधान अभी तक पूर्ण रूप से नहीं हो पाया है, अपितु जान पड़ने लगा है कि वैसी उलझनें अभी और भी बढ़ती ही जायेंगी।

प्रस्तुत पुस्तक की लेखिका ने, अपनी इस रचना के अंतर्गत कुछ उक्त-प्रकार के प्रश्नों की ही चर्चा छेड़ी है। सर्व-प्रथम उन्होंने मु० देवी प्रसाद जी मुंसिफ के उस 'जीवन-चरित्र' की ही आलोचना की है जो आज कल के बहु सम्मत निश्चय का आधार स्वरूप है और जिसके उचित मूल्य का इसी कारण, परख लेना भी अत्यन्त आवश्यक है। उन्होंने मुंशी जी की पुस्तक की कतिपय स्थूल बातों को ही लेकर उन पर विचार किया है और वे इस परिणाम तक पहुंचती हुई जान पड़ती हैं कि जिन मूल आधारों का उन्होंने आश्रय ग्रहण किया था वे स्वयं भ्रमात्मक प्रतीत होते हैं तथा उस रचना के कई स्थलों पर अपना अंतिम निर्णय देने की चेष्टा करते समय, वे "द्विधाग्रस्त" से भी दीख पड़ते हैं। मुंशी जी ने, अपनी उपलब्ध सामग्रियों के अनुसार काल-निर्णय करते समय, मीराँ बाई के जीवन की एक रूपरेखा भी प्रस्तुत कर दी थी जो, उनके अनंतर आने वाले लेखकों के लिए, मार्ग सूचित करने का काम करती है किन्तु, जिसके प्रत्येक विवरण की परीक्षा कर लेने पर यही परिणाम निकलता है कि अभी उसके मूल में भी किसी त्रुटि का होना कोई असम्भव बात न होगी। लेखिका की उक्त आलोचना ऐसी धारणा की ओर ही

ही अधिक निकट पड़ती प्रतीत होती है। फिर भी, मीराँबाई की सारी अभिव्यक्ति पर व्यापक रूप से विचार कर, वे इस निष्कर्ष को ही अधिक युक्तिसंगत ठहराती हैं कि उस भक्त कवयित्री की स्वतंत्रआत्मा को किसी प्रकार साम्प्रदायिक घेरे में बांधने का प्रयत्न करना सरल नहीं है।

मीराँबाई का प्रत्यक्ष संबन्ध किसी सम्प्रदाय विशेष के साथ सिद्ध नहीं होता और उनकी साधना भी उस कोटि तक पहुंची हुई प्रतीत होती है जहां किसी संकीर्ण घेरे की कोई उपयोगिता ही नहीं है।

मीराँबाई की वृन्दावन-यात्रा का विषय लेकर भी लेखिका ने कुछ प्रश्न उठाये हैं जिन पर ध्यान देना आवश्यक हो जाता है। कहा जाता है कि मीराँ बाई ने मेड़ता का परित्याग कर, वृन्दावन की तीर्थ-यात्रा की थी और वहाँ पर उनसे जीव गोस्वामी (अथवा किसी किसी के अनुसार रूप गोस्वामी) से भेंट हुई थी। मीराँबाई ने, वृन्दावन में कदाचित कुछ समय तक रहकर, वहाँ के मंदिरों में भगवद्दर्शन किये थे और, उस यात्रा के प्रभाव में आकर ब्रजभाषा में अनेक रचनाएं की थीं। वृन्दावन से मीराँ-बाई का फिर द्वारका की ओर प्रस्थान कर देना और वहीं, अंत में, देह-त्याग भी करना आजकल बहुत से लोग मानते हैं। परन्तु मीराँबाई की यह यात्रा कब हुई और इसका वास्तविक कारण क्या था ? मेड़ता का त्याग, मेवाड़ में दिये गए जैसे कष्टों के कारण, नहीं हो सकता था और न अपेक्षाकृत निकट ही द्वारका पुरी तक जाने में उन्हें सुदूर वृन्दावन से कम सुविधा हो सकती थी और फिर वृन्दावन होकर भी, द्वारका की ओर ही लौट जाने

का कष्ट झेलना कतिपय अन्य कारणों की भी अपेक्षा करता है। लेखिका ने इस यात्रा की संभावना को, निश्चित सन् संवत् के अनुसार भी रखकर परखा है और कई अन्य बातों पर भी विचार करती हुई इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि यह वृन्दावन-यात्रा ही संदिग्ध जान पड़ती है। लेखिका के वे विचार भी कम महत्व-पूर्ण नहीं हैं जिन्हें उसने मीराँबाई के पदों के विषय में प्रकट किये हैं। उसकी धारणा, इस सम्बन्ध में यह जान पड़ती है कि मीराँबाई के उपलब्ध पदों में से अधिकाँश, प्रामाणिक नहीं सिद्ध होते जो वस्तुतः ठीक भी है। उसका ऐसा भी अनुमान है कि मीराँ-बाई के पदों में से राजस्थानी, ब्रजभाषा एवं गुजराती वालों में अपनी अपनी विशेषताएं भी हो सकती हैं। राजस्थानी के पदों में जहाँ उनके रचना-काल की परिस्थिति के अनुसार, संघर्ष व वेदना के भाव अधिक पाये जाने चाहिए वहाँ ब्रजभाषा के पदों में व्यक्ति भाव का बाहुल्य संभव हो सकता है और गुजराती के पदों में, उसी प्रकार, विराग व नैराश्य की मात्रा अधिक मिले तो कोई आश्चर्य की बात न होगी। इसके सिवाय राजस्थानी के पदों में से अधिक का जहाँ मौलिक व प्रामाणिक होना संभव है वहाँ ब्रजभाषा के पदों में से अनेक, अन्य कृष्ण-भक्त कवियों के अनुकरण में, रचे गये अथवा प्रक्षिप्त भी हो सकते हैं और गुजराती के पदों का बहुत कुछ अन्य भाषाओं से रूपान्तरित होना भी कहा जा सकता है। लेखिका ने इस पुस्तक के एक से अधिक लेखों में इस पर विचार किया है और उनके कुछ उदाहरण भी दिये हैं। उसके ऐसे लेखों को केवल एक बार पढ़ लेने पर भी मीराँबाई के एक

शुद्ध प्रामाणिक संग्रह की आवश्यकता का अनुभव हुए बिना नहीं रह सकता ।

पुस्तक में संगृहीत विविध लेखों को कोरा खंडनात्मक अथवा संदेहवर्द्धक मात्र समझ लेना उचित न होगा । जिन प्रश्नों पर उनमें विचार किया गया है वे वस्तुतः गंभीर हैं और वे अभी पूरी खोज व चिन्तन की अपेक्षा रखते हैं । लेखिका ने उपलब्ध साभग्रियों के आधार पर उसका विश्लेषण किया है और उनका सच्चा रूप हमारे समक्ष रखने की चेष्टा भी की है । उसकी प्रत्येक आलोचना के साथ साथ, और उसकी अनोखी सूझों के समानान्तर ही उसका वह हृदय भी काम करता हुआ जान पड़ता है जो मीरॉबाई के साथ पूरी सहानुभूति रखता है और जो वास्तविक मीराँ का परिचय प्राप्त कर लेने के लिए बेचैन सा है । आलोचिका कवयित्री की प्रत्येक उक्ति का मर्म समझने के लिए उत्सुक है और इसके लिये वह उसके अंतस्तल में प्रवेश करने का मार्ग ढूढ़ती हुई,भ्रमाच्छादित सामग्रियों के बीच अग्रसर होती दीख पड़ती है । उसका प्रयास नवीन है और उसे किसी पथ-प्रदर्शक का अंगुलि-निर्देश भी उत्साहित करता हुआ नहीं प्रतीत होता । फिर भी वह सत्यान्वेषण के लिए कटिबद्ध है । उसे अपने रमणी-सुलभ-हृदय पर पूरा भरोसा है और वह उसके बल पर अपने उद्देश्य का सिद्ध हो जाना स्वाभाविक समझती है, उसके द्वारा सुझाये गये कई पदों के अर्थों पर कोई टीका टिप्पणी भले ही कर दे अथवा उसके द्वारा निकाले गए कतिपय परिणामों के सम्बन्ध में उसके साथ कदाचित सहमत भी न हों किन्तु, इसके

कारण, उसके शुद्ध साहित्यिक उद्देश्य व विचार स्वातंत्र्य का मूल्य किसी भी प्रकार घटाया नहीं जा सकता।

लेखिका द्वारा उठाये गये प्रश्नों अथवा निर्दिष्ट संकेतों पर अभी अपना अंतिम निर्णय देना कुछ सरल भी नहीं है। राजस्थान का इतिहास व मीराँबाई से सम्बन्ध रखने वाले भिन्न भिन्न प्रदेशों, कुलों एवं व्यक्तियों तक का परिचय अभी तक पूर्ण व प्रामाणिक कहे जाने की कोटि तक नहीं पहुंच पाया है और न उनकी वास्तविक रचनाओं का अभी तक ऐसा कोई संग्रह प्रस्तुत किया जा सका है जिसमें प्रक्षिप्त पदों के प्रविष्ट होने की आशंका न बनी रहती हो। मीराँबाई अथवा उनकी कृतियों को लेकर नवीन प्रकाशन प्रायः प्रति वर्ष होते जा रहे हैं और मीराँ-साहित्य की श्रीबृद्धि इस वेग के साथ होती जा रही है कि कलेवर की अपेक्षा सच्चे मूल्य की ओर अधिक ध्यान देना लोग भूलते से जा रहे हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कवयित्री व प्रसिद्ध भक्त नारी होती हुई भी मीराँबाई अभी हमारे लिए एक पौराणिक व्यक्ति से अधिक कहलाने योग्य नहीं हो पातीं और न हम उनकी उपलब्ध रचनाओं को ही किसी कसौटी विशेष पर कस पाते हैं। प्रस्तुत लेखों की योग्य रचयित्री ने ऐसे ही अवसर पर अपनी लेखनी उठायी है और हमें एक बार सचेत व सावधान हो जानेकी ओर संकेत किया है। रूढ़िवादिता में आस्था रख कर आगे बढ़ना वह श्रेयष्कर नहीं मानती और शुद्ध सत्य के नाते भी, हमें चाहिए कि उसके ऐसे विचारों को सर्वथा अभिनंदनीय समझें।

—परशुराम चतुर्वेदी

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१—विषय प्रवेश	
'मीरां बाई का जीवन-चरित्र' पर एक दृष्टि	३
२—जीवन खंड	
जीवन काल	१४
जन्मकाल	१९
बाल्यकाल—माता पिता	२४
लालन-पालन व शिक्षा-दीक्षा	३५
विवाह और वैधव्य	३९
वैधव्य	४७
गृह-त्याग और तीर्थ-यात्रा	६५
मेवाड़-त्याग	६६
मेड़ता-त्याग	७०
तीर्थ गमन	७३
मृत्यु	८४
३—उपासना खंड	
उपासना	९३
उपासना-पद्धति	९५
नाथ-प्रभाव	११३
गुरु	१२७

विषय	पृष्ठ

४—आलोचना खंड

घटनाद्योतक पद	१४३
अपूर्ण या मिश्रित पद	१६२
पारस्परिक-विरोध द्योतक पद	१७०
राजस्थानी भाषा के कुछ पद	१७६
ब्रजभाषा के कुछ पद	१८०
गुजराती भाषा के कुछ पद	१८८
कुछ फुटकर पद	१९५
एक मारवाड़ी कथा प्रसंग	२००

५—परिशिष्ट

मीराँ सम्बन्धी कुछ प्रसंग	२०९
लोक-गीत परम्परा से प्राप्त कुछ पद	२४७
सहायक साहित्य	२६१

विषय-प्रवेश

मीराँ, एक अध्ययन

१

विषय-प्रवेश

मीरां बाई हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कवियत्री हैं। तुलसी, सूर, और कबीर की तरह ही मीराँ बाई के पद भी जन-कंठहार बन गये हैं। तुलसी, सूर और कबीर आदि संत कवियों की भांति ही मीराँ बाई का भी अद्यावधि प्राप्त जीवन-वृतान्त इतिहास नहीं बन सका और न इनकी रचनाओं का ही कोई प्रामाणिक संग्रह तयार किया जा सका। अतः प्राप्तपद और प्राप्त इतिहास की समन्वयात्मक विवेचना के आधार पर ही सत्य के निकट पहुंचना सम्भव प्रतीत होता है। तथाकथित मीराँ के पदों में कई विभिन्न घटनाओं का वर्णन मिलता है। ऐसे पदों के आधार पर मीरां के जीवन की कुछ भावनाओं, घटनाओं और सम्बन्धों पर धुंधला प्रकाश पड़ता है। प्रत्येक कलाकार अपनी कृति में उसी भावनाओं, घटनाओं और व्यक्तियों, का चित्र उतारता है जिसका उसके जीवन या मानस पर गहरा प्रभाव पड़ता है। फिर, मीराँ के पद तो जीवन की अभिव्यक्ति हैं। जीवन से ओत-प्रोत वे काव्य-कलामय बन गए हैं अवश्य, तथापि वे कवि-कल्पना मात्र नहीं, अपितु वास्तविक अनुभूति हैं। सूर और कबीर आदि अन्य संत कवियों की भांति

अपने काव्य में मीराँ को नारीत्व का आरोप नही करना पड़ा, अपितु नारी हृदय की सम्पूर्ण अनुभूतियां उनकी अपनी हैं। अतः ऐसे पदों से व्यक्त होती भावनाओं, घटनाओं और सम्बन्धों पर विशेष ध्यान देना ही अत्यावश्यक हो उठता है।

राजस्थान का इतिहास लिखते हुए कर्नल टाड ने ही सर्व प्रथम मीराँ के जीवन-वृतान्त पर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विचार किया। कर्नल टाड के उल्लेख के पहले प्राचीन ग्रंथों से प्राप्त मीराँ का जीवन-वृतान्त भक्तों द्वारा भावावेश मे दिया गया अतिरंजित व अलौकिक घटनाओं से परिपूर्ण था। वह जीवन वृतान्त न होकर एक पौराणिक गाथा मात्र थी। कर्नल टाड ने राजस्थान में मीराँ विषयक प्रचलित जनश्रुतियां सुनी और प्राप्त आधार पर मीराँ के जीवन का ऐतिहासिक अध्ययन करने का प्रयास किया इस तरह जो कुछ मालूम हो सका उसके आधार पर उन्होंने मीराँ को राणा कुम्भ की राणी ठहराया। मेकालिफ, विलसन आदि कई इंग्लिश विद्वानों ने कर्नल टाड का समर्थ न किया, यहां तक कि ब्रिटानिका एनसाइक्लोपिडिया में भी कर्नल टाड के मत को स्थान मिला। कुछ गुजराती व दक्षिणी विद्वानों ने भी कर्नल टाड का समर्थन किया।

कर्नल टाड से प्रेरित होकर कई विद्वान राजस्थान के इतिहास की खोज की ओर अग्रसर हुए। स्ट्रेटन ने "मेवाड़ एन्ड इट्स फेमिलीस" में सर्व प्रथम कर्नल टाड का खण्डन किया। तद्पश्चात् मुंशी देवीप्रसाद ने पदों में प्रयुक्त 'मेड़तणी' शब्द के आधार पर कर्नल टाड का खण्डन करते हुए मीरां को महाराणा सांगा के पुत्र भोजराज की विधवा युवराज्ञी सिद्ध किया। आधुनिक

इतिहासज्ञों ने इसका समर्थन और अन्य विद्वानों ने अनुसरण किया। तथापि, प्राप्त इतिहास इतना अपूर्ण है कि मुशीजी द्वारा की गयी मीराँ के जीवन की यह ऐतिहासिक विवेचना 'मीराँ बाई का जीवन चरित्र' असंदिग्ध नहीं। अतः मीराँ के जीवन-वृत की किसी तरह की भी विवेचना करने के पूर्व मुशी देवीप्रसाद लिखित 'मीराँ बाई का जीवन-चरित्र' को भली-भांति देख लेना अत्यावश्यक हो उठता है।

'मीराँ बाई का जीवन-चरित्र' पर एक दृष्टि

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से मीराँ की जीवन सम्बन्धी खोज करने का सर्व प्रथम प्रयास स्व० मुशी देवीप्रसाद जी ने किया। अतएव उनके द्वारा लिखित 'मीराँ बाई का जीवन-चरित्र' एक विशेष महत्व रखता है। मुशी जी ने मीराँ को भोजराज की पत्नी सिद्ध किया है। अधिकांश आधुनिक विद्वान मुंशी जी से सहमत है, तथापि इस 'जीवन-चरित्र' में कई बाते परस्पर विरोधी एवं सदेहोत्पादक है। मीराँ के जीवन-काल के बारे में स्वयं मुशी जी ही अनिश्चित मालूम पड़ते है, अतएव पाठक के लिये वस्तुस्थिति का स्पष्ट होना असम्भव ही हो जाता है।

मुंशी जी के अनुसार मीराँ राव दूदा जी की पौत्री और राव रत्नसिंह जी की पुत्री थीं। मीराँ की अभिव्यक्तियों के आधार

पर मीराँ का मेड़तिया राठौड़ वंश में जन्म लेना सुनिश्चित हो जाता है, तथापि पिता के बारे में कुछ भी नहीं मालूम होता।

१–"राठोड़ घर जन्म लियो है, नाम मीराँ कहायो।"

२–"राठोड़ांरी धीहड़ी, सिसोदिया रे साथ।"

३–"लाजै पीहर सासरो, माइतणो मोसाल।

सब ही लाजै मेड़तिया जी, थांसू बुरा कहे संसार।"

उपर्युक्त अभिव्यक्तियों से स्पष्ट हो जाता है कि मेड़तिया राठोड़ वंश ही मीराँ का पितृ-वंश था। ससुराल में भी मीराँ 'मेड़तणी' कहलाती थीं, यह अन्य पदों से भी स्पष्ट है। प्राप्त पदों के आधार पर यह तो निश्चित हो जाता है कि मीराँ का पितृ-वंश मेड़तिया राठौड़ वंश ही था, तथापि कहीं कोई ऐसी अभिव्यक्ति या ऐतिहासिक प्रमाण नही जिसके आधार पर हम यह कह सकें कि मीराँ के पिता कौन थे। 'महकमे तवारीख मेवाड़' से प्राप्त विवरणों के आधार पर मीराँ के पिता का निश्चय करना भी भ्रमात्मक मात्र ही सिद्ध होता है क्योंकि प्राप्त विवरणों को देखने से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि 'महकमे तवारीख' भी अनिश्चित ही है। पृष्ठ ३ पर दिये गये फुटनोट के अनुसार मीराँ "मेड़ते के राव दूदा जी के बेटे रत्नसिह की बेटी थी।" और पृष्ठ २ पर दिये गये फुटनोट के अनुसार "वे (मीराँ) राव दूदा जी के पोते मेड़तिया राठोड़ राव रत्नसिंह की बेटी थी।" मीराँ के पिता का नाम राव रत्नसिंह था यह तो दोनों ही विवरणों से निश्चित हो जाता है तथापि यह नहीं निश्चित होता कि राव रत्नसिंह राव दूदा जी के पौत्र थे अथवा पुत्र, अतः मात्र इसी

आधार पर मीराँ के पिता और जन्म काल का निश्चय करना भ्रमात्मक ही सिद्ध होता है।

'महकमे तवारीख' से प्राप्त विवरणानुसार, (पृष्ठ २,) "मीराँ बाई का पूरा हाल मौजूद नहीं है" तथापि "बहुत पूछताछ के बाद जो हाल पाया गया" वह निम्नांकित है। "मीराँ बाई का कोई सही हाल सिवाय इसके हमको मालूम नहीं हुआ कि वे राव दूदा जी के पोते मेड़तिया राठौड़ रत्नसिंह की बेटी थीं और महाराणा सांगा जी के कुंवर भोजराज को ब्याही गयी थीं। जिनका अन्तकाल महाराणा की जिन्दगी में ही हो गया था और मीराँ बाई के पास साधु संत बहुत आते जाते थे इसलिये राणा विक्रमाजीत उनको तंग करते थे।" पृष्ठ ३ पर दिये गये फुटनोट के अनुसार 'महकमे तवारीख' से जो विवरण प्राप्त हुआ है वह पहले विवरण का खण्डन करता है। "मीराँ बाई महाराणा सांगा के दूसरे बेटे भोजराज की राणी और मेड़ते के राव दूदा जी के बेटे रतन सिंह की बेटी थीं। महाराणा सांगा जी का देहान्त वि० सं० १५८४ में हुआ, उससे कुछ पहिले भोजराज गुजर गये थे। मीराँ बाई राणा रतनसिंह के (वि० सं०१५८८-९२) राज तक जिन्दा थीं महाराणा उदयसिंह के (वि० सं० १५९२-१६२८) के राज में मरीं। ये रणछोड़ जी की पूरी भक्त थीं। साधु और संतों का निहायत ही सत्कार करती थीं जिससे महाराणा रतनसिंह सख्त नाराज रहते थे और बहुत दुःख देते थे।" स्पष्ट है कि 'महकमे तवारीख' मेवाड़ से प्राप्त विवरणों के आधार पर कोई निश्चित मत स्थापित करना सम्भव नहीं। द्वितीय विवरण के अनुसार भोजराज-'कुंवर

पाटवी' नही अपितु 'दूसरे बेटे' थे परन्तु अधिकांश इतिहासकारों का मत है कि कुंवर भोजराज ही राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र थे। यदि मात्र द्वितीय विवरण पर भी ध्यान दिया जाय तो यह भ्रम और भी गहरा हो जाता है। "मीराँ बाई महाराणा के दूसरे बेटे की राणी थीं"। दूसरे बेटे की स्त्री, 'राणी' कदापि नहीं कहला सकतीं "कुंवर पाटवी" की स्त्री भी राणी नही कहलाती, मात्र सिंहासनारूढ़ महाराणा की स्त्री ही 'राणी' कहलानेका अधिकार रखती है। तब क्या मीराँ के पति कभी सिंहासनारूढ़ भी हुए हैं जो मीराँ राणी कहलायी ?

प्राप्त विवरणों मे इस तरह की भ्रमात्मका बातें मीराँ के जीवनकाल के विषय में भी दी गयी हैं। एक के अनुसार मीराँ को तकलीफ देने वाला राणा विक्रमाजीत है तो दूसरे के अनुसार रत्नसिंह। सौतेले भाई रत्नसिंह और विक्रमाजीत के पारस्परिक वैमनस्य के कारण विक्रमाजीत के मामा ने रत्नसिंह की हत्या कर वि० सं० १५८८ में विक्रमाजीत को गद्दी पर बैठाया (पृष्ठ १०)। परन्तु विक्रमाजीत के छिछोरेपन के कारण बहुत शीघ्र ही सब सरदार उनसे नाराज हो गये (पृष्ट ११)। जहर देने की घटना से दुखित होकर मीराँ "मेड़ते मे अपने काका राव बीरमदेव के पास चली आयी (पृष्ठ १४)। इस बीच चित्तौड़ में गहरे उलट फेर हुए। लेकिन इतनी बड़ी उलट फेर देखने पर भी राणा जी ने अपना ढंग नहीं बदला और मुत्सद्धियों का अपमान करने लगे जिससे सब लोग उनसे बदल गये और उनके ताऊ पृथ्वीराज का खवासवाल बेटा बनवीर उनको मारकर वि० सं० १५९२ में गद्दी पर बैठ गया। उसको वि०सं० १५९८ में

राणा उदयसिंह जी, जो अब तक कुम्भलगढ़ के किले में बैठे हुए उसकी फौज में लड़ते रहते थे, निकाल कर मेवाड़ के मालिक हो गये।" तथापि फुटनोट के पृष्ठ ३ के अनुसार राणा रतनसिंह का राज्यकाल वि० सं० १५८८-९२ तक और राणा उदयसिंह का राज्यकाल वि० सं० १५९२ से १६२८ तक है। महकमे तवारीख से प्राप्त उपर्युक्त विवरण के आधार पर विक्रमाजीत का राणा होना ही अप्रामाणिक ठहरता है जब कि प्रथम विवरण (पृष्ठ २) के अनुसार राणा विक्रमाजीत ने ही अपनी अनन्य भक्त विधवा भाभी को यंत्रणाएं दी है। इन सब पर ध्यान रखते हुए 'महकमे तवारीख' मेवाड़ पर निर्भर न रहना ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

मीराँ का काल निर्णय करते हुए स्वयं मुंशी जी द्विधाग्रस्त प्रतीत होते हैं। द्वितीय विवरण के आधार पर मुंशी जी ने मीरां को राव दूदा जी की पौत्री व राव रतनसिह जी की पुत्री माना है तथापि प्रथम विवरण के आधार पर विक्रमाजीत को ही मीराँ के समकालीन राणा निश्चित किया है। अपनी दोनों मान्यताओं के लिये आप कोई निश्चित कारण या प्रमाण नहीं देते। यदि प्रथम विवरण के आधार पर विक्रमाजीत को ही मीराँ के समकालीन राणा मान लें तो प्रथम विवरण के अनुसार ही उसको राव दूदा जी की प्रपौत्री मानना अधिक उपयुक्त होगा। ऐसी परिस्थिति में एक और नया प्रश्न, मीराँ के पिता राव रत्नसिंह के समय को लेकर उपस्थित होता है। राव दूदा जी के पौत्र राव रत्नसिंह जी किसके पुत्र थे और उनका जीवन-काल क्या था? मीराँ के पिता के समय के सम्बन्ध में

की गयी छानबीन से मीराँ के काल पर गहरा प्रकाश अवश्य ही पड़ेगा।

'जीवन-चरित्र' में दिये गये कुरसीनामों से स्पष्ट हो उठता है कि भोजराज के तीनों छोटे भाई एक के बाद एक गद्दी पर बैठे थे, परन्तु पृष्ठ ३० का कथन इसका खण्डन करता है। मुंशी जी लिखते हैं, "मीराँ बाई ने जो जमाने के इस पलटे को देखकर दूसरा अजब तमाशा कुदरत का यह देखा कि उनके ३ देवर, रतनसिंह, विक्रमाजीत और उदयसिंह में से २ दावेदार राज्य के हुए।" उपर्युक्त कथन के आधार पर समस्या और भी उलझ जाती है तीन देवरों में से कौन दो देवर राज्य के दावेदार हुए? किसने मीराँ को तकलीफ दी? प्रस्तुत कुरसीनामे को प्रामाणिक माना जाय या उपर्युक्त कथन को? (पृष्ठ १०)। किसको किस आधार पर प्रामाणिक या अप्रामाणिक माना जाय?

काल निर्णय करते हुये आगे भी पृष्ठ २५ पर आप लिखते हैं "वि० सं० १६२४ में अकबर बादशाह ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की। राणा उदयसिंह जी जयमल जी को किला सौंपकर बाहर निकल गये। जयमल जी ने ६ महीने तक खूब मुकाबिला किया। चैत बदी १० की रात को वे मशालों के उजाले में किले पर खड़े हुए मोरचे का बन्दोबस्त कर रहे थे कि अकबर बादशाह ने देख कर गोली चलायी। गोली जयमल जी को लगी और वे उसी वक्त मर गये। उनके मरते ही किले में जौहर होना शुरू हुआ और किले की तमाम औरतें जला दी गयीं।" आगे पृष्ठ २६ पर लिखते हैं—"यह खाका जो हमने उस जमाने की तवारीखों का सार लेकर खींचा है, इस बात को अच्छी तरह से जताता है कि वि० सं०

१५९५ से लेकर वि० सं० १६१८ तक कितने कष्ट का समय मेड़ते के वास्ते था और यह वही समय था कि जब मीराँ बाई चित्तौड़ छोड़कर मेड़ते में आयीं थीं । नहीं मालूम कि जयमल जी से मेड़ता छूटने के पीछे उन पर क्या गुजरी और वे कहां कहां रहीं। भगत माल के करता नाभा जी मीराँ बाई के समकालीन थे।" उपर्युक्त कथनानुसार "चित्तौड़ के जोद्धार और अकबर के गर्व दलनहार" जयमल जी अपनी बहन, रणछोड़ जी की अनन्य भक्त भोजराज की विधवा मीराँ बाई के समकालीन ठहरते हैं । सहज ही मीराँ और अकबर भी समकालीन ठहरते हैं । फिर आगे पृष्ठ ३० पर "कुछ अटकलपच्चू बातें" शीर्षक के अन्तर्गत यह पढ़कर कि "इसी तरह की एक कथा गोसाँई तुलसीदास जी के आपस में लिखा पढ़ी होने की भगतों में चली आती हैं मगर दोनों के समकालीन होने में कुछ शक है । मीराँ बाई की जिन्दगी का पता वि० सं० १६०० तक तो तवारीख से लगता हैं, शायद पीछे भी जिन्दा रही हों। अकबर बादशाह का जमाना १६१२ से शुरू होता हैं और गोसाँई तुलसीदास जी ने रामायण बनाने का प्रारम्भ वि० सं० १६३१ में किया था वि० सं० १६८० में उनका अन्तकाल हुआ था।" पाठक वस्तुस्थिति से सर्वथा अपरिचित ही नहीं रह जाता अपितु द्विधाग्रस्त भी हो उठता है । मुंशी देवीप्रसाद जी का निश्चित मत क्या है इसकी जानकारी पाठक के लिये सर्वथा असम्भव ही रह जाती है । पृष्ठ २६ के कथनानुसार मीराँ वि० सं० १६१८ तक मेड़ते में ही थीं। अकबर का राज्य-काल वि० सं० १६१२ से प्रारम्भ होता है अतएव सम्भव है कि

अकबर ने कभी मीराँ से मिलने का प्रयत्न भी किया हो । मीराँ का अकबर के समकालीन होने पर भी तुलसीदास जी के समकालीन होना आवश्यक नहीं ठहरता, क्योंकि अकबर का राज्यकाल वि० सं० १६१२ से प्रारम्भ होता है जब कि वि० सं० १६३१ के बाद ही गोसाँई जी ख्यातिप्राप्त होते हैं ।

पृष्ठ ३० पर मुशी जी लिखते हैं "मीराँ बाई की जिन्दगी का पता १६०० तक तो तवारीख से लगता है, शायद पीछे भी रही हों ।" तथापि पृष्ठ १७ के कथनानुसार मीराँ ने अपने भाई परम वैष्णव भक्त जयमल जी को उनकी दृढ़ भक्ति से प्रसन्न होकर "बहुत बधे तेरो परिवार, नहिं कजिया में होय हार" जैसा वरदान १६१० में दिया था जब कि राव मालदेव ने उन पर चढ़ाई की थी । मुशी जी के मतानुसार ही वि० सं० १६१० और १६१८ तक भी मीराँ का जीवित रहना ही व्यक्त होता है । शायद, अपर्याप्त ऐतिहासिक प्रमाणों के कारण ही मुशी जी खुद ही निश्चित नहीं हो सकें हैं ।

उपर्युक्त बातों के रहते अकबर का मीराँ से मिलने आना नितान्त असम्भव घटना नहीं प्रतीत होती ।

प्रस्तुत 'जीवन-चरित्र' को पढ़ कर मीराँ के जीवन के बारे में ही गहरी शंका होती है । जहर दिये जाने की किम्बदन्ती ही इस शंका का आधार है । पृष्ठ १३ पर आप लिखते हैं "अत्र आगे, बाज लोग तो यों कहते हैं कि उस जहर से मीराँ का प्राणान्त हो गया और मरते-मरते उन्होंने उस मुसाहब को यह सराप दिया ।" आगे पृष्ठ ३१ पर "और कोई यों भी कहते हैं कि मीराँ बाई को उस जहर का असर न हुआ बल्कि द्वारिका

में रणछोड़ जी के मुंह से झाग निकले थे और वे मेड़ता अपने काका राव. वीरमदेव के पास चलीं आयीं।" जहर के प्रभाव से मीराँ का बच जाना और मर जाना दोनों ही संदिग्ध हैं, दोनों का आधार मात्र किम्बदन्तियां ही हैं। यदि उस जहर से मीराँ का प्राणान्त हो जाता है तो यह अन्य मीराँ कौन हैं जिसके भावमय सरस पदों पर हिन्दी-साहित्य को गर्व है? भक्तवत्सल रणछोड़ जी ने जहर के प्रभाव को खुद झेलकर मीराँ को साफ बचा लिया यह तो मात्र भक्तों की ही उक्ति है, इसका कोई प्रमाण नही मिलता कि मीराँ कैसे बची। सम्भव है कि मीराँ की महत्ता को बढ़ाने के लिये भक्तों द्वारा यह कथा भी मीराँ के जीवन में जोड़ दी गयीं हों। सम्भव है कि विष ने अपना काम किया हो। यदि हम यह मान लेते है कि वि० सं० १६०० तक तो मीराँ निश्चित रूपेण जीवित थीं, व इसी समय के आस-पास द्वारिका में उनका प्राणान्त हुआ तो जहर दिये जाने की इस कथा की सत्यता पर विशेष खोज करना ही नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है।

मुशी जी के कथनानुसार मीराँ महलों को छोड़ने के पूर्व ही वृन्दावन की यात्रा करती हैं। (पृष्ठ २६) रणछोड़ जी की अनन्य भक्त, रणछोड़ जी के विरह में अहर्निश तड़पनेवाली मीराँ, अपने कठोर संघर्षमय जीवन में यात्रा का सुअवसर पाकर द्वारिका नहीं जाती अपितु ठीक विपरीत दिशा में वृन्दावन चली जाती हैं (यह रहस्यमय है)। यहां, मीराँ के पदों पर भी ध्यान देना आवश्यक प्रतीत होता है। मीराँ के नाम पर प्रचलित पदों को देखते यही मालूम देता है कि मीराँ एक सुदीर्घ काल तक वृन्दावन में रही हैं क्योंकि पदों की भाषा उत्तरोत्तर शुद्ध

ब्रजभाषा की ओर अग्रसर होती जाती हैं। कुछ पद तो सूरदास के पदों से भी होड़ लेते से नजर आते हैं। जैसे–

"या बृज में कछु देख्यो री टोना माई।" आदि।

यात्रा-काल का दीर्घ होते हुए भी सीमित होना ही सहज है। फिर पृष्ठ १० पर मुंशी जी लिखते हैं "वीरमदेव और उनके कुंवर जयमल जी उनकी (मीराँ की) बहुत खातिर करते थे तथापि मीराँ बाई के पास साधु सन्तों के आने जाने की देख भाल उसी तरह की जाती थी जैसी कि चित्तौड़ में होती थी और जिसको वे अपने लिये बहुत तकलीफ समझती थीं।"

बीरमदेव जैसे परम वैष्णव और जयमल जैसे परम भक्त जिसकी दृढ़ भक्ति भावना से प्रसन्न हो स्वयं मीराँ ने ही 'बहुत बधै तेरो परिवार, नहिं कजिया में होवे हार' जैसा अभयदान दिया था, मीराँ को साधु सन्तों के दर्शनों से वंचित कर उनको इतना पीड़ित क्योंकर कर सकें कि एक दिन ऊबकर मीराँ को अपना पीहर मेड़ता भी छोड़ ही देना पड़ा और वह भी ऐसे दुर्दिनों में जब कि सम्पूर्ण राजस्थान लोहे की झंकार से गुंजरित था और छोड़ देने पर भी तो वैसे कठिन समय में राजमहलों में जन्म लेनेवाली, राजमहलों में जीवन व्यतीत करनेवाली मीराँ नितान्त एकाकिनी वृन्दावन कैसे पहुंचीं ?

मीराँ का जीवन तो अधिकतर 'किस्से कहानी' है कोई उनको रूप गोस्वामी से मिलाता है तो कोई जीव गोस्वामी से, कोई उनको अकबर का समकालीन मानता है तो कोई राणा कुम्भ की स्त्री और कोई भोजराज की विधवा। कोई रैदास की शिष्या बताता है तो कोई स्वयं सिद्ध भक्त, जिसकी

प्रेरणा 'बालापन' में ही माता के असाधारण मजाक से जागृत हो गयी थी। इतनी विभिन्न मान्यताओं के रहते, ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में निश्चित रूपेण कुछ कह सकना नितान्त असम्भव ही है। वर्त्तमान स्थिति में प्राप्त मान्यताओं और पदों के आधार पर ही आगे भी गहरे छानबीन की अत्यधिक आवश्यकता प्रतीत होती है।

२

जीवन खण्ड

जीवन-काल

मीराँ का सम्पूर्ण जीवन वृतान्त ही अनिश्चित व भ्रमोत्पादक है, यहां तक कि प्राप्त सामग्री के आधार पर जन्म संवत् का निश्चय करना तो बहुत दूर जीवन-काल का भी निश्चय करना सम्भव नहीं। मीराँ के जीवन-काल को लेकर बड़े मतभेद हैं। कोई इनको राव दूदा जी की पुत्री और राणा कुम्भ की राणी मानता है तो कोई राव दूदा जी की पौत्री, राव रत्नसिंह की पुत्री तथा भोजराज की विधवा युवराज्ञी। 'भक्तमाल', ८४ और २५२ वैष्णवण की वार्ता आदि प्राचीन ग्रंथों से कोई भी ऐसा सूत्र उपलब्ध नहीं जिसके आधार पर मीराँ का जन्मकाल या मृत्यु-काल का निश्चय किया जा सके।

'८४ वैष्णवण की वार्ता' में आयी कथाओं के आधार पर मीराँ महाप्रभु बल्लभाचार्य तथा उनके पट्ट शिष्य गोविन्द दूबे, रामदास पुरोहित, कृष्णदास अधिकारी, हित हरिवंश, और हरीराम व्यास के समकालीन ठहरती हैं। इन कथाओं से यह भी सुस्पष्ट हो जाता है कि मीराँ ने पुष्टि मार्ग को कभी नहीं अपनाया अतः ऐसे उद्भट विद्वान भक्तों द्वारा भी अपमानित ही होती रहीं। अपनी पुस्तक 'मीराँ बाई' में पृष्ठ २२ पर डा० लाल लिखते हैं,

"तीसरे उद्धरण से वे कृष्णदास अधिकारी, हित हरिवंश और व्यास की समकालीन ठहरती हैं। कृष्णदास अधिकारी का समय सं० १५५४ से १६३४ तक और हित हरिवंश का सं० १५५९ से १६५९ तक माना गया है अस्तु, मीराँ का समय निश्चित रूप से सं० १५५५ से सं० १६५० के बीच में जान पड़ता है। तीसरे उद्धरण से पता चलता है कि जब कृष्णदास अधिकारी मीराँ के घर पहुंचे उस समय वहां हित हरिवंश के साथ ही साथ व्यास भी थे। ये व्यास (हरीराम व्यास) पहले ओड़छा महाराज के राजगुरु और एक प्रसिद्ध शास्त्रार्थी विद्वान थे। सं० १६२२ के आस-पास गोसांई हित हरिवंश से शास्त्रार्थ करने जाकर उनके शिष्य हो गये थे। हित हरिवंश और व्यास की एक साथ उपस्थिति यह प्रमाणित करती है कि तीसरे उद्धरण का प्रसंग सं० १६२२ के पश्चात किसी समय का है, यह भी असम्भव नहीं है कि ये दोनों महात्मा दैव संयोग से अलग अलग एक ही समय मीराँ बाई के घर पहुंचे हों जैसा कि कृष्णदास भी पहुंच गये थे, परन्तु सं० १६२२ से पहले व्यास जी वैष्णव प्रसिद्ध न थे और न इस प्रकार किसी के घर पहुंचते ही थे क्योंकि तब तक उनका एक मात्र उद्देश्य शास्त्रार्थ करना हुआ करता था। परन्तु इस प्रसंग में वे वैष्णव लिखे गए हैं, अतएव यह प्रसंग निश्चित रूप से सं० १६२२ के पश्चात् किसी समय का है। इस प्रकार मीराँ बाई का सं० १६२२ के बाद तक जीवित रहने का प्रमाण मिल जाता है।" फिर, वहीं, फुटनोट में लिखते हैं "विद्या विभाग कांकरोली से प्रकाशित, प्राचीन-वार्ता-रहस्य द्वितीय भाग में जो कृष्णदास अधिकारी की वार्ता दी गयी है, उसके प्रथम प्रसंग में हरिवंश

और व्यास का उल्लेख नहीं मिलता जैसा कि डाकोर से प्रकाशित संस्करण में मिलता है। उसी ग्रंथ के गुजराती अंश के अनुसार कृष्णदास और मीराँ बाई की मिलन तिथि सं० १५८२ के पश्चात् सं० १५८३ के आस पास निश्चित की गयी है। यदि प्राचीन वार्ता रहस्य का पाठ प्रामाणिक ठहराया जाय तो मीराँ के सं० १६२२ तक जीवित रहने का प्रमाण इस प्रसंग से नहीं मिल सकता।" वार्ताओं की डाकोर प्रति ही प्रामाणिक मानी गयी है, अतः प्रथम उद्धरण ही ज्यादह प्रामाणिक ठहरता है। '२५२ वैष्णवण की वार्ता' में भी 'गोसाँई विट्ठलनाथ जी की सेविका अजब कुंवर बाई, तिनकी वार्ता' के अन्तर्गत भी मीराँ बाई की चर्चा मिलती है। इस कथा में मीराँ बाई का परिचय इतना ही दिया गया है कि "अजब कुंवर बाई मेड़ते में रहती हती, मीराँ बाई की देवरानी हती।' इसी 'वार्ता' में 'श्री गोसाँई जी के सेवक हरिदास बनिया तिनकी वार्ता के अन्तर्गत भी' 'मेरता गाम को राजा जैमल' की किसी 'बेन' का जिनका घर हरिदास बनिये के घर के सामने था और जो पर्दा करती थी, व जिन्होंने गोसाँई जी से दीक्षा ली थी, उल्लेख मिलता है। परन्तु यह साफ नहीं होता कि 'मेरता के स्मार्त राजा जैमल' की यह 'बेन' कौन थी। सम्भवतः यह 'जैमल की बेन' मीराँ बाई ही थीं, क्योंकि इतिहास से जयमल की किसी अन्य बहन का होना प्रमाणित नहीं होता। इस कथा से यह भी मालूम होता है कि हरिदास बनिया जैमल की इस 'बेन' के घर गोसाँई जी से दीक्षित होने के पूर्व से ही पूजा-अर्चना करने जाते थे और इसी बेन की भक्ति व विद्वत्ता से प्रभावित होकर ही 'मेरता के राजा जैमल' ने गोसाँई जी के मेरता पधारने पर सम्पूर्ण

परिवार और राज्य सहित उनसे दीक्षा ली थी। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों वार्ताओं के प्रसंग परस्पर विरोधात्मक हैं। अतः वार्ताओं के आधार पर भी मीराँ का काल निश्चय करना अत्यन्त दुरूह है। वार्ताओं के अतिरिक्त किसी भी अन्य प्राचीन ग्रंथ में कहीं भी ऐसा कोई प्रसंग नहीं मिलता, जिसके आधार पर मीराँ के जीवन-काल पर कोई प्रकाश पड़ सके। शान्ति आश्रम के सरस्वती भवन में एक प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथ है जिसमें संत और भक्त कवियों के भजनों का संग्रह है। निम्नांकित पद उसी संग्रह से लिया गया है। इसमें जिन महात्माओं के पद हैं वे सभी प्राचीन हैं, अतः ये हरिदास भी काफी पुराने होंगे। हरिदास नामक एक चारण भी हुए हैं, तथापि चारणों की शैली कवित्त–शैली है। अतः ये हरिदास चारण नहीं हो सकते। सम्भव है कि निरंजनी सम्प्रदाय के संत हरिदास ही इस पद के रचयिता हों। इनके अलावे भी कई संत हरिदास हुए हैं, जिनके काल का ठीक-ठीक पता नहीं चलता।

एक राणी गढ़ चीतोड़ाँ की।
मेड़तणी निज भगति कमावै भोजराइजी का जोड़ा की।
हिमरू मिसरू साल दुसाला बैठण गादी मोड़ा की।
असा सुख छाड़ि भयी वैरागिणि सादी नरपति जोड़ा की।
साइण वाइण रथ पालकी, कमी न हसती घोड़ा की।
सब सुख छाड़ि छनक मैं चाली, लाली लागयी रणछोड़ा की।
ताल बजावै गोविंद गुण गावै, लाज तजी बड़ ल्होड़ा की।
निरति करै नीकां होइ नाचै, भगति कुमावै बाई चोड़ा की।
नवा नवा भोजन भांति भांति का, करि हैं सार रसोड़ा की।

करि करि भाजन साध जिमावै, भाजी करत गिदोड़ा की ।
मन धन सिर साधां के अरपण, प्रीति नहीं मन थोड़ा की ।
हरीदास मीराँ बडभागणि सब राण्यां सिर मोड़ाँ की ।

मीराँ के पदों पर संत-मत का भी गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, कुछ पदों में तो मीराँ स्पष्टतया अपने गुरु का नाम रैदास बताती हैं। तथापि यह गुरु रैदास कौन थे यह जानने का कोई सूत्र पदों से उपलब्ध नहीं। इतिहास के आधार पर प्रसिद्ध संत रविदास का कबीर के समकालीन होना सिद्ध होता है। यदि प्रसिद्ध संत रैदास को ही मीराँ का गुरु मान लेते हैं तो मीराँ का समय भी बहुत पीछे, लगभग सौ वर्ष पीछे चला जाता है।

पदों से व्यक्त होती एक और भावना भी मीराँ के जीवन-काल को काफी पीछे की ओर ले जाती प्रतीत होती है। अधिकांश पदों की अभिव्यक्ति के आधार पर मीराँ सधवा ही सिद्ध होती हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि जिस राणा को वे बार बार सम्बोधित करती हैं वे उनके पति ही थे। मीराँ का जीवन-काल वि० सं० १५५५-१६०३ (या कुछ विद्वानों के अनुसार १६३०) तक मानने वाले विद्वान मीराँ को भोजराज की विधवा ही मानते हैं, तथापि पदों से व्यक्त होती भावनाएं इसका खंडन करतीं हैं। सम्भव है कि मीराँ के पदों में बार बार सम्बोधित यह राणा, राणा कुम्भ ही हों। मीराँ को राणा कुम्भ की समकालीन मान लेने पर अन्य विशेष समस्याओं का भी हल सहज ही निकल आता है।

मेरे विचार में अद्यावधि प्राप्त सामग्री के सभी पहलुओं की गम्भीर विवेचना करने पर यही स्पष्ट हो उठता है कि प्राप्त

सामग्री के आधार पर कर्नल टाड के कथन का निश्चयात्मक रूपेण खंडन सम्भव नहीं, बहुत सम्भव है कि मीराँ राणा कुम्भ की ही राणी थी।

जन्म-काल

मीराँ के जीवन चरित्र का ऐतिहासिक दृष्टिकोंण से अध्ययन करने वाले-सर्व प्रथम विद्वान कर्नल टाड मीराँ को राव दूदा जी की पुत्री और राणा कुम्भ की राणी मानते हुए मीराँ का जन्म काल ई० सन् १५०४ माना है। राणा कुम्भ द्वारा बनवाये गये आदि बराह और कुम्भश्याम के मंदिर, मीराँ बाई के मंदिर कहलाते हैं। मंदिरों की यह प्रशस्ति और अन्य जनश्रुतियाँ ही कर्नल टाड का आधार रही हैं। निश्चित ही यह आधार अपर्याप्त है। यह भ्रम और भी बढ़ जाता है जबकि हम देखते हैं कि कर्नल टाड कहीं मीराँ को राव दूदा जी की पुत्री कहते हैं, तो अन्यत्र कहीं पौत्री कहते हैं। कुछ गुजराती और दक्षिण के इतिहास और पुरातत्व विद्वानों ने कर्नल टाड का समर्थन किया है। 'महकमे तवारीख मेवाड़' से भी निश्चित तिथि का प्राप्त करना असम्भव ही प्रतीत होता है। क्योंकि राजस्थान की ख्यातों में, कहीं भी मीराँ का कोई निश्चित उल्लेख नहीं मिलता। कर्नल टाड के कथन का सर्वप्रथम खंडन स्ट्रेटन ने किया। तत्पश्चात् मुंशी देवीप्रसाद ने भी कर्नल टाड के कथन का खंडन किया और मीराँ के पदों में

प्रयुक्त "मेड़तणी" शब्द के आधार पर मीराँ को राव दूदा जी क पुत्र रत्नसिंह की पुत्री तथा राणा सांगा के 'पाटवी' कुमार भोजराज की विधवा युवराज्ञी प्रमाणित करते हुए मीराँ का जन्मकाल वि० सं० १५५५ और मृत्युकाल वि० सं० १६०३ सिद्ध किया। सभी आधुनिक विद्वानों ने एक स्वर से मुंशी देवीप्रसाद का समर्थन किया तथापि इस सर्व मान्य प्रचलित मान्यता में भी संदेह को पर्याप्त स्थान है। अद्यावधि मान्य इतिहास और प्राप्त पदों से व्यक्त होती भावनाओं और घटनाओं में कोई समन्वय नहीं होता। प्राप्त वृतान्त खंडनात्मक और भ्रमोत्पादक ही है अत: वह इतिहास कदापि नहीं कहला सकता। अपने समर्थन में मुंशी देवीप्रसाद "मेड़तणी" प्रयोग पर ही विशेष रूपेण निर्भर रहे हैं। कुछ अन्य राजस्थानी लोक-गीतों में भी "मेड़तणी" का प्रयोग मिलता है। मेड़ता की स्त्रियाँ रूप, गुण व शील के लिये प्रसिद्ध होती थीं अत: 'मेड़तणी' शब्द प्रशंसा सूचक अर्थ में रूढ़ होकर प्रचलित हो गया। कुछ गीतों में घर की बुजुर्ग स्त्रियां या ननद अपनी बहू व भावज के लिये 'मेड़तणी' का प्रयोग विशेष रूप से करती पायीं जाती हैं। कहा जा सकता है कि सम्भवत: ऐसे कुछ गीत मीराँ की लोकप्रियता के ही द्योतक हों, परन्तु लोक गीतों की विवेचना करने पर ऐसा सम्भव नहीं प्रतीत होता। ये कुछ गीत परम्परा के आधार पर ९, १० पीढ़ी पुराने ठहरते हैं। इन गीतों की भाषा भी काफी पुरानी ही प्रतीत होती है। अभिव्यक्तियों के आधार पर भी ये लोक-गीत अपेक्षाकृत प्राचीन ही प्रतीत होते हैं।

विभिन्न सामन्तशाही में बंटे हुए राजपूतों का राज्यश्री और

वैभव परिपूर्ण राजसी जीवन ही इन लोक गीतों में चित्रित हो उठता है। राणा सांगां के बाद ही पारस्परिक वैमनस्य और मुगल आक्रमणों के कारण राजस्थान की उस राज्यश्री का सर्वथा लोप हो गया और तलवारों से अहर्निश खून की होली खेलने वाले राजपूत अभाव-पूर्ति हेतु "पूरब की चाकरी" की खोज में जाने लगे। इस परिस्थिति का चित्रण करने वाले कुछ लोक-गीत निश्चित रूपेण ही काफी पीछे के हैं। ऐसे गीतों में 'मेड़तणी' का प्रयोग नहीं मिलता और इनकी भाषा भी आधुनिक मारवाड़ी के अधिक निकट पड़ती है। राज्य-वैभव परिपूर्ण राजपूतों के राजसी जीवन को चित्रित करने वाले गीत अवश्य ही राणा सांगां के पूर्व काल के ही होंगे। क्योंकि लोकगीतोंकी विशेषता ही यह है कि वे अपनी रचना-काल के जीवन के ही सजीव व सत्यतम चित्र होते हैं। अतः परम्परा, भाषा और अभिव्यक्ति के आधार पर वे गीत जिनमें 'मेड़तणी' प्रयोग मिलता है,अपेक्षाकृत पुराने प्रतीत होते हैं। राव दूदा जी ने नया मेड़ता नहीं बसाया था, अपितु पुराने शहर का ही जीर्णोद्धार किया था, यह भी एक ऐतिहासिक सत्य है। अतः इतिहास के आधार पर भी 'मेड़तणी' प्रयोग का अपेक्षाकृत प्राचीन होना असंभव नहीं प्रतीत होता। 'बंगीय हिन्दी परिषद' से प्रकाशित मीराँ 'स्मृति ग्रंथ हिन्दी में' पृष्ठ ३९ पर बहुगुणा जी लिखते हैं,–"किन्तु दूदा जी ने नया मेड़ता बसाया, मेड़ता नहीं। मेड़ता का प्राचीन नाम मानधातृपुर बताया जाता है और लोग उसे मलधाता का बसाया हुआ बतलाते हैं। शिलालेखों में मेदंतक नाम मिलता है। फिर नये मेड़ता के बसने से पहले मीराँ का जन्म मानने में कठिनाई नहीं आती।"

तथाकथित मीराँ के पदों की विवेचना करने पर भी 'मेड़तणी' प्रयोग की प्रामाणिकता में संदेह को पर्याप्त स्थान मिल जाता है। मीराँ के नाम पर प्रचलित लगभग चार सौ पदों में से सिर्फ चार ही पद ऐसे मिलते हैं जिनके आधार पर मीराँ के पितृ-कुल पर कोई प्रकाश पड़ सकता है।

१—"बाल सनेही गोविंदो, साध संतां को काम ।
थे बेटी राठौड़ा की, थांने राज दियो भगवान ।
राज किये ज्यानें करणे दीज्यो, मैं भगतारी दास ।
सेवा साधू जनन की, म्हांरे राम मिलण की आस ।
लाजै पीहर सासरो, माइतणो मोसाल ।
सब ही लाजै मेड़तिया जी, थांसू बुरा कहै संसार ।"
('मीराँ बाई की पदावली' पद २९)

२—"राठौड़ांरी धीयड़ी जी, सीसोद्यांरे साथ ।"
(वही, पद ४२)

३—"सांप पिटारो राणाजी भेज्यो, द्यो मेड़तणी गल डार
हंस हंस मीराँ कंठ लगायो, यो तो म्हांरे नौसर हार
विष को प्यालो राणा जी मेल्यो, द्यो मेड़तणी ने पाय"
(वही, पद ४४)

४—"कुल की तारण अस्तरी, या तो मुरड़ चली राठौड़
राम अमल माती रहे, धन मीराँ राठौड़"
(वही, पद ४७)

मेरे अध्ययन का आधार 'मीराँ बाई की पदावली' में ये चार ही ऐसे उद्धरण मिलते हैं, तथापि बेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित संग्रह में व प्रायः अन्य संग्रहों में एक और भी ऐसा

उद्धरण मिलता है। "मेड़तिया घर जन्म लियो है, नाम मीराँ कहायो।" उपर्युक्त उद्धरण की भाषा काफी आधुनिक प्रतीत होती है, अतः सहज ही इसकी प्रामाणिकता में संदेह होता है। अद्यावधि सर्वाधिक प्रामाणिक माने जाने वाले संग्रह में भी यह अप्राप्य ही है। उपर्युक्त उद्धरणों की प्रामाणिकता में भी संदेह ही होता है। आलोचना खंड के अन्तर्गत मैंने इन पदों की प्रामाणिकता पर अपने विचार प्रकट किये हैं। जिन पदों में प्रयुक्त 'मेड़तणी' शब्द के आधार पर मीराँ मेड़तिया राठौड़ कुल की कन्या प्रमाणित हो जाती हैं, उन पदों का प्रक्षिप्त होना ही अधिक सम्भव प्रतीत होता है। अतः सभी बातों पर ध्यान देते हुए मात्र 'मेड़तणी' प्रयोग के आधार पर मीराँ के पितृ-कुल की विवेचना असंगत ही ठहरती है।

श्री राय बहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा जी ९ सितम्बर सन् १९३८ को पुरोहित जी को लिखते हैं, "मीराँ बाई के निश्चित जन्म संवत् का पता नहीं और न मृत्यु के।" आर० एस० देव श्री बैरिस्टर बनेरा मेवाड़ पुरोहित जी को लिखते हैं,—"ग्वालियर स्टेट के राज ज्योतिषी पंडित बनवारी लाल ने मुझको निम्नांकित तथ्य पत्र द्वारा ३ मार्च सन् १९४८ ई० को सूचित किया। "मीराँ बाई का जन्म वि० सं० १५५७ वैसाख शुक्ल ३ प्रातः काल हुआ।" (व्यक्तिगत नोट से उद्धृत)

बाल्य-काल

माता-पिता

मीराँ के माता पिता कौन थे—यह जानने का कोई निश्चित आधार प्राप्त इतिहास में नहीं मिलता। प्राचीन ग्रंथों से इस विषय पर कोई भी प्रकाश नहीं पड़ता। कर्नल टाड ने मीराँ को कहीं राव दूदाजी की पुत्री कहा है तो अन्यत्र कहीं पौत्री[1]।

---

१. "Annals and Antiquities of Rajasthan" vol. ii Foot note on page 856

"Rao Duda had three sons besides Maldeo; namely: first Raimal, second Birsingh who founded Ajmer in Malwa still held by his decendents; third, Ratan Singh father of Mira Bai, the celebrated wife of Kumbha Rana",

pege 950

Duda–clan–Mertia, fiefs of Chieftainships, Merta.

"Remarks–Duda took Sambhar from The Chauhans. He had one son, Biram, whose two sons Jagmall founded the clans of Jaimallot and Jagmallot."

"The fourth son Duda (or Dhuhada) etarblished himself on the plans of Merta, and his clan, the Mertia, is numerous, and has always sustained the reputation of being

सरोजकार शिवसिंह, कविराजा श्यामलदास आदि भी मीराँ को राव दूदा जी की पौत्री और रत्नसिंह की पुत्री मानते हैं। महकमे तवारीख मेवाड़ के आधार पर किसी भी निश्चय पर पहुंचना सम्भव नहीं प्रतीत होता। मुंशी देवीप्रसाद लिखित "मीराँ बाई का जीवन चरित्र" में महकमे तवारीख मेवाड़ से प्राप्त समाचार (Informations) पृष्ठ २ और ३ पर फुटनोट में दिये गये हैं[१]। इनसे शंकाओं का समाधान नहीं होता वरन्

the first swords of Maru. His daughter was the celebrated Mira Bai, wife of Rana Kumbha, and he was the grand-sire of the heroic Jaimall, who defended Chitor against Akbar."

page 856

"Merta was founded by Rao Duda, of Mandor, whose son, the celebrated Maldeo, erected the castle of Malkot. Merta with its three hundred and sixty townships became the appanage of Mertia the bravest of brave clans of Rathors."

१. पृष्ठ २ पर दिया गया फुटनोट, "मेवाड़ के महकमे तवारीख से भी मीराँ बाई का सही हाल सिवाय इसके हमको मालूम न हुआ कि वे राव दूदा जी के पोते मेड़तिया राठोड़ राव रतनसिंह जी की बेटी थीं और महाराणा सांगा के कुंवर भोजराज को ब्याहीं गई थीं, जिनका अन्तकाल महाराणा की जिंदगी में हो गया था और मीराँ बाई के पास साधु सन्त बहुत आते थे इसलिये राणा विक्रमाजीत उनको तंग करते थे।"

वे और भी उलझ जाती हैं। एक फुटनोट के अनुसार मीराँ राव दूदा जी के पुत्र रत्नसिंह की बेटी हैं जबकि दूसरे के अनुसार वे राव दूदा जी के पौत्र रत्नसिंह जी की पुत्री हैं, अतः जहां एक के आधार पर मीराँ राव दूदा जी की पौत्री सिद्ध होती हैं, वहीं दूसरे के आधार पर प्रपौत्री सिद्ध हो जाती हैं। मुंशी देवीप्रसाद जी, गहलोत जी, सारडा जी, ओझा जी आदि सभी प्रसिद्ध इतिहासज्ञों ने राव रत्नसिंह को मीराँ का पिता माना है, तथापि किसी ने भी अपनी मान्यता का कोई आधार नहीं दिया। प्राचीन ग्रंथों के आधार पर मीराँ के पिता कौन थे या उनका नाम क्या था, यह जानना सम्भव नहीं। प्राप्त इतिहास राव रत्नसिंह को मीराँ का पिता मानता है तथापि स्वयं राव रत्नसिंह का समय और परिचय (identity) अनिश्चित ही हैं। कोई उनको राव दूदाजी का पांचवां पुत्र मानता हैं तोकोई चतुर्थ पुत्र मानता है। किसी किसीके अनुसार रत्नसिंह राव दूदाजी के दूसरे पुत्र थे। महकमे तवारीख मेवाड़ का मत सर्वथा विभिन्न पड़ता है। इसके अनुसार रत्नसिंह राव दूदाजी के पौत्र सिद्ध होते हैं।

१—"पृष्ठ ३ पर दिया गया फुटनोट, मीराँ बाई का हाल जियादातर तो किस्से कहानी है और हर जगह मशहूर है, मीराँ बाई महाराणा सांगां के दूसरे बेटे भोजराज की राणी और मेड़ते के राव दूदाजी के बेटे रतनसिंह की बेटी थीं, महाराणा साँगांजी का देहान्त सं० १५८४ में हुआ उससे कुछ पहिले भोजराज गुजर गये थे, मीराँ बाई रतनसिंह के राजतक (वि० सं० १५८८–२९) जिन्दा थीं महाराणा उदैसिंह जी के राज्य में (सं० १५९२–१६२८) मरीं।

"मीराँ-स्मृति-ग्रंथ" में प्रकाशित 'मीराँ के जीवन-वृत का स्थानीय साक्ष्य' पृष्ठ ५१५ पर विद्यानन्द शर्मा लिखते हैं, "तीन वर्ष की अवस्था में उनके (मीराँ के) पिता जी तथा दश वर्षकी अवस्था में उनकी माताजी का शरीरान्त हो गया। अद्यावधि सभी इतिहासज्ञोंके मतानुसार मीराँ के पिता की मृत्यु मीराँ के विवाह और वैधव्य के बाद ही वि० सं० १५८४ में कानवा के युद्ध में हुई थी। इस विषय पर प्राप्त पदों से कहीं भी कोई भी प्रकाश नहीं पड़ता। इतिहास अनिश्चित है। अतः मीराँ के पिता का निश्चित समय और परिचय देना अद्यावधि प्राप्त सामग्री के आधार पर सम्भव नहीं। तथापि यह विशेष ध्यान देने योग्य है कि 'वीर विनोद' के अनुसार मीराँ के पिता का नाम रत्नसिंह था और मुंशी देवीप्रसाद तथा अन्य सभी विद्वान भी इससे सहमत हैं। कर्नल टाड भी जहां मीराँ को राव दूदा जी की पौत्री कहते हैं, मीराँ के पिता का नाम राव रत्नसिंह ही बताते हैं तथापि वे स्वयं ही अनिश्चित प्रतीत होते हैं।

माता

मीराँ की माता कौन थीं और कब तक जीवित रहीं यह प्रश्न भी एक कठिन समस्या रूप में ही हमारे सामने आता है। 'चौरासी व दो सौ बावन वैष्णवण की वार्ता' नाभादास द्वारा, रचित 'भक्त माल' और ध्रुवदास की 'भक्त नामावली' इस विषय पर कोई प्रकाश नहीं डालती। प्रियादास कृत 'भक्तमाल की टीका, के आधार पर तो मीराँ के विवाह तक उनके माता व पिता दोनों का ही जीवित रहना सिद्ध होता है।

"मेरतौ जनम भूमि, झूमि हित नैन लागे, पगे गिरधारी लाल,
पिता ही के धाम में ।
राना कै सगाई भई, करी व्याह् सामानई गई मति बूड़ि, वा
रंगीले घनश्याम में ।
भांवरे परत, मन सांवरे सरूप मांझ, तांवरे सी आवें, चलिबे
कौ पति ग्राम में ।
पूछै पिता माता पट आभरन लीजियेजू, लोचन भरत नीर कहा
काम दाम में ।"

मीराँ के बारे में सभी प्रचलित जनश्रुतियों को एकत्रित करने का ही प्रयास प्रियादास जी ने किया। अतएव इनकी लिखी हुई भक्तमाल की टीका पर निर्भर नहीं रहा जा सकता । कर्नल टाड इस विषय पर कुछ नहीं कहते । स्व० मुंशी देवीप्रसाद जी, हरविलास शारदा, गहलोत जी और ओझा जी आदि इतिहासज्ञों के अनुसार मीराँ की छोटी (कदाचित ४, ५ वर्ष की) वयस में ही उनकी माता का निधन हो गया था । अधिकांश आधुनिक विद्वान भी मुंशी देवीप्रसाद जी के मत को लेकर ही चलते हैं तथापि उन विद्वानों ने अपनी इस मान्यता का कोई विशेष कारण नहीं दिया है । 'मीराँ-स्मृति-ग्रंथ' में प्रकाशित 'मीराँ के जीवन-वृत्त का स्थानीय साक्ष्य, पृष्ठ ५१ पर विद्यानन्द शर्मा लिखते हैं, "मीराँ बाई की माता का नाम कुसुम कुंवर था । वे टांकनी की राजपूतिनी थीं । मीराँ बाई के नाना केलनसिंह जी थे। उनकी माता जी के निवास-स्थान का पता काफी खोज करने पर भी अभी तक नहीं मिल सका । तीन वर्ष की अवस्था में उनके पिता जी तथा दस वर्ष की अवस्था में उनकी माता जी का शरीरान्त

हो गया। उनका शेष अविवाहित काल अपने बाबा राव दूदा जी के पास मेड़ते (जोधपुर) बीता।" स्व० पुरोहित जी के अनुसार "मीराँ बाई की माता का नाम वीर कुंवरि था और नाना का नाम सुलतान सिंह था। ये जाति के झाला राजपूत थे। गोगूंदा गांव में व्याहे थे। (व्यक्तिगत नोट से उद्धृत)

'मीराँ-स्मृति-ग्रंथ' के अंत में 'पदावली परिचय' के अन्तर्गत पृष्ठ (च) पर श्री ललिता प्रसाद शुक्ल लिखते हैं" "मीरां बाई जब मेड़ते से बृन्दावन की ओर चलीं तो उनके साथ कृष्ण भक्तों का एक बड़ा समूह तो था ही, किन्तु उनकी वह दासी जिसका नाम ललिता था, जो प्रायः बाल्यकाल से ही अनुचारिका-रूप में छाया की तरह सुख और संभोग, दुःख और विपत्ति में भी हर जगह उनके साथ रहती थी, रुग्न होते हुए भी उनके साथ होलीं। यह अवस्था में उनसे कुछ बड़ी थीं। यों तो वह राजकुल की दासी थी, किन्तु मीराँ पर उसकी भक्ति और स्नेह वात्सल्य और सख्य का एक अद्भुत मिश्रण था।"

आगे पृष्ठ ६ पर लिखते हैं:—"माई सूचक उनके सम्बोधन पर कई बार विविध मेधावी जनों द्वारा आलोचनात्मक सन्देह प्रकट किया जा चुका है, जिसका आधार मेवाड़ कुल का इतिहास है, जिसके अनुसार मीराँ बाई अपने बाल्यकाल में ही मातृ-विहीना हो चुकी थीं। अतः अपनी माता को जीवन के परवर्त्ती काल में कहे गये पदों में स्मरण करना या सम्बोधित करना कुछ अप्रासंगिक सा जान पड़ता है। सखी या सहचरी के सम्बोधन पर ऐसी कोई आपत्ति नहीं, यदि दासी ललिता की

अनुश्रुति प्रामाणिक हो तो ये दोनों ही शंकाएं सुलझ जाती हैं। राजकुल की मीराँ और वह भी भक्तिमार्गानुगामिनी यदि अपनी चिर सहचरी ललिता दासी के साथ सखी का सा बर्ताव करती हों तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। साथ ही उस अनुश्रुति के अनुसार दासी ललिता अवस्था में उनसे कुछ अधिक थीं। इस नाते स्नेहवश यदि 'माई' का सम्बोधन भी उसी के लिये हो तो भी कोई आश्चर्य नहीं। उपर्युक्त अन्तरसाक्ष्य के अतिरिक्त ललिता विषयक अनुश्रुति की प्रामाणिकता का एक पुष्ट वहिर्साक्ष्य भी स्पष्ट रूप में प्रसिद्ध भक्त ध्रुवदास जी द्वारा लिखित 'भक्तनामावली' में प्राप्त होता है। मीराँ के सम्बन्ध में उन्होंने निम्नलिखित पक्तियां लिखीं हैं :-

लाज छांड़ि गिरधर भजी करी न कछु कुल कानि।
सोई मीराँ जग विदित प्रगट भक्ति की खानि।
ललिता हू लइ बोली कै तासों हों अति हेत।
आनंद सो निरखत फिरै बृन्दावन रस खेत।

इस उल्लेख की तृतीय पंक्ति केवल ललिता के व्यक्तित्व को ही स्थापित नहीं करती वरन 'तासों हो अति हेत' कहकर निस्सन्देहात्मक रूप से ललिता और मीराँ के पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध को भी सिद्ध कर देती है। अतः गुर्जर प्रदेश में प्रसिद्ध ललिता विषयक अनुश्रुति पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं जान पड़ता।"

प्राप्त ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर निश्चित रूपेण निर्भर रहना सम्भव नहीं और प्राप्त पदों के आधार पर माता का जीवित रहना ही सिद्ध होता है। सभी संग्रहकर्ताओं

ने ऐसे पदों को प्रायः इसी एक ही रूप में अपने अपने संग्रह में स्थान दिया है। ये पद निम्नांकित हैं :–

१–"मांई म्हांने सुपणे में परण गया जगदीस।
सोती को सुपणा आविया जी, सुपणा बिस्वाबीस।
माँ:–गैली दीखे मीराँ बावली, सुपणा आल जंजाल।
मीराँ:–माई म्हाने सुपणे में परण गया गोपाल।
अंग अंग हल्दी में करी जी, सुधै भीज्यो गात।
मांई म्हांने सुपणे में, परण गया दीनानाथ।
छप्पन कोट जहां जान पधारे, दुलहा श्री भगवान।
सुपणे में तोरण बांधियों जी, सुपणे में आई जान।
मीराँ को गिरधर मिलिया जी, पूरब जनम के भाग।
सुपणे में म्हांने परण गया जी, हो गया अचल सुहाग।"
('मीरां बाई की पदावली पद २७')

२–"मीरां–तू मत बरजै माइड़ी साधां दरसन जाती।
राम नाम हिरदै बसै, माहिले मद माती।
मां–माई कहे सुन धीहड़ी, काहे गुण फूली।
लोक सोवै सुख नींदड़ी, थे क्यूं रैणज भूली।
मीराँ–गेली दुनियां बावली, ज्यां कूं राम न भावै।
ज्यांरे हिरदै हरि बसे, त्याकूं नींद न आवै।
चौबास्यां की बावड़ी, ज्यां कूं नीर न पीजै।
हरि नारे अमृत झरे, ज्यां की आस करी जै।
रूप सुरंगा राम जी, मुख निरखत जीजै।
मीराँ व्याकुल विरहणी, अपनी कर लीजै।"
('वही–पद २८)

उपर्युक्त दोनों पदों में क्रियाएं सभी वर्त्तमान काल की हैं। सभी अभिव्यक्तियों से कार्य और विरोध दोनों का साथ ही साथ होना व्यक्त होता है।

बालसुलभ चपलता से आच्छादित किसी गम्भीर भाव की अभिव्यक्ति ही पदों से सुस्पष्ट हो उठती है। 'सुपणे में परण गया जगदीस' जैसी उक्ति किसी सप्त वर्षीया बालिका की नहीं हो सकती। 'लोक सोवै सुख नींदड़ी, थे क्यूं रैणज भूली" जैसा प्रश्न भी कोई मां अपनी सप्त वर्षीया कन्या से नहीं कर सकती। दोनों पदों की अभिव्यक्तियों से मीराँ की यौवनावस्था झलक उठती है। यहां शंका होती है कि यह मां नाम्नी स्त्री कौन है? शायद, मां के रिक्त स्थान की पूर्ति करने वाली किसी अन्य स्त्री को ही मीराँ ने 'मां' समझ लिया हो। तथापि, बाल्यावस्था के इस भ्रम का यौवनावस्था में मिट जाना ही अधिक स्वाभाविक प्रतीत होता है। सम्भव है कि सत्य को जानते हुए भी अपनी महानता के कारण मीराँ ने पालन करने वाली उस अन्य स्त्री को सदा ही मातृ पदोचित सम्मान व स्नेह दिया हो अतएव सदा मां नाम से ही सम्बोधित किया हो। तब भी, मातृ-पद के रिक्त स्थान की पूर्ति करने वाली किसी भी अन्य स्त्री का महत्व इतना अधिक नहीं हो सकता जैसा मीराँ के पदों से व्यक्त होता है। इस मां द्वारा किये गये हलके से विरोध को भी अपने पदों में सुरक्षित कर मीराँ ने अपनी मां को महत्वपूर्ण स्थान दिया है क्योंकि पदों में कुछ प्रमुख सम्बन्धियों की ही चर्चा है। ऐसे पदों में भी अधिकांश वे पद हैं, जिनमें किसी 'राणा' के प्रति कटुता का वर्णन है, और कुछ ही पद ऐसे हैं जिनमें सास, ननद और मां की

चर्चा हुई है। अन्य सम्बन्धियों की चर्चा करते हुए मीराँ ने कहीं भी सम्बन्ध विशेष की अभिव्यक्ति स्पष्ट नहीं की वरन् 'भाई-बन्धु' 'स्वजन', 'कुटुम्बी', 'स्नेही' आदि सम्बोधनों से ही काम निकाल लिया है। यह देखते हुए इस 'मां' नाम्नी स्त्री का महत्व बहुत बढ़ जाता है। यह मां कौन है? क्या मीराँ की अपनी मां ही जीवित है या मां के रिक्त स्थान की पूर्ति करने वाली अन्य कोई स्त्री है?

भाई-बहन

'८४ वैष्णवण की वार्ता' में "गुंसाई जी के सेवक हरिदास बनिया तिनकी वार्ता", के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि मेरता गाम को राजा जयमल की एक 'बेन' थी जो परदे में रहती थी, और जिसने पुष्टि मार्ग में दीक्षा ली थी व जिसका घर हरिदास बनिये के घर के सामने था। परन्तु 'वार्ता' से यह स्पष्ट नहीं होता कि यह 'जयमल की बेन' कौन थी। अपनी पुस्तक 'मीराँ बाई' में पृष्ठ २४ पर डा० लाल लिखते हैं, "मीराँ बाई जयमल की चचेरी बहन अवश्य थीं, परन्तु परदे में रहने वाली तथा गोसांई विट्ठलदास की शिष्या होने वाली यह राजा 'जयमल की बेन' मीराँ बाई के अतिरिक्त कोई अन्य बहन रही होगी क्योंकि मीराँ बाई तो अपने ससुराल में भी परदा न करती थीं और गोविन्द दूबे, रामदास पुरोहित, कृष्णदास अधिकारी आदि सभी से निर्भय भगवत् वार्ता करती थीं और वे कभी भी वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित नहीं हुईं, जैसा कि ८४ वैष्णवण की वार्ता से स्पष्ट है।"

"वीर-विनोद" में 'महाराणा संग्रामसिंह' प्रकरण के अन्त-

गंत पृष्ठ ३६२ पर लिखा है, "महाराणा सांगा के पाटवी याने सबसे बड़े पुत्र भोजराज थे, जिनको मेड़ता के मेड़तिया राजा बीरमदेव की बेटी और जयमल की बहिन ब्याही गयी थीं।" अतः सम्भव है कि जयमल की कोई अपनी सगी बहन भी रही हों। अद्यावधि प्राप्त इतिहास के आधार पर यही सर्वमान्य है कि मीराँ अपने पिता की इकलौती संतान थी और उनका बचपन अपने दादा के यहां बीरमदेव के एकमात्र पुत्र प्रसिद्ध भक्त जयमल के साथ साथ बीता था। सम्भव है कि '८४ वैष्णवण की वार्ता' में मेड़ते के 'राजा जयमल की जिस 'बेन' की चर्चा है वह यही हों। पुरोहित जी भी लिखते हैं,"जयमल जी बीरमदेव जी के बड़े बेटे थे। जन्म सं० १५६४ में हुआ था। गद्दी सं० १६०० में, पिता के मरने पर, सं० १६२४ में वीरगति प्राप्त हुए।" (व्यक्तिगत नोट से उद्धृत) 'जयमल बड़े बेटे थे' से ऐसा ही आभासित होता है कि जयमल अपने पिता की इकलौती सन्तान न थे, अपितु उनसे छोटे कोई भाई बहन अवश्य ही रहे होंगे। 'सन्तवाणी' जनवरी १९४९ के अपने लेख में पुरोहित जी लिखते हैं, "मीराँ जी से पूर्व रतनसिंह जी उनके पिता के एक पुत्र हुआ था, उसका नाम गोपाल जी था। वह कुछ समय पीछे मर गया।" बदनोराधीश ठाकुर गोपालसिंह राठोड़ मेड़तिया "जयमल वंश प्रकाश" में लिखते हैं, रत्नसिंह जी के कोई पुत्र नहीं हुआ, केवल एक पुत्री हुई जो मीराँ बाई के नाम से विख्यात है।" सभी आधुनिक विद्वान् बदनोराधीश के कथन का समर्थन करते हैं। मुंशी देवीप्रसाद, ओझा जी, गहलोत जी, सारडा जी आदि सभी प्रमुख विद्वानों के मतानुसार मीराँ राव रत्नसिंह की इकलौती पुत्री थी।

लालन-पालन व शिक्षा-दीक्षा

मां के निधन के कारण बचपन से ही मीराँ अपने दादा, परम वैष्णव भक्त राव दूदा जी के पास रहीं और वहीं उनका लालन-पालन व शिक्षा-दीक्षा भी हुई। अपने परम वैष्णव भक्त दादा से उनको प्रेरणा मिली और शीघ्र ही वे भी कृष्ण प्रेम में रंग उठीं, यही ऐतिहासिकों का मत है। सर्वमान्य है कि रत्नसिंह जी के अग्रज वीरमदेव के पुत्र प्रसिद्ध भक्त परम वैष्णव जयमल का भी लालन-पालन राव दूदा जी की ही संरक्षता में हुआ, अतः वे भी अपने दादा की भक्ति से प्रेरित हुए थे।

प्राप्त सामग्री के आधार पर मीराँ की माता के निधन पर निश्चित रूपेण कुछ नहीं कहा जा सकता। किसी भी प्राचीन ग्रंथ में कोई ऐसा सूत्र प्राप्त नहीं होता जिससे उपर्युक्त कथन को समर्थन प्राप्त हो। कर्नल टाड ने भी राजस्थान का इतिहास लिखते हुए मीराँ की चर्चा मात्र की है, अतः मीराँ के जीवन की किसी भी घटना के बारे में वे भी कुछ नहीं कहते। 'वीर-विनोद' आदि प्राचीन ग्रंथ भी इस विषय पर सर्वथा मौन हैं। मुंशी देवी-प्रसाद और उन्हीं के आधार पर अन्य इतिहासज्ञ भी यह मानते हैं कि मीराँ का लालन-पालन व शिक्षा-दीक्षा राव दूदा जी की संरक्षता में हुई थी। परन्तु जब तक कि मीराँ की माता का निधन सुनिश्चित नहीं हो जाता तब तक यह भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि मीराँ अपने दादा राव दूदा जी की संरक्षता में पली थीं।

प्राप्त पदों से भी इस विषय पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

मीरां ने अपने प्रति किये गये कटु व्यवहारों की चर्चा बार बार की है। विरोध करने वाली सास, ननद, मां, या मां के रिक्त स्थान की पूर्ति करने वाली किसी अन्य 'मां'की चर्चा की है। राणा के प्रति कटुता, पारस्परिक वैमनस्य, व कहीं कहीं हीन भावना की भी अभिव्यक्ति की है। अपने पथप्रदर्शक तथा लक्ष्य तक पहुंचाने में सहायक गुरु संत रैदास की भी चर्चा की है। फिर भी, मां के निधन के बाद अपने एक मात्र आश्रय और पालन-कर्ता, संस्कृति-दाता अपने दादा परम वैष्णव भक्त, राव दूदा जी की भूलकर भी कहीं चर्चा नहीं की। यह स्वाभाविक नहीं मालूम पड़ता। जब कि मीरां ने अपने संघर्ष जनित कटु अनुभवों का बार बार वर्णन किया, उस संघर्ष का कारण, कृष्ण-प्रेम की प्रेरणा देने वाले अपने दादा, राव दूदा जी और अपने साथ लालित-पालित व प्रसिद्ध कृष्ण-भक्त परम वैष्णव जयमल के बारे में सर्वथा मौन धारण कर लिया है। साहित्य परम्परानुकूल अन्य वैष्णव भक्तों का वर्णन करती हुई भी मीरां को अपने पालन-कर्ता प्रसिद्ध कृष्ण-भक्त, परम वैष्णव अपने दादा राव दूदा जी की याद नहीं पड़ती।

मीरां के पदों में 'माइतणो मोसाल' की अभिव्यक्ति मिलती है। यह 'माइतणो मोसाल' क्या है? शायद ननिहाल या मौसी के घर का ही पर्यायवाची हो, शायद दो विभिन्न शब्द हों। अधिक सम्भव है दो ही शब्द हों क्योंकि मारवाड़ी में 'मायत' एक शब्द है, जिसका अर्थ है मां बाप की तरह स्नेहमय अधिकार रखने वाले, पथ-प्रदर्शक बुजुर्ग। प्रचलित प्रथानुसार यह शब्द सभी निकट बुजुर्ग सम्बन्धियों के लिये प्रयुक्त होता है। इस

शब्द का रूढ़ि वाचक अर्थ मात्र बुजुर्ग ही रह गया है। मीराँ को समझाते हुए सास कहती हैं :–

"लाजै पीहर सासरो, माइतणो मोसाल।
सबही लाजै मेड़तिया जी, थांसू बुरा कहे संसार।"
(वही-पद २९)

स्पष्ट ही इस 'माइतणो मोसाल' का महत्व 'पीहर' या 'सासरो' के समकक्ष का ही है। हिन्दू स्त्री के जीवन में दो ही घर विशेष महत्वपूर्ण होते हैं, एक पीहर दूसरा ससुराल। प्रायः समान महत्व प्राप्त इन दो घरों में भी ससुराल ही अधिक महत्वपूर्ण होती है। मारवाड़ी में एक कहावत प्रसिद्ध है 'बाम्हन बेटी बराबर'–ब्राह्मण और कन्या समकक्ष होते हैं। इस कहावत से सामाजिक स्थिति सुस्पष्ट हो जाती है। पिता के घर में आदरणीय स्थान पाती हुई भी लड़की अतिथि भर होती है। जैसे प्रत्येक सद्गृहस्थ के लिये ब्राह्मण पूजनीय हैं, आदरणीय हैं, ब्राह्मण के प्रति सद्व्यवहार ही गृहस्थ का अनन्य धर्म है, ठीक वैसे ही लड़की प्रत्येक घर में आदरणीय और पूजनीय है, सद्-व्यवहार की अधिकारिणी है तथापि घर की मेहमान भर है। इसके विपरीत ससुराल में स्त्री की अपनी एक इकाई है। पति पत्नी की दो विभिन्न इकाइयां एक हो जाती हैं। पुरुष अपने घरमें एक इकाई होता है अतएव पत्नी की भी एक स्वतंत्र इकाई बन जाती है। ससुराल में उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व होता है, अधिकार होता है। स्त्री के जीवन का बड़ा भाग, उसका दुःख सुख, उसका संघष या सफलता सब कुछ ससुराल में ही बीताती है अतः 'लाजै पीहर सासरो' अत्यधिक सहज प्रतीत होता है। विरोध करती हुई

सास कहती है 'सब ही लाजै मेड़तिया जी' होता है। यह भी मारवाड़ में प्रचलित प्रथा को देखते हुए अत्यन्त स्वाभाविक है। मारवाड़ी कई विभिन्न शाखा-प्रशाखाओं में बंटे हुए हैं। किसी भी विशेष शाखा की लड़की को उसी शाखा के अन्य व्यक्ति अपनी ही बेटी या बहनवत् ही मानेंगे। आज जब कि और सभी प्रचलित छोटी मोटी रूढ़ियों में शिथिलता आती जा रही है, यह प्रथा ज्यों की त्यों बनी है। इस प्रथा को देखते हुए 'सब ही लाजै मेड़तिया जी' भी अत्यधिक स्वाभाविक मालूम होता है। फिर भी 'लाजै माइतणो मोसाल' कहना तो कुछ आश्चर्यजनक ही मालूम होता है। नाना और मौसी के घर से स्त्री का सम्बन्ध बहुत ही गौण होता है। मां की मृत्यु के बाद तो ननिहाल के अन्य स्वजनों के साथ सम्बन्ध और भी कम हो जाता है। आम तौर से लड़के, लड़की का सम्बन्ध तय करते हुए भी ननिहाल के लोगों से राय नहीं ली जाती। फिर मौसी का घर तो और भी दूर पड़ जाता है। यदि 'माइतणो मोसाल' को एक ही शब्द मान लिया जाय तो भी इससे आभासित होता अर्थ मौसी के घर को ही लक्ष्य करता है। 'माइतणो मोसाल' अर्थात् वयोवृद्ध मौसी। यदि इसको दो विभिन्न शब्द मान लिया जाय तो अर्थ और भी स्पष्ट हो उठता है। 'पीहर' 'सासरो' 'सब ही मेड़तिया' तो लजाते ही हैं, साथ ही साथ वयोवृद्ध वर्ग और मौसी का घर भी लजाता है। दोनों में से किसी अर्थ को मान लेने पर भी मौसी के घर की महत्ता अक्षुण्ण रहती है। ऐसा क्यों? क्या मां के रिक्त स्थान की पूर्ति मौसी ने की? क्या मीराँ का बचपन 'मोसाल' में बीता? यह 'मोसाल' कहां था? इस घर

की शिक्षा-दीक्षा, रहन-सहन और संस्कृति कैसी थी ? इन बातों का विचार करने पर सम्भव है कि मीराँ के लालन-पालन व शिक्षा-दीक्षा के प्रसंग पर कुछ और भी प्रकाश पड़ सके। तथापि इस पद की प्रामाणिकता निस्संदेह नहीं। मीराँ के नाम पर प्रचलित अधिकांश पदों की प्रामाणिकता विचारणीय है, तथापि उनकी सर्वथा अवहेलना भी विशेष अन्य सुनिश्चित सामग्री मिलने तक तो कदापि नहीं की जा सकती।

—:०:—

विवाह और वैधव्य

मीराँ का विवाह कब और किसके साथ हुआ यह एक बहु-विवादित प्रश्न है। भक्तों द्वारा लिखित प्राचीन ग्रंथों के आधार पर इस विषय पर कोई निश्चित प्रकाश नहीं पड़ता। फिर भी, यह बात ध्यान देने योग्य है कि प्राचीन ग्रंथों में मीराँ को 'राणी' सम्बोधित किया गया है[1]। कर्नल टाड ने मीराँ को राणा कुम्भ की राणी माना है। कुछ गुजराती व दक्षिणी विद्वानों ने कर्नल टाड का समर्थन किया है। मुंशी देवीप्रसाद ने 'महकमे तवारीख मेवाड़' के आधार पर कर्नल टाड का खण्डन करते हुए मीराँ को भोजराज की विधवा युवराज्ञी माना है। श्री ओझा जी, गहलोत जी, सारडा जी आदि सभी प्रसिद्ध इतिहासज्ञों ने मुंशी जी का

१. "वीर-विनोद" में 'महाराणा रत्नसिंह' के अन्तर्गत पृष्ठ १ पर दिया गया फुटनोट, "हमारे यहां व मेड़तिया राठोड़ो की (जोधपुर की) तवारीखों में मीराँ बाई को भोजराज की राणी लिखा है।"

समर्थन और प्रायः सभी आधुनिक लेखकों ने मुंशी जी का अनुसरण किया तथापि 'महकमे तवारीख' मेवाड़, से विभिन्न अवसर पर प्राप्त समाचार परस्पर विरोधी हैं। 'मीराँ-स्मृति-ग्रंथ' में 'मीराँ बाई का ऐतिहासिक जीवन वृत' के लेखक डा० जी० राय चौधरी, पी० एच० डी० पृष्ठ ११७ पर लिखते हैं, "मेवाड़ वंश की जो सूचना राजमहल से प्राप्त हुई थी उसके आधार पर फारकुहर लिखता है कि मीराँ बाई का विवाह राणा कुम्भ के युवराज के साथ हुआ था, जो अपने पिता के सामने ही मर चुके थे, किन्तु उपर्युक्त कारणों के आधार पर यह भी सम्भव नहीं जान पड़ता।" मुंशी देवीप्रसाद जी के द्वारा दो बार की गयी लिखा पढ़ी के दो विभिन्न उत्तर हैं।[1] स्पष्ट है कि 'महकमे तवारीख' से प्राप्त समाचार संशयोत्पादक हैं। मीराँ बाई के पिता राव रत्नसिंह जी राव दूदा जी के पुत्र थे या पौत्र, इसका भी निश्चय होना अत्यावश्यक हो उठता है क्योंकि पुत्र और पौत्र के बीच काफी समय का अन्तर पड़ना ही स्वाभाविक है। यदि राव दूदा जी की पौत्री भोजराज के समकालीन पड़ती

१. मुंशी देवीप्रसाद लिखित "मीराँ बाई का जीवन चरित्र" के पृष्ठ२ पर दिया गया फुटनोट, "मीराँ बाई का सही हाल सिवाय इसके हमको मालूम न हुआ कि वे राव दूदा जी के पोते मेड़तिया राठोड़ राव रतनसिंह जी की बेटी थीं और महाराणा सांगा के कुंवर भोजराज को ब्याही गयी थीं।"
वहीं ३ पर दिया गया फुटनोट, "मीराँ बाई का हाल जियादतर तो किस्से कहानी है और हर जगह मशहूर है। मीराँ बाई महाराणा सांगा के दूसरे बेटे भोजराज की राणी और मेड़ते के राव दूदा जी के बेटे रतनसिंह की बेटी थीं।"

हैं तो प्रपौत्री का समय निश्चिय ही बहुत आगे चला आता है अतः मीराँ के पति का निश्चय करने के पूर्व पिता का समय निर्धारण अत्यावश्यक हो उठता है।

इतिहास की परम्परा से भोजराज मीराँ के फुफेरे भाई सिद्ध होते हैं। अतः ऐसी अवस्था में भी भोजराज से मीराँ का विवाह असंगत ही प्रतीत होता है। 'मीराँ माधुरी' में डा० ब्रजरत्नदास पृष्ठ १२ पर लिखते हैं, "इन सम्बन्धों के अनंतर बीरमदेव के भाई रत्नसिंह की पुत्री मीराँ बाई का विवाह राणा सांगा के पुत्र राजकुमार भोजराज से हुआ था। मीराँ बाई राणा सांगा की पुत्री की भ्रातुष्पुत्री अर्थात् राणा सांगा की नतिनी हुईं तथा साथ ही पुत्रबधू भी हुईं। भोजराज की बहन तथा मीराँ बाई की ननद पद्मा बाई राव गांगा जी को ब्याही थी, जो मीराँ बाई के भाई लगते थे। ये दोनों जोधा जी के प्रपौत्र तथा प्रपौत्री थीं। मीराँ बाई की बूआ धनाबाई के भोजराज पुत्र थे, अर्थात् फुफेरे भाई का सम्बन्ध था।"

'वीर-विनोद' में 'महाराणा सांगा' प्रकरण के अन्तर्गत पृष्ठ ३१२ पर, "महाराणा सांगा के पाटवी याने सबसे बड़े पुत्र भोजराज थे, जिनको मेड़ता के मेड़तिया राजा वीरमदेव की बेटी और जयमल की बहन ब्याही गयी थीं।" अद्यावधि प्राप्त इतिहास के आधार पर मीराँ राव रत्नसिंह की ही पुत्री मानी जाती हैं। "८४ वैष्णवण की वार्ता" में 'गोसाँई जी के सेवक हरिदास बनिया तिनकी वार्ता' के अन्तर्गत किसी जयमल की बेन' का वर्णन मिलता है जो पर्दा करती थीं अतः 'पत्र द्वारा गोसाँई जी की सेविका हुई थीं व जिनका घर हरिदास बनिये

के घर के सामने था। क्या सम्भव है कि भोजराज को ब्याही जाने वाली यह 'बीरमदेव की पुत्री' राजा जयमल की वही 'बेन' हों? तब क्या भोजराज के दो विवाह हुए थे? प्राप्त इतिहास यही बतलाता है कि भोजराज अल्पजीवी थे और मीराँ से विवाह होने के बाद बहुत शीघ्र ही उनकी मृत्यु हो गयी थी। शायद भोजराज को ब्याही जाने वाली 'मेड़ते की राजकुमारी' मीराँ से अन्य कोई रही हो। प्राप्त पदों की अभिव्यक्ति के आधार पर भी मीराँ सधवा ही प्रतीत होती हैं। इसकी विशेष विवेचना 'वैधव्य' शीर्षक के अन्तर्गत की गयी है। इतिहास से यही सिद्ध होता है कि भोजराज अल्पजीवी थे। तब, स्वाभाविकतः यह प्रश्न उठता है कि मीराँ के यह राणा कौन थे जिनके प्रति की गयी अभिव्यक्ति के आधार पर मीराँ सधवा सिद्ध होती हैं।

प्राप्त सामग्री का विशेष अध्ययन करने पर यह सिद्ध हो जाता है कि अद्यावधि ऐसा कोई निश्चित प्रमाण नहीं जिसके आधार पर मीराँ को भोजराज की विधवा प्रमाणित किया जा सके। 'मीराँ-स्मृति-ग्रंथ' के भूमिका-लेखक श्री रामप्रसाद त्रिपाठी पृष्ठ (-) पर लिखते हैं, "मीराँ का विवाह मेवाड़ के प्रसिद्ध राणा सांगा के किसी राजकुमार से हुआ। ओझा जी का अनुमान है कि उसका नाम भोजराज था।"

भोजराजः—अद्यावधि प्राप्त भोजराज का जीवन-वृतान्त इस गुत्थी को और भी उलझा देता है। उसके आधार पर भोजराज के जीवन-काल या जीवन की किसी भी घटना का निश्चय करना असम्भवप्राय ही हो उठता है। ९ सितम्बर

सन् १९३८ ई०कोश्री पुरोहित जी को लिखे गये अपने पत्र में राय-बहादुर श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा लिखते हैं, "इस प्रकार कुंवर भोजराज के जन्म और मृत्यु का संवत् भी अब तक अज्ञात है।" इतना ही नहीं, किसी विद्वान के अनुसार भोजराज महाराणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र हैं तो अन्य किसी विद्वान के अनुसार वे उनके दूसरे पुत्र हैं। ओझा जी, मुंशी जी, सारडा जी और बदनोराधीश ठाकुर गोपालसिंह राठोड़ मेड़तिया के कथनानुसार भोजराज 'पाटवी कुमार' सिद्ध होते हैं[1]। गहलोत जी निश्चित रूपेण कुछ नहीं कहते[2]। 'महकमे तवारीख मेवाड़' भोजराज

१—ओझा जी लिखित 'उदयपुर राज्य का इतिहास' में 'महाराणा संग्राम-सिंह' के अन्तर्गत पृष्ठ ३५८ पर "महाराणा का ज्येष्ठ कुंवर भोजराज था।"

मुंशी जी लिखित 'मीराँ बाई का जीवन चरित्र' पृष्ठ ७ पर मीराँ बाई का विवाह १५७३ वि० सं० "राणा सांगा के बड़े बेटे भोजराज से कर दिया।"

हरविलास सारडा लिखित "महाराणा सांगा" पृष्ठ ८७ पर "उनका सबसे बड़ा कुंवर भोजराज।"

बदनोराधीश गोपाल सिंह मेड़तिया राठौड़ लिखित 'जयमल-वंश-प्रकाश' पृष्ठ ७१ "मीराँ बाई का विवाह महाराणा संग्रामसिंह के युवराज भोजराज से हुआ।"

२—गहलोत जी लिखित "राजपुताने का इतिहास" पहला भाग पृष्ठ ११९ पर "महाराणा कुम्भ संगीत विद्या में प्रवीण था, उनके प्रपोते राजकुमार भोज की स्त्री सती मीराँ बाई का मलार राग प्रसिद्ध है।"

को महाराणा सांगा का 'दूसरे बेटे मानता है'[1]; 'वीर-विनोद' में दो विभिन्न सम्मतियां प्राप्त हैं, जिसमें एक के आधार पर भोजराज 'दूसरे बेटे' और दूसरे के आधार पर 'पाटवी कुमार' सिद्ध होते हैं[2]। 'मीराँ-माधुरी' में डा० ब्रजरत्नदास पृष्ठ १२ पर लिखते हैं, "राव जोधा जी के पौत्र वाघा सूजावत की पुत्री धन बाई या धन कुंवर का विवाह राणा रायमल के पुत्र प्रसिद्ध राणा सांगा से हुआ था जिनसे भोजराज, कर्णसिंह, और रत्नसिंह पुत्र हुए थे[3]। 'वीर-विनोद' के आधार पर भोजराज 'सोलंकी रायमल की बेटी के गर्भ से जन्मे थे।' परस्पर विरोधी विभिन्न मान्यताओं के

१—मुंशी देवीप्रसाद लिखित "मीराँ बाई का जीवन चरित्र" में पृष्ठ ३ पर दिया गया, फुटनोट "मीराँ बाई महाराणा साँगा के दूसरे बेटे भोजराज की राणी थीं।"

२—'महाराणा रत्न सिंह' प्रकरण के अन्तर्गत पृष्ठ १ पर, "इनमें से २ (दूसरे) भोजराज जो सोलंकी रायमल की बेटी के गर्भ से जन्मे थे उनका विवाह मेड़ते के राव दूदा जी के पांचवें बेटे रत्नसिंह की बेटी मीराँ बाई के साथ हुआ था।"

'महाराणा संग्रामसिंह' के अन्तर्गत पृष्ठ ३६२ पर, "महाराणा सांगा के पाटवी याने सबसे बड़े पुत्र भोजराज थे जिनको मेड़ता के मेड़तिया राजा बीरमदेव की बेटी और जयमल की बहन ब्याही गयी थी।"

फुटनोट:—वहीं फुटनोट में ब्रजरत्नदास जी लिखते हैं—

३—"वीर-विनोद' में कुंवर भोजराज की माता से सोलंकी रायमल की पुत्री कुंवर बाई लिखी हैं, जो बड़वे देवीदान की ख्यात के आधार पर है वीर-विनोद, बड़वेदीन की ख्यात तथा नैणसी की ख्यात।"

रहते भोजराज के जीवन-काल का भी निर्णय करना दुरूह है, अतः निश्चय पूर्वक यह कहना कि मीराँ का विवाह भोजराज के साथ हुआ था असंगत ही प्रतीत होता है। विशेष रूपेण जब कि प्राप्त वृतान्त की कोई भी अन्य घटना पदों से व्यक्त होती किसी भी घटना या भावना के साथ मेल नहीं खाती।

ऊदां बाईः—कथनोपकथन की शैली में प्राप्त मीराँ के पदों में ऊदां बाई का उल्लेख मिलता है। प्रायः सभी संग्रहों में कुछ न्यूनाधिक रूपेण ऐसे पद मिल जाते हैं। अद्यावधि प्राप्त मीराँ के जीवन-वृतान्त के आधार पर भी इस कथानक को समर्थन प्राप्त होता है। प्रायः सभी विद्वानों का मत है कि ननद ऊदां ने भी भाभी मीराँ को साधु-सेवा से विमुख करने का असफल प्रयास किया था। इतने पर भी इस ऊदां बाई का परिचय एक रहस्य ही बना हुआ है। यह ऊदां बाई कौन थीं, कहां व्याही थीं, इनका जीवन कैसा था, यह जानने का वर्तमान इतिहास में कोई निश्चित सूत्र नहीं। आधुनिक इतिहासकार भोजराज को ही मीराँ का पति मानते हैं, अतः ननद ऊदां बाई निस्संदेह भोजराज की बहन सिद्ध हो जाती हैं, परन्तु इतिहास के अनुसार भोजराज की चार बहनें कुंवर बाई, पद्मा बाई, गंगा बाई और राज बाई थीं[1]। भोजराज की बहनों में ऊदां बाई का नाम

१—गौरीशंकर हीराचन्द ओझा लिखित "उदयपुर राज्य का इतिहास" पृष्ठ ३८४ पर, "भाटों की ख्याति के अनुसार महाराणा सांगा ने २८ विवाह किये थे जिनसे उनके सात पुत्र भोजराज, विक्रमादित्य, उदयसिंह, कर्णसिंह, रत्नसिंह, पर्वतसिंह, और कृष्णसिंह तथा चार लड़कियां कुंवरबाई, गंगाबाई, पद्मबाई और राजबाई हुईं।"

नहीं मिलता। तथापि मीराँ अपनी ननद का नाम ऊदां बाई ही लिखती हैं।

'मीराँ बाई का जीवन और काव्य' नामक अपनी पुस्तक में श्री जगदीशसिंह जी गहलोत पृष्ठ २४ पर लिखते हैं, "इतिहास से जान पड़ता है कि ईडर के राव सूर्यमल के पुत्र राव रायमल जब अपने चाचा भीम के डर से सिंहासन छोड़कर राणा सांगा की शरण में आये तब रायमल की सगाई राणा ने अपनी पुत्री से कर दी। भीम के पश्चात् भारमल गद्दी पर बैठा, जिसे वि०सं० १५७१ में रायमल ने राणा सांगा की सहायता से उतार दिया और स्वयं राजा बना। इन्हीं ईडर के राव रायमल की पत्नी ऊदां मीराँ की ननद थीं।" ओझा जी और 'वीर-विनोद' के आधार पर भी राणा सांगा की किसी एक पुत्री का विवाह ईडर के राव रायमल से होना सिद्ध होता है तथापि वह कौन थीं इस पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता[१]। सम्भव है कि गहलोत जी के कथनानुसार राणा सांगा की ईडर गढ़ व्याही जाने वाली पुत्री का नाम ऊदां रहा हो। ननद ऊदां को भी मीराँ के प्रति शिकायत है 'ईडर गढ़ ते आया ओलमा' (मीराँ माधुरी)

१—ओझा जी लिखित 'उदयपुर राज्य का इतिहास' पृष्ठ ३४७ पर, ईडर राव भाण के दो पुत्र सूर्यमल और भीम थे। राव भाण का देहान्त होने पर सूर्यमल गद्दी पर बैठा और १८ मास तक राज्य करके मर गया। सूर्यमल की जगह उसका पुत्र रायमल ईडर का राजा बना, परन्तु उसकी कम उम्र होने के कारण उसका चाचा भीम उसको गद्दी से उतारकर स्वयं राज्य का स्वामी बन गया। रायमल ने वहां से भागकर महाराणा की शरण ली। महाराणा ने अपनी पुत्री की सगाई उसके साथ कर दी।"

वैधव्य

आज तक सर्वमान्य मत यही है कि मीराँ विधवा थीं और अपनी असह्य वैधव्य वेदना को भूलने के प्रयास में ही उन्होंने सगुणोपासना को अपनाया था, किन्तु मीराँ के पदों में व्यक्त भावना के कारण इस सर्वमान्य मत की प्रामाणिकता में शंका होने लगती है। मीराँ का जीवन भी इस सर्वमान्य मत के विरुद्ध ही गवाही देता है। अपनी अतुल प्रेम-भक्ति के कारण मीराँ को अपने वैष्णव परम्परा से प्रभावित परिवार और समाज दोनों से ही गहरा संघर्ष करना पड़ा था। रूढ़िग्रस्त समाज के अपने अति शक्तिशाली परिवार के अनेकों अत्याचारों और अनुचित लांछनों से अपमानित मीराँ ने बाध्य हो सिर्फ महल ही नहीं अपितु उदयपुर भी छोड़ दिया। यहां हृदय शंकाकुल हो उठता है।

विधवा नारी का हठयोगी जीवन परम्परावादी हिन्दू समाज के आदर्शों के सर्वथा अनुकूल पड़ता है। तब, यदि उदयपुर की विधवा युवराज्ञी ने भी अपने वैधव्य को साधना में बदल डाला तो उसका इतना कठिन विरोध सम्भव ही क्योंकर हुआ? राम द्वारा निर्दोष सीता का परित्याग कराकर राजादर्श की स्थापना कराने वाले समाज से विधवा युवराज्ञी को हठयोगी साधना के लिये लांछित होना पड़े, घर द्वार छोड़कर दर दर की ठोकर खाने पर वाध्य होना पड़े, यह अत्यन्त असंगत मालूम पड़ता है। सास, ननद और किसी राणा द्वारा किये गये अत्याचारों का मीराँ ने विशद वर्णन किया है।

१—"विष का प्याला राणा जी भेज्यां, पीवत मीराँ हांसी रे"

('मीराँ बाई की पदावली' पद ३९।)

२–"विष का प्याला राणा जी भेज्यां, दीजो मेड़तणी के हाथ
कर चरणामृत पी गई, म्हारां सबल धणी का साथ"
(वही, पद ४७)।

३–"सांप पेटारा राणा भेज्यां, मीराँ हाथ दियो जाय
न्हाय धोय जब देखण लागी, सालिगराम गई पाय
जहर का प्याला राणा भेज्यां, अमृत दीन्ह बनाय
न्हाय धोय जब पीवण लागी, हो अमर अंचाय
सूल सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीराँ सुलाय
सांझ भई मीराँ सोवण लागी, मानो फूल बिछाय"
(वही, पद ४५) ।

४–"सास लड़े मेरी ननद खिजावै, राणा रह्या रिसाई पहरो
भी राख्यो चौकी भी बैठा दियो, ताला दियो जड़ाय"
(वही, पद ४६) ।

५–"थारी मारी ना मरूं, मेरो राखन हारो और"
(वही, पद ४७) ।

भवानी और एकलिंग के उपासक होते हुए भी राणा परिवार में कृष्ण-भक्ति नवीन नहीं थी । वैष्णव उपासना पद्धति से प्रभावित परिवार में भी मीराँ को मार डालने तक का षड़यन्त्र रचा गया, मीराँ पर गहरी चौकीदारी की गयी । सगुणोपासना में, कृष्ण-भक्ति में, वैधव्य यातना को भूलने का प्रयत्न करने वाली मीराँ को कितने कठिन और कटु संघर्ष का सामना करना पड़ा, परिवार और समाज दोनों से ही कितना अत्यधिक लांक्षित और अपमानित होना पड़ा, तथापि तत्कालीन समाज पर वैष्णव भक्ति का गहरा रंग छाया हुआ था । एक ओर चैतन्य महाप्रभु

राधा भाव में मग्न हो नाच उठते थे तो दूसरी ओर महाप्रभु वल्लभाचार्य राधा-कृष्ण की प्रेमगाथाओं और राधा-भाव की भक्ति का प्रसार कर रहे थे। उपर्युक्त परिस्थिति पर विचार करने से मीराँ के इस कठोर संघर्षमय जीवन के कारण उनका सगुणोपासना में रत विधवा न होना ही अत्यधिक सम्भव प्रतीत होता है।

१—"बतलायाँ बोली नहीं, राणा जी गया रिसाय"
(वही, पद ४७।)

२—"तुम जाओ राणा जी घर आपणे, मेरी तेरी नाहिं सरी"
(वही, पद ३२।)

३—"राणा जी थे क्याँने राखो म्हाँसू बैर
थे तो राणा जी म्हाँने इसड़ा लागो ज्यूं बृच्छन में केर"
(वही, पद ४७।)

४—"राणा मो पर कोप्यो, रती न राख्यो मोद
ले जाती बैकुंठा माँ, यह तो समझ्यो नहीं सिसोद"
(वही, पद ४७।)

५—"राणा मो पर कोप्यो, म्हांरी तक तक सेज
लाज लागे माँहको, दीजो पीहर भेज
मीराँ महल से उतरी, राणे पकर्‌यो हाथ
हतलेवा को नात रे, परत न मानूं बात"
('मीराँ-माधुरी' पद।)

६—"सास लड़ैरी सजनी, ननद खीजै री,
पीवजी रह्यो री रिसायी"
('मीराँ-माधुरी'।)

उपर्युक्त उद्धरणों से यह सस्पष्ट हो उठता है कि मीराँ सधवा थीं। प्रयत्न यहा किया गया है कि मीरां के सर्वमान्य पदों में से ही उदाहरण लिये जाँय।

उपर्युक्त पदो म दर्द, कटुता और अवहेलना का कितना विचित्र मिश्रण है। क्या देवर राणा के लिये भी ऐसी उक्तियाँ सम्भव हो सकती है?

राणा के साथ बनी नहीं इसलिये मीराँ ने अपना रास्ता अलग चुन लिया है, अतएव अब वह आनन्दमग्न है। राणा उनसे 'बैर' रखते हैं, वे भी राणा के प्रति कठोर हैं, उनके 'बतलाने' पर बोलती तक नहीं, राणा के प्रति 'बच्छन में केर' जैसी कटुता और हीनता का अनुभव करती हैं और तिस पर भी उनके अन्तर की वेदना फट निकलती है कि 'समझया नहा सिसाद।' अपने बालपन के साथी गुरु गोविन्द से मीराँ को जीवन का एक महान लक्ष्य मिला परन्तु राणा ने उसको समझा नहीं। इस अभाव के कारण ही मीराँ ने बाध्य हो अपने 'रावलियारी' साथ खोजने के लिये कदम आगे बढाया। मीराँ की यह खोज पारिवारिक मर्यादा के विरुद्ध पड़ी, अतएव राणा क्रुद्ध हो उठे और मीराँ पर अत्याचारों का पहाड फट पडा। तब भी, क्रुद्ध देवर राणा के प्रति "म्हाँरी तक तक सेज" और 'रती न राख्यो मोद' की अभिव्यक्ति असंगत ही ठहरती है। 'रती'[1] (रति) और 'मोद' की कामना

---

[1] राजस्थानी भाषाओं में मात्राओं को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता है। ह्रस्व दीर्घ में भेद करना तो दूर, प्रायः इन विभिन्न मात्राओं का व्यवहार भी अनावश्यक ही समझा जाता है। ऐसी परिस्थिति में लोकगीतों के आधार पर प्राप्त पदों में भाषा की शुद्धता का न होना आश्चर्यजनक नहीं अपितु सहज ही है।

जो प्रेमी पति के सम्पर्क में ही सम्भव है। उपयुक्त अभिव्यक्तियों से सस्पष्ट हो जाता है कि यह राणा मीराँ के पति ही थे।

श्री ब्रजरत्नदास जी द्वारा सम्पादित 'मीराँ-माधरी' में प्रकाशित एक और पद भी प्रस्तुत विषय पर गहरा प्रकाश डालता है। मीराँ को समझाती हुई ऊदाँ बाई कहती हैं।

"अब मीराँ मान लीज्यो म्हाँरी, हाँजी थाने सैयाँ बरजै सारी
राणा बरजै, राणी बरजै, बरजै सब परिवारी
कुंअर पाटवी सो भी बरजै और सहेल्याँ सारी
सीस फूल सिर ऊपर सोहै, बिदली सोभा भारी
गले गुजारी. कर में कंकण. नेवर पहरं भारी
साधुन के ढिग बैठ बैठ के. लाज गमाई सारी
नितप्रति उठि नीच घर जाओ. कल को लगाओ गारी
बड़ा घराँ का छोरूं कहाओ, नाचो दै दै तारी
वर पायो हिन्दुवाणे सूरज, अब दिल में काँई धारी
तार्‌यो पीहर सासरो, तार्‌यो माय मोसाली तारी
मीराँ न सतगुरु जा मिल्याँ, चरण कंवल बलिहारी"

(मीराँ-माधुरी-पद ७७।)

'कुंअर पाटवी' 'राणा' और 'राणी' सभी मीराँ का विरोध करते हैं। यह 'राणा' और 'राणी' कौन हो सकते हैं? क्या मीराँ के सास-ससुर ही तो नहीं? जब तक मीराँ के श्वसुर जीवित हैं और सिंहासनारूढ़ हैं तभी तक मीराँ की सास भी 'राणी' कहलाती हैं, अतएव इस पद के गाये जाने के समय तक तो मीराँ के सास और ससुर दोनों ही विद्यमान थे यह तो निश्चित हो जाता

है। इस पद में व्यवहृत 'कुंअर पाटवी' शब्द भी ध्यान देने योग्य है। यह 'कुंअर पाटवी' कौन थे ? अधिकांश ऐतिहासिकों के मतानुसार भोजराज ही 'कुंअर पाटवी' हैं तथापि 'वीर-विनोद' के अनुसार वे द्वितीय पुत्र ही ठहरते हैं। क्या इन्हीं 'कुंअर पाटवी' ने राणा बनने पर मीराँ पर अत्याचार के पहाड़ ढाये या मीराँ के श्वसुर या जेठ ने ही यह अत्याचार किये। बड़े भाई के सिंहासनारूढ़ होने पर भी छोटे भाई को 'कुंअर पाटवी' कहा ही नहीं जा सकता, क्योंकि वैसी स्थिति में छोटा भाई गद्दी का मालिक नहीं समझा जाता। तब ये 'कुंअर पाटवी' कौन हैं, जिनकी राय का इतना महत्व है ? सब तो विरोध करते ही हैं परन्तु 'कुंअर पाटवी' भी विरोध करते हैं, निश्चित है कि 'कुंअर पाटवी' की राय का महत्व बहुत है। इस वक्त तक मीराँ सधवा हैं यह भी ऊदाँ बाई के कथन से ही स्पष्ट है:–

"सीस फूल ऊपर सोहै, बिंदली सोभा भारी।
गले गुजारी, कर में कंकण, नेवर पहरो भारी।"

मीराँ ने बिंदली भी धारण कर रखी हैं, अतः वे सधवा हैं। यह 'कुंअर पाटवी' ही तो मीराँ के राणा नहीं ? यहाँ एक और बात भी ध्यान देने योग्य है। अपने पर किये गये अत्याचारों का वर्णन करते हुए या पारस्परिक वैमनस्य और कटुता की भावना व्यक्त करते हुए मीराँ ने हमेशा ही 'राणा' या 'सिसोद' शब्दों का ही व्यवहार किया है। प्राप्त इतिहास यही बताता है कि भोजराज की मृत्यु अल्पावस्था में माता-पिता के रहते ही हो गयी थी। बड़े भाई की मृत्यु के बाद उससे छोटा भाई यदि राज्याधिकारी हो तो 'कुंअर पाटवी' कहला सकता है। 'भक्तमाल' आदि प्राचीन

ग्रंथों में मीराँ को सदा ही 'राणी' सम्बोधित किया गया है। विधवा युवराज्ञी के लिये 'राणी' सम्बोधन सहज ही अनुपयुक्त ठहरता है। 'भक्तमाल' के टीकाकार, श्री प्रियादास जी के अनुसार मीराँ पर अत्याचार करने वाले उनके श्वसुर ही ठहरते हैं और परिवार वालों से मीराँ का विरोध गृह-प्रवेश के अवसर पर देवी-पूजा के प्रसंग को लेकर ही हो जाता है। इतना ही नहीं, अपितु इस विवाह से ही मीराँ अप्रसन्न हैं। वाम हस्त से ही वे इस पार्थिव-पति के साथ विवाह सम्पन्न करतीं हैं। लोक-कथा है कि उन्होंने 'बाला-पन' से आराधित गिरधर-गोपाल की मूर्ति के साथ भी भांवरे ली थीं। इस आशय के कुछ पद भी पाये जाते हैं।

यदि इस राणा को देवर मान लिया जाता है तो एक और भी प्रश्न उठता है। जिस पति के वियोग में मीराँ ने इतना कठिन योग साधा उसकी स्मृति की कहीं भी, कोई भी अभिव्यक्ति नहीं की, यह अत्यन्त आश्चर्य जनक प्रतीत होता है। विशेष तौर से जब कि वे अपने अन्य कुटुम्बी, जैसे सास, ननद, राणा, माँ और मोसाली की चर्चा करती हैं। अपने लक्ष्य तक पहुंचने में सहायक किसी भक्त रैदास और किसी जोगी गुरु की भी बार बार चर्चा करती हैं तब पति-वियोग में शोकाकुला प्रेममयी नारी का हृदय अपने प्रेमी-पति की स्मृति की भी उपेक्षा क्योंकर कर सकता था? मीराँ की इस चुप्पी से शंका उत्पन्न होती है। इस चुप्पी कों साधते हुए भी मीराँ ने 'रती न राख्यो मोद' जैसी अभिव्यक्ति की है। अतएव शंका सत्य में परिणत होती मालूम होती है।

साधारणतया हिन्दू स्त्री अपने पति का नाम नहीं लेती।

मीराँ ने भी 'राणा' या 'सिसोद' शब्दों का ही प्रयोग किया है। इससे भी इस कथन का समर्थन किया जा सकता है, यद्यपि इस पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। देवर राणा को भी 'राणा' या 'सिसोद' कहना अत्यधिक सहज है।

मीराँ के प्रति ननद ऊदाँ बाई का उपदेश भी इस कथन की पुष्टि करता है। मीराँ की कठिन साधना से घबरा कर ऊदाँ बाई पूछ बैठती हैं। "वर पायो हिन्दूवाणे सूरज, अब दिल में कांई धारीजी" साधनरता विधवा भाभी से यह प्रश्न कैसा ? जिस हिन्दू विधवा के लिये जीवन के अन्य द्वार बन्द हैं वह अपने को पूजा-साधना के भुलावे में भुलाने के सिवाय और कर भी क्या सकती है ? फिर वह भी उदयपुर के महलों की चहारदीवारी के भीतर ! ऊदाँ बाई और भी कहती हैं :–

१–"साधो की संगति दुख भारी, मानो बात हमारी ।
छापा तिलक गलहार उतारो, पहिरो हार हजारो ।"
रतन जड़ित पहिरो आभूषण, भोगो भोग अपारी ।
मीराँ जी थे चालो महल[1] में, थांने सौगन्ध म्हाँरी ।"

('मीराँ बाई की पदावली', पद ३० ।)

कितना सुस्पष्ट है मीराँ से 'महल में' चलने का और शृंगार करने का आग्रह उनके सधवा होने पर ही किया जा सकता है। ऊदाँ बाई साम, दाम, दंड, भेद सबसे काम लेती हैं। मीराँ को डर भी दिखाती हैं और प्रेम भी। ऊदाँ बाई और भी कहती हैं:–

१. 'महल में' एक मारवाड़ी उक्ति विशेष है, जिसका अर्थ है अभिसार के लिये निर्धारित महल या मकान का कक्ष विशेष।

भाभी मीराँ, राणा जी ऊभा छै थांरे द्वार ।
पोथी माँगे थांरे ज्ञानं की ।"

('मीरां-माधुरी' ।)

मीरां का जवाब कितना मार्मिक है ।

"बाई ऊदाँ, पोथी म्हाँरी खांडा रीं धार ।
ज्ञान निभावन राणो छै नहीं ।"

('मीराँ-माधुरी' ।)

मीराँ का ज्ञान तो प्रेम-योग है जिसको निभाना सचमुच ही तलवार की धार पर चलना है । कबीर की भी तो यही अनुभूति है ।

"यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहि ।
सीस उतारै भुंई धरै, तब पैठे इह माहिं ।"

ऐसे एकत्वमय प्रेम की आकांक्षा भी देवर राणा के साथ सम्भव नहीं । यद्यपि मीराँ के जीवन और पदों के बारे में निश्चित कुछ भी नहीं कहा जा सकता, फिर भी ये पद मीराँ के नाम से प्रचलित हैं और प्रायः संग्रहों में लगभग इसी रूप में पाए जाते हैं व सर्वमान्य रूपेण मीराँ के ही समझे जाते हैं ।

प्राप्त इतिहास से सर्व सम्मत है कि मीराँ पर अत्याचारों का पहाड़ ढाने वाले राणा उनके देवर विक्रमाजीत ही थे । विक्रमाजीत का राज्यकाल वि० सं० १५८८ से १५९२ तक कुल चार वर्ष का ही रहा परन्तु 'पंडर पलट्या काला केस' जैसी पदाभिव्यक्तियों से तो यही सुस्पष्ट होता है कि मीराँ के जीवन का संघर्ष काल मात्र चार वर्ष के छोटे से समय का नहीं था, अपितु वह मीराँ के विवाहित जीवन का एक महत्वपूर्ण अंश था ।

राणा विक्रमाजीत अपनी उदंडता के कारण बहुत ही अप्रिय राणा हुए हैं। उनको कहीं से कोई समर्थन प्राप्त नहीं होता। प्राप्त इतिहास बतलाता है कि विष देने जैसी घटना से दुखित हो मीराँ के राव बीरमदेव ने उनको अपने यहाँ बुला लिया। प्राप्त इतिहास के आधार पर ही मीराँ फिर कभी चित्तौड़ नहीं लौटीं। मुंशी देवीप्रसाद व अन्य ऐतिहासिकों के अनुसार यह घटना वि० सं० १५९२ में ही घटी। साथ ही प्राप्त इतिहास यह भी बतलाता है कि वि० सं० १५९२ में ही राणा विक्रमाजीत के ताऊ पृथ्वीराज का खवासवाल बेटा बनवीर उनको मारकर गद्दी पर बैठ गया। मुंशी जी लिखते हैं। 'लेकिन इतनी बड़ी उलट फेर देखने पर भी राणा जी ने अपना ढंग नहीं बदला और मुत्सद्धियों का अपमान करने लगे जिससे सब लोग उनसे बदल गये और उनके ताऊ पृथ्वीराज के खवासवाल बेटा बनवीर उनको मारकर वि० सं० १५९२ में गद्दी पर बैठ गया।' उपर्युक्त परिस्थिति में राणा विक्रमाजीत ने ही मीराँ पर अत्याचार किये, और उनको विष दिया जैसी मान्यताओं में गहरी शंका होती है। यदि मीराँ पर आफतों का पहाड़ ढाने वाले राणा उनके देवर विक्रमाजीत ही हैं तो मीराँ का वि० सं० १५९२ के पूर्व ही चित्तौड़ छोड़कर मेड़ते चले जाना ही युक्तियुक्त प्रतीत होता है क्योंकि वि० सं० १५९२ में ही राणा विक्रमादित्य मार डाले जाते हैं। उपर्युक्त घटना से यह भी सिद्ध हो जाता है कि राणा कितने अधिक अप्रिय थे। यहाँ तक कि 'बदल गये' मुत्सदियों ने पृथ्वीराज के खवासवाल बेटे का भी विरोध नहीं किया।

इतने पर भी उस भक्ति-प्लावित युग की जनता से मीराँ को कोई सहानुभूति या समर्थन नहीं मिलता। इतना ही नहीं 'जग-हाँसी' और 'बदनामी' ही मीराँ का पुरस्कार है। सम्भव है कि शक्तिशाली राणा के विरुद्ध आवाज उठाने का साहस जनता ने न किया हो, परन्तु जिस राणा की उदंडता से जनता अत्यधिक परेशान हो उठी थी, उसी की आवाज में आवाज मिला कर मीराँ की 'हाँसी' और 'बदनामी' में योग दिया हो यह भी संगत प्रतीत नहीं होता।

मीराँ के पदों से एक और अनुभूति भी सुस्पष्ट हो उठती है। इस अभिव्यक्ति के आधार पर भी मैं अपने मत का समर्थन करती हूं। मीराँ अपने सम्पूर्ण शृंगार और सुहाग चिन्हों को उतार फेंकने के लिये व्याकुल हो उठीं हैं। साधारण प्रथा के अनुसार कोई भी हिन्दू विधवा शृंगार नहीं करती। सुहाग चिन्हों से तो विधवा नारी का कोई सम्बन्ध ही नहीं रह जाता। तब मीराँ जैसी साधनरता विधवा तो शृंगार के साथ ही साथ सुहाग चिन्हों को भी अपनाती ही कैसे ?

१—"झूठा सुहाग जगत का री सजनी, होय होय मिट जासी।
मैं तो एक अविनासी बरूंगी, जाहे काल नहीं खासी।"
(मीराँ-माधुरी ३७।)

२—"महल अट्टारी हम त्याग्याँ, त्यागो थांरो बसनो सहेर।
काजल टीकी राणा हम सब त्याग्याँ, भगवा चादर पहेर।"
('मीराँ बाई की पदावली' पद ३७।)

३—"गहना गाँठी राणा हम सब त्याग्याँ, त्यागो कररो चूड़ो।

काजल टीकी हम सब त्याग्यां, त्यागो छँ बाँधन जूड़ो ।"

(वही, पद ३५ ।)

४–"तनका गहना मैं सब कुछ दीन्हाँ, दियो हैं बाजूबन्द खोल ।"

(वही, पद १३७ ।)

५–"तेरे कारण जोगण हूंगी, लूंगी करवत कासी ।"

(वही, पद १३४ ।)

६–"तेरे खातर बन बन डोलूं, कर जोगण को वेश ।"

('मीराँ-माधुरी', पद १९० ।)

७–"तेरे खातर सब कुछ छोड़ा, काजल तेल तमोल ।"

८–"तेरे खातर जोग धारणाँ, लोक लाज कुल डार ।"

('मीराँ-माधुरी', पद २०१ ।)

९–"चीर कूं फाड़ कंथा पहिरूं, लेवूंगी उपदेश ।
मुद्रा माला भेंख लूं रे, खप्पर लेवूं हाथ ।
माणिक मोती हम सब छोड़े, गल में पहनी सेली ।
भोजन भवन भलो नहीं लागे, पिया कारण भई गेली ।"

(वही, पद ८० ।)

१०–"तन आभूषण छोड़े सहेली, तजि दियो पाट पटोरी ।
मिलन की लगि रही डोरी ।
आप मिल्याँ बिन कल न परत है, त्याग्यों तिलक तमोली ।"

(वही, पद ।)

११–"माला मुदरा भेखलाँ रे, बाला खप्पर लूंगी हाथ ।
जोगण होय जुग ढूंढसूं रे, म्हाँरे रावलियारी साथ ।"

(वही, पद ११८ ।)

१२–"या तन ऊपर भसम रमाऊं, खोर करूं सिर केस ।

भगवाँ भेष धरूं तुम कारण, ढूंढूं चारुं देस ।"

(वही, पद ७० ।)

१३–"तेरे कारण जोग लियो है, घर घर अलख जगाय ।"

(वही, पद ११० ।)

१४–"मैं जान्यों नाही प्रभु को मिलना कैसे होय री ।
आये मोरे सजना फिर गये अंगना, मैं अभागण सोय रही री ।
फारूंगी चीर करूं गल कंथा, रहूंगी वैरागण होय री ।
चुड़िया फोरूं माँग विखेरूं, कजरा मैं डारूं धोय री ।
निसि वासर मोहें बिरह सतावै, कल न परत मोइ री ।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, मिलि बिछुरो मति कोइ री ।"

(वही, पद ४८ ।)

१५–"गहणा गाँठि राणा हम सब त्याग्याँ, त्याग्यो कररो चूड़ो ।
काजल टीका हम सब त्याग्याँ, त्याग्यो छै बाँधन जूड़ो ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर वर पायो छै पूरो ।"

(वही, पद ३५ ।)

१६–"हार सिंगार सभी ल्यो आपणां, चूड़ी कर की पटकी ।"
मेरा सुहाग अब मोकूं दरसा, और न जाने घट की ।
महल किला राणा मोहिं न चहिए, सारी रेशम पटकी ।
भई दिवाणी मीराँ डोले, केस लटा सब छिटकी ।

(वही, पद ।)

१७–"दरसण बिन भई बावरी, विरह विथा तन हेरी ।
तेरे कारण जोगण हूंगी, दूंगी नग्र बीच फेरी ।
कुंज सब हेरी हेरी ।"

(वही, पद ९४ ।)

१८—"किण संग खेलूं होली, पिया तज गए अकेली।
माणिक मोती सब हम छोड़े, गल में पहनी सेली।
भोजन भवन भलो नहि लागे, पिया कारण भई गैली।
म्हाँने दूर क्यों म्हेली।"

(वही, पद ८०।)

१९—"मैं बैरागण आदि की, थारी म्हाँरी कद की सनेस।
बिन पानी बिन उबटनो, हर गई धुर सपेद।
जोगण होई मैं बन बन डोलूं, तेरा न पाया भेद।
तेरी मूरत के कारणै, धर लिया भगवा भेस।"

(वही, पद।)

सुस्पष्ट है कि मीराँ अभी तक सुअलंकृता हैं, सुहाग के सम्पूर्ण चिन्हों को धारण किये हुए हैं, फिर भी अपने निराश जीवन से ऊब कर वे उनको उतार फेंकना चाहती हैं। अपने 'जोगी' के वियोग में उनको शृंगार रुचता नहीं, बल्कि भार रूप हो जाता है, तब भी अपने 'जोगी' के मनोनुकूल शृंगार करने के लिये वे उत्सुक हैं।

"जिन भेखां म्हाँरो साहिब रीझे, सोई भेख धारणां।"

और भी

"कहो तो कुसुमल सारी रंगावाँ, कहो तो भगवा भेख।
कहो तो मोतियन माँग भराँवाँ, कहो तो छिटकाँवाँ केस।"

मीराँ के पदों में एक बात और भी गौर करने योग्य है। जहाँ मीराँ अपने सम्पूर्ण शृंगार और सुहाग-चिन्हों को उतार देने की इच्छा व्यक्त करती हैं ऐसे पदों में सब क्रियाएं भविष्यत काल की हैं।

१–"पाटी माँग उतारि धरूंगी, न पहिनूं कर चूड़ी ।"
२–"तेरे कारण जोगण हूंगी ।"
३–"अंग भभूत गले मृग छाला, यो तन भसम करूंरी ।
अजहुं न मिल्याँ राम अविनासी, बन बन बीच फिरूंरी ।"

स्पष्ट है कि मीराँ अभी तक सुअलंकृता हैं अन्यथा अलंकार को उतार फेंकने की अभिव्यक्ति भविष्यत काल में सम्भव नहीं होती ।

कुछ पदों में क्रिया सामान्य व आसन्न भूतकाल की भी हैं । इन पदों की अभिव्यक्ति बहुत ही गौर करने के योग्य है क्योंकि इनसे स्पष्ट होता है कि विरहाकुला मीराँ अपने दर्द के कारण वैभव-जन्य सुख सुविधाओं से विरक्त हो रही हैं ।

१–"माणिक मोती हम सब छोड़े, गल में पहनी सेली ।
भोजन भवन भलो नहिं लागै, पिया कारण भई गेली ।"
(वही, पद ८० ।)

२–"तेरे कारण जोग लियो है, घर घर अलख जगाई ।
दिवस न भूख रैन नहिं निदरा तुम, बिन कछु न सुहाई ।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, मिलकर तपत बुझाई ।"
(वही, पद ११० ।)

३–"तेरे खातर सब कुछ छोड़ा, काजल तिलक तमोल ।
(मीराँ माधुरी, पद ।)

४–"गहना गाँठी हम सब त्याग्याँ, त्यागो कर रो चूड़ो ।
काजल टीकी राणा हम सब त्याग्याँ, त्यागो छै बाँधन जूड़ो ।"
(वही, पद ३५ ।)

उपर्युक्त कतिपय उदाहरणों की क्रियाएं आसन्न व सामान्य

भूतकाल की हैं, अतएव इनसे यही लक्षित होता है कि मीराँ ने अपने सम्पूर्ण शृंगार को अभी अभी ही छोड़ा है या छोड़ रही हैं। यदि वैधव्य यातना को भुलाने के लिये मीराँ प्रेम-भक्ति को अपनाती हैं तो वर्तमान में शृंगार छोड़ने की अभिव्यक्ति क्योंकर संभव होती। अतएव पदों में प्रयुक्त इन क्रियाओं से व्यक्त होते हुए भावाधार पर भी मीराँ का सधवा होना ही साबित होता है। मीराँ के नाम पर प्रचलित सभी पदों से व्यक्त होती एक और भी अनुभूति ध्यान देने योग्य है। मीराँ से ननद ऊदाँ बाई, राणा और परिवार, सभी का आग्रह है कि वे साधु संतों का संग छोड़ करके राजमर्यादानुकूल सम्पूर्ण शृंगार और सुहाग चिन्हों से सुअलंकृता रहें। इस गहरे आग्रह के बावजूद भी मीराँ अपने हठ पर दृढ़ हैं। अपने आराध्य के विरह में उनको शृंगार रुचता नहीं अतएव वे उसको अपनावेंगी नहीं। परिवार और समाज की कटूक्तियों का उनके पास एक ही जवाब है। 'राणा जी म्हाँने या बदनामी लागे मीठी' क्योंकि 'अखियाँ खोल' 'तराजू तौल लियो' है। विधवा युवराज्ञी से सुअलंकृता होने का आग्रह कैसा? और शृंगार न करने पर नाराजगी क्योंकर? सभी प्राप्त पदों में अभिव्यक्त इस भावना के आधार पर भी यही प्रमाणित होता है कि मीराँ सधवा ही थीं। यहाँ अपने समर्थन में अन्य कुछ विद्वानों के विचार देना भी असंगत नहीं होगा।

'बंगीय-हिन्दी-परिषद' से प्रकाशित 'मीराँ स्मृति ग्रंथ' में 'जनम जोगिण मीराँ' लेख के लेखक प्रोफेसर शम्भुप्रसाद बहुगुणा एम० ए०, पृष्ठ ४५ पर लिखते हैं।

"कृष्णदास का मीराँ को 'राँड' कहना भी मीराँ के वैधव्य का सूचक नहीं माना जाता। वह गाली की तौर पर ही कहा गया शब्द है। मीराँ अपनी भौतिक यातनाओं का वर्णन करती हैं, वैधव्य का नहीं।"

वहीं, 'श्री मीराँ जी की परमाभक्ति' के लेखक आचार्य-प्रवर महामहोपाध्याय पंडित सकलनारायण शर्मा पृष्ठ ५० पर लिखते हैं।

"सुहाग रात को ठाकुर जी को शयन-गृह में सिंहासन पर मीराँ ने विराजमान कर दिया और कहा कि प्रभो, अपनी दासी को बचाइये। साधारण मनुष्य भी अपनी भार्या की रक्षा करते हैं। आप त्रिलोकीनाथ हैं अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान कीजिये। राणा शराब पीकर आये और ठाकुर जी को देख कर लौट गये। इनका सम्भाषण मीराँ जी के साथ कभी नहीं हुआ। वे स्वतन्त्र सी हो गईं और रात दिन भजन कीर्तन करने लगीं। साधु-सन्त आते थे। उनके सामने मीराँ जी ने परदा करना छोड़ दिया। राणा ने इस काम में अपना अपमान समझा और जहर भिजवाया।"

लेख के अन्त में पृष्ठ ५८ पर लिखते हैं। "एक दिन वे (मीराँ) राजमंदिर में नृत्य कर रही थीं, साधु सन्त बैठे थे, राणा तलवार लिये उनकी हत्या करने को पहुंचे, भगवान ने मीराँ जी को अपने में तिरोहित कर लिया।"

'मीराँ स्मृति ग्रंथ' की भूमिका लिखते हुए श्री रामप्रसाद जी त्रिपाठी लिखते हैं। "मीराँ का विवाह मेवाड़ के प्रसिद्ध राणा सांगा के किसी राजकुमार से हुआ था। ओझा जी का अनुमान

है कि उसका नाम भोजराज था।" स्व० मुंशी देवीप्रसाद जी ने भी 'महकमे तवारीख, मेवाड़' से प्राप्त वृतान्त के आधार पर मीराँ को भोजराज की विधवा ही साबित किया है। परन्तु प्राप्त वृतान्त के आधार पर ही मुंशी जी की धारणा भी अनुमान मात्र ही सिद्ध होती हैं क्योंकि 'महकमे तवारीख, मेवाड़' से प्राप्त वृतान्त भी भ्रमात्मक ही सिद्ध होता है (देखें, 'मीराँ बाई का जीवन चरित्र' पर एक दृष्टि)।

उदयपुर की तथाकथित विधवा युवराज्ञी, प्रातःस्मरणीया, साधनरता मीराँ के कठोर संघर्षमय जीवन व उनके पदों में व्यक्त अनुभूतियों के आधार पर ही यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि मीराँ विधवा नहीं थीं। ऐसा लगता है कि मीराँ के पदों में जिस राणा का वर्णन मिलता है वह उनके पति ही थे, देवर नहीं, परन्तु इतिहास इसके विरुद्ध है। अधिकाँश विद्वानों ने अद्यावधि प्राप्त वृतान्त के अनुमान पर मीराँ को मेड़ता के संस्थापक राव दूदा जी की पौत्री और इतिहास प्रसिद्ध शूर राणा सांगा के पुत्र भोजराज की पत्नी माना है। भोजराज की मृत्यु अल्पायु में ही हो गयी थी, अतएव उनके अनुज ने राजकाज सम्हाला, इस ऐतिहासिक घटना के आधार पर ही मीराँ को विधवा माना जाता है। मीराँ के जीवन और काल के बारे में हम इतने अधिक अनभिज्ञ हैं कि निश्चित रूपेण कुछ भी कहना सम्भव नहीं, तथापि पदों में व्यक्त इतनी गहरी और स्पष्ट भावनाओं की सर्वथा उपेक्षा भी नहीं की जा सकती। अतएव, ऐसा ही प्रतीत होता है कि मीराँ सधवा थीं और पदों में वर्णित राणा इनके पति ही थे।

गृह-त्याग और तीर्थ-यात्रा

सर्वमान्य है कि मीराँ की कृष्णभक्ति व साधु समागम एकलिंग भवानी के उपासक चित्तौड़ के राजघराने की मर्यादा के विरुद्ध पड़ा, अतः रुष्ट होकर उनके सौतेले देवर विक्रमाजीत ने उनको अनेकों कष्ट दिये यहाँ तक कि मार डालने के भी कई उपाय रचे, अतः दुखित होकर मीराँ अपने काका राव बीरमदेव के पास मेड़ते चली गयीं।

राजस्थान के प्राप्त इतिहास और इस सर्वमान्य मान्यता में कोई समन्वय होता नहीं प्रतीत होता। 'वंगीय-हिन्दी-परिषद' से प्रकाशित 'मीराँ-स्मृति-ग्रंथ' में 'मीराँ बाई का ऐतिहासिक जीवन-वृत 'पृष्ठ ११५ पर डा० राय चौधरी पी० एच० डी०' लिखते हैं, "मेवाड़ के सिसौदिया राजवंश ने भी एकलिंग शिव के उपासक होते हुए इस नवीन धर्म को (वैष्णव धर्म) संरक्षण प्रदान किया था। राणा मोकल (१४२०-१४२८) ने चित्तौड़ में द्वारिका नायक का एक विशाल मन्दिर बनवाया था। उनके प्रसिद्ध पुत्र राणा कुम्भ (१४३०–१४६८ ई०) इस सम्प्रदाय में केवल दीक्षित ही नहीं हुए थे, वरन् गीत-गोविन्द के सुमधुर गीतों से प्रभावित होकर उन्होंने 'रसिक प्रिया' के नाम से उसकी एक टीका भी लिखी थी। उनकी कन्या रमाबाई का विवाह सोरठ के मांडलिक यादवराज के साथ हुआ था। वे वैष्णवीं थीं। भरत के शास्त्रों का उन्होंने पूर्ण रूप से अनुशीलन किया था। और संगीत-पटुता के लिये प्रसिद्ध थीं। राणा रायमल (१४७३-१५०९) के शासन काल में उन्होंने १४९८ ई० में कुम्भलमेर

दुर्ग में दामोदर का एक मंदिर बनवाया था। कहावत प्रसिद्ध है कि रामानन्द के प्रथम शिष्य अनंतानन्द जोधपुर के राजगुरु थे। साँभर में प्रदर्शित अपने चमत्कार से शासक को उन्होंने अपना शिष्य बनाया था। यद्यपि यह उल्लेख अत्यन्त संक्षिप्त है, तथापि, राजपुताने में जहाँ मीराँ बाई का जन्म हुआ था, वैष्णव सम्प्रदाय का प्रभाव कितना व्यापक था, इसका संकेत तो मिलता ही है।" डा० राय चौधरी का उपर्युक्त कथन सर्व-सम्मत इतिहास है। इतना ही नहीं, रानी झाली का संत रैदास की शिष्या होना तथा मीराँ बाई की देवरानी अजब कुंवरी बाई का वल्लभाचार्य से दीक्षित होना भी सर्व-सम्मत है। ऐसी परिस्थिति में एक मात्र कृष्ण-पूजा और तीर्थ-हेतु स्वजनों द्वारा ऐसे गहरे विरोध और 'जग-हाँसी' का होना आश्चर्यजनक व असम्भव ही प्रतीत होता है। प्राप्त इतिहास व प्राप्त पद, गृह-त्याग, क्रमशः मेवाड़ और मेड़ता त्याग, का कोई निश्चित समय व हेतु नहीं बताता अतः विशेष खोज के बाद ही इन पर निश्चित रूपेण कुछ कहना सम्भव हो सकेगा।

मेवाड़ त्याग:—विक्रमाजीत और रत्नसिंह मीराँ के सम-कालीन राणा माने जाते हैं। इतिहास प्रसिद्ध है कि विक्रमाजीत एक बहुत ही उद्दंड और अयोग्य राणा हुए। 'मीराँ बाई का जीवन-चरित्र' में पृष्ठ १३ पर मुंशी देवीप्रसाद लिखते हैं "सं० १५८८ में सरदारों ने विक्रमाजीत को गद्दी पर बैठाया। विक्रमाजीत अपनी उदंडता के कारण शीघ्र ही अप्रिय हो उठे इन्होंने मीराँ को बहुत तकलीफें दीं, क्योंकि साधु-संतों के आने में अपनी 'बदनामी' मानते थे। रोक-टोक में असफल हो मरवा डालने के अनेकों

प्रयत्न किए, जिसमें साँप, बिच्छू, जहर आदि अपने बीजावर्गी जाति के महाजन मुसाहिब की सलाह से उन्हीं के हाथ भेजा।" आगे आप लिखते हैं,–"अब आगे बाज लोग तो यों कहते हैं कि उस जहर से मीराँ बाई का प्राणान्त हो गया।" फिर पृष्ठ १४ पर लिखते हैं "और कोई यों कहते हैं कि मीराँ बाई को उस जहर का कोई असर नहीं हुआ बल्कि द्वारका जी में रणछोड़ जी के मुंह से झाग निकले थे और वे मेड़ते में अपने काका राव बीरमदेव जी के पास चली आई।" इसी पृष्ठ पर आगे लिखते हैं–"सरदार परेशान होकर बदल गए, और उनके ताऊ के खवासाल बेटा बनवीर उनको मार कर वि० सं० १५९२ में गद्दी पर बैठ गया।"

'मीराँ बाई की पदावली" पृष्ठ १० पर परशुराम जी लिखते हैं, "कहा जाता है कि मीराँ बाई ने उनके भेजे हुए विष को चरणामृत मान कर पी लिया, सर्प को तुलसी की माला की भांति गले में डाल लिया और सूली पर सुखपूर्वक सो रहीं तथा सेल मारने पर उद्यत होने वाले महाराणा से भी तनिक नहीं डरीं। परन्तु उपलब्ध ऐतिहासिक विवरणों द्वारा इन सभी बातों की पुष्टि होती नहीं जान पड़ती" 'मीराँ बाई' नामक पुस्तक में पृष्ठ ५१ पर डा० लाल लिखते हैं, "विक्रमादित्य के समय में सारे सामंत और सारी प्रजा उनसे असंतुष्ट थी। जान पड़ता है कि एक बालक और साथ ही निर्बल शासक पाकर उसके अमात्य बीजावर्गी ने राणा की ओट ले सभी सामंतों का अपमान किया होगा और उसी ने मीराँ पर भी अत्याचार किये होंगे। प्रसिद्ध भी है कि–

"बीजावर्गी बानियो, दूजो गूजर गौड़,
तीजो मिले जो दाह्मो, करे टापरो चौड़ ।"

"मीराँ पर जो जो अत्याचार किये गये वह एक चौदह-पंद्रह वर्ष के बच्चे की सूझ नहीं हो सकती चाहे वह बच्चा राजदरबार में ही क्यों न पला हो । अस्तु, राणा की ओट लेकर बीजावर्गी ने ही मीराँ पर अत्याचार किया था ।"

वि० सं० १५८८ में विक्रमाजीत गद्दी पर बैठा । गुजरात के बादशाह सुल्तान बहादुर ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की उस वक्त विक्रमाजीत की माता हाँड़ी रानी ने किला टूटने पर १३,००० औरतों के साथ जौहर किया, जो वि० सं० १५९१ में हुआ । यह शाका राजस्थान के इतिहास में 'दूसरा शाका' के नाम से प्रसिद्ध है । अवश्य ही मीराँ द्वारा मेवाड़-त्याग इस शाके के पूर्व ही हुआ होगा । 'मीराँ बाई' में पृष्ठ ५७ पर डा० लाल लिखते हैं, "मीराँ के मेवाड़-त्याग की तिथि सं० १५९० के आस पास है । सं० १५९१ में चित्तौड़ में जो शाका हुआ था उसमें, १३,००० महिलाओं ने जौहर किया था । उस समय मीराँ चित्तौड़ में होती तो उन्हें भी जौहर अवश्य करना पड़ता, क्योंकि एक तो वे विधवा थीं, दूसरे राणा तथा अन्य कुटुम्बी उनकी मृत्यु चाहते भी थे । अतएव निश्चित रूप से मीराँ सं० १५९१ से पहले ही मेवाड़ छोड़ मेड़ता जा चुकीं थीं, जहाँ उनके चाचा बीरमदेव और भाई जयमल उनका बहुत आदर करते थे ।" परशुराम जी का कथन 'मीराँ बाई की पदावली' में पृष्ठ ११ पर भी इसका समर्थन करता है, "महाराणा विक्रमाजीतसिंह के शासन की कुव्यवस्था से उत्साहित होकर सं० १५८९ वि० (सन् १५३२ ई०

में गुजरात के बादशाह, बहादुरशाह ने मेवाड़ पर चढ़ाई की और कुछ समय तक युद्ध होने के उपरान्त सन्धि हो गयी। किन्तु सं० १५९१ वि० (सन् १५३४ ई०) में ही उसने फिर दूसरा आक्रमण किया, जिसके उपलक्ष में महाराणा की माता कर्मवती देवी तक की आहुति हो गयी और चित्तौड़ पर बादशाह का अधिकार हो गया। सम्भवतः इस घटना के ही आस-पास, किसी समय, अपने चाचा राव बीरमदेव जी की बुलाहट पर, मीराँ बाई मेवाड़ छोड़कर अपने पीहर मेड़ता चली गयीं। मुंशी देवीप्रसाद के अनुसार सम्भवतः, मीराँ ने मेवाड़ का त्याग और भी पहले ही कर दिया था। 'मीराँ बाई का जीवन चरित्र' में पृष्ठ ८ पर वे लिखते हैं, "अगर यह सच है तो मीराँ बाई का चला जाना भी राणा जी और चित्तौड़ के वास्ते बहुत बुरा था, क्योंकि राणा जी का जो परिणाम हुआ वह बहुत भयंकर है और साराँश यह है कि सं० १५८८ में गुजरात के बादशाह सुल्तान बहादुर ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की।"

सभी प्राप्त मान्यताओं के आधार पर वि० सं० १५९० या उससे कुछ पूर्व ही मीराँ द्वारा मेवाड़-त्याग सिद्ध होता है। वि० सं० १५८८ में राणा विक्रमाजीत गद्दी पर बैठे। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है। प्राप्त पदों की अभिव्यक्ति से यह सुस्पष्ट हो उठता है कि मीराँ का संघर्ष अल्पकालीन नहीं अपितु जीवन-व्याप्त था। अतः राणा विक्रमाजीत द्वारा की गयी अनधिकार चेष्टा मात्र को ही मीराँ द्वारा मेवाड़-त्याग का कारण मानना असंगत ठहरता है।

'८४ वैष्णवण की वार्ता' में आयी, 'गुंसाई जी के सेवक कृष्ण-

दास अधिकारी तिनकी वार्ता' और ही कुछ इंगित करती है। इस कथा से यह सुस्पष्ट हो उठता है कि हरीराम व्यास मीराँ से मिलने के लिये 'मीराँ के घर गये।' यह 'मीराँ का घर' सम्भवतः मेवाड़ के राजमहल ही हों, क्योंकि आम मान्यता के अनुसार किसी भी विवाहिता स्त्री की ससुराल ही उसका घर समझा जाता है। 'मीराँ बाई' पृष्ठ २२ पर डा० लाल लिखते हैं, "सं० १६२२ से पहले व्यास जी वैष्णव प्रसिद्ध न थे और न इस प्रकार किसी के घर पहुंचते ही थे, क्योंकि तब तक उनका एक मात्र उद्देश्य शास्त्रार्थ करना हुआ करता था। परन्तु इस प्रसंग में वे वैष्णव लिखे गये हैं, अतएव यह प्रसंग निश्चित रूप से सं० १६२२ के पश्चात् किसी समय का है।"

'८४ वैष्णवण की वार्ता' को प्रामाणिक मानने पर वि० सं० १६२२ के पूर्व मीराँ द्वारा 'मेड़ता-त्याग' असंगत ही प्रतीत होता है। मेवाड़-त्याग का कारण और समय दोनों ही अनिश्चित हैं। पदों से इन उपर्युक्त पहलुओं पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

मेड़ता-त्यागः—वि० सं० १५९० या उससे कुछ पूर्व मेवाड़ को त्याग कर मीराँ मेड़ते रहने लगी। मेड़ते का वातावरण मीराँ के बहुत अनुकूल पड़ा तथापि राजनैतिक कठिनाइयों के उपस्थित होने के कारण मीराँ वहां शान्तिपूर्वक न रह सकीं और वि० सं० १५९५ के लगभग मेड़ता को भी छोड़ वृन्दावन की ओर चल पड़ीं। फिर एक दिन वि० सं० १६०० के लगभग तीर्थ-यात्रा-हेतु वृन्दावन से भी द्वारिका की ओर चल पड़ती हैं। वि० सं० १६०३ में राणा द्वारा लौटाने का प्रयास होने पर श्री रणछोड़ जी की मूर्ति में समा गईं।

यही अद्यावधि प्राप्त इतिहास है, तथापि प्राप्त इतिहास के अन्य पहलुओं पर व प्राप्त पदों की अभिव्यक्ति पर विचार करने से उपर्युक्त मान्यता में संगति का अभाव दृष्टिगोचर होता है।

'मीराँ बाई का जीवन चरित्र' पृष्ठ १७ पर मुंशी जी लिखते हैं, "बीरमदेव और उनके कुंवर जयमल जी उनकी (मीराँ बाई की) बहुत खातिर करते थे तथापि मीराँ बाई के पास साधु सन्तों के आने जाने की देख-भाल उसी तरह की जाती थी जैसी कि चित्तौड़ में की जाती थी और जिसको वे अपने लिये बहुत तकलीफ समझती थीं।" अतः दुखित होकर मीराँ ने एक दिन मेड़ता को भी त्याग वृन्दावन की ओर पैर बढ़ाया। आगे पृष्ठ २८ पर आप लिखते हैं "वि० सं० १६१८ में जयमल से मेड़ता छीन जाने पर मीराँ बाई का क्या परिणाम हुआ यह तवारीखी वृतान्त की तरफ से कुछ मालूम नहीं।" स्पष्ट है कि वि० सं० १६१८ तक मीराँ मेड़ते में ही थीं।

आधुनिक विद्वानों के कथनानुसार राजनैतिक परिस्थिति की कठिनाइयों के कारण ही मीराँ मेड़ता त्याग कर वि० सं० १५९५ के लगभग ही वृन्दावन की ओर पैर बढ़ाती हैं। श्री परशुराम जी के मतानुसार भी मीराँ ने पितृव्य बीरमदेव से मेड़ता छीन जाने पर गृह-त्याग कर वृन्दावन की ओर पैर बढ़ाया। "तदनुसार जोधपुर के राव मालदेव ने वि० सं० १५९५ (सन् १५३८) में राव बीरमदेव जी से मेड़ता छीन लिया और मीराँ बाई की दैनिक चर्या स्वभावतः अव्यवस्थित सी हो गयी। उपर्युक्त घटनाओं के कारण मीराँ बाई के ऊपर इस समय भक्ति का ऐसा रंग चढ़ा कि उन्होंने मेड़ते को भी त्याग कर तीर्थ-यात्रा करने की

ठान ली और पर्यटन करती हुई वे वहाँ से वृन्दावन पहुंच गयीं।" (मीराँ बाई की पदावली पृष्ठ १२) डा० लाल भी श्री परशुराम जी के मत का समर्थन करते हुए से प्रतीत होते हैं। अपनी पुस्तक 'मीराँ बाई' पृष्ठ ५७ पर आप लिखते हैं "वि० सं० १५९५ में जोधपुर के राव मालदेव ने बीरमदेव से मेड़ता छीन लिया और वे भाग कर अजमेर चले गये। मीराँ को उस समय विवश होकर मेड़ता भी छोड़ना पड़ा और तब वे सम्भवतः वृन्दावन की ओर तीर्थ-यात्रा के लिये चल पड़ीं।" स्पष्ट है कि डा० लाल के मतानुसार मीराँ की यह वृन्दावन यात्रा सम्भव होते हुए भी संदिग्ध ही है।

जहाँ एक के अनुसार 'विरक्ति का रंग' ही इसका कारण बना, वहाँ दूसरे के अनुसार विवशता ही इस तीर्थ-यात्रा का हेतु था। मुंशी जी के अनुसार साधु-सन्तों के आने जाने की देख भाल भी गृह-त्याग का कारण हो सकता है।

'उदयपुर राज्य का इतिहास' पृष्ठ ७२४ पर ओझा जी लिखते हैं "जोधपुर के राव मालदेव ने बीरमदेव से मेड़ता छीन लिया परन्तु वह उससे फिर ले लिया गया था। अकबर ने वि० सं० १६१९ में मिर्जा शर्फुद्दीन को मेड़ता लेने के लिये भेजा। एक दिन सुरंग से एक बुर्ज उड़ जाने क कारण शाही सेना किले में घुस गई। फिर आपस में संधि हो जानेपर दूसरे दिन जयमल ने किला छोड़ दिया।" अतएव यह तो सुनिश्चित ही हो जाता है कि बीरमदेव से छीना जाकर भी मेड़ता फिर से जयमल के अधिकार में आ जाता है पर वि० सं० १६१८ के लगभग ही जयमल से सदा के लिये ही छूट जाता है। अतः बहुत सम्भव है कि मीराँ

ने भी वि० सं० १६१८ में ही मेड़ता त्याग किया हो। वि० सं० १६०० में जयमल गद्दी पर बैठते हैं। मीराँ द्वारा मेड़ता-त्याग को जयमल के राज्यकाल के अन्तर्गत ही माना जाय तो वि० सं० १६१८ को ही मेड़ता-त्याग की तिथि मानना अधिक संगत प्रतीत होता है। अन्य विद्वानों के मत में और मुंशी जी के मत में गहरा अन्तर तो है ही साथ ही स्वयं मुंशी जी भी अनिश्चित ही हैं। इस तरह हम देखते हैं कि मीराँ द्वारा मेड़ता-त्याग का समय व हेतु दोनों ही अनिश्चित हैं।

तीर्थ-गमन:—आधुनिक विद्वानों के मतानुसार वि० सं० १५९५ के लगभग मीराँ ने मेड़ता का त्याग कर वृन्दावन की ओर पैर बढ़ाया, तदपश्चात् वहीं से द्वारिका जाकर वि० सं० १६०३ में रणछोड़ जी में समा गई, क्योंकि राणा ने उनको लौटाने का प्रयास किया। वि० सं० १६४२ में रचित 'भक्तमाल', 'हरिदास की बानी', '८४ और २५२ वैष्णवण की वार्ता' आदि ग्रंथों में महल-त्याग के पूर्व या बाद में भी मीराँ द्वारा की गई किसी वृन्दावन-यात्रा का उल्लेख नहीं मिलता। इसका सर्व प्रथम उल्लेख वि० सं० १६९८ में ध्रुवदास रचित 'भक्तनामावली' में ही मिलता है।

'आनन्द सों निरखत फिरै वृन्दावन रस खेत'

अपनी पुस्तक 'मीराँ बाई' में पृष्ठ २५ पर डा० लाल लिखते हैं, "रसक्षेत्र वृन्दावन में मीराँ का निवास और प्रेम तथा भक्ति के आवेश में नाचना और गाना इनमें एक नवीन और उपयोगी सामग्री मिलती है।" 'वीर-विनोद' में दिया गया मीराँ के जीवन का अति संक्षिप्त जीवन-वृतान्त इस विषय पर कोई प्रकाश नहीं

डालता। श्री हरविलास सारडा भी इस विषय पर अपनी तरफ से कुछ नहीं कहते। वे सिर्फ 'चतुर-कुल-चरित्र' और 'वीर-विनोद का उद्धरण भर देते हैं जिसके अनुसार मीराँ का मेड़ते से सीधे द्वारिका जाना और वहाँ बहुत वर्षों तक रहना ही सिद्ध होता है'। श्री ओझा जी के मतानुसार भी मीराँ का वृन्दावन जाना सिद्ध नहीं होता। उदयपुर राज्य का इतिहास 'पृष्ठ ३५९ पर ओझा जी लिखते हैं' जब जोधपुर के राव मालदेव ने बीरमदेव से मेड़ता छीन लिया, तब मीराँ बाई तीर्थ-यात्रा को चलीं गईं और द्वारिकापुरी में जाकर रहने लगीं, जहाँ कि वि० सं० १६०३ में उसका देहान्त हुआ।' उपर्युक्त उद्धरण से यही आभासित होता है कि मीराँ मेड़ते से ही द्वारिका चली गई। 'वीर-विनोद' 'चतुर-कुल चरित्र' सारडा जी और ओझा जी के इस मत का समर्थन लोक-गीत-परम्परा से प्राप्त कुछ पदों से भी होता है।

१—गढ़ से तो मीराँ ऊतरी करवा लीना जी हाथ।
डाँवों तो छोड़यो मीराँ मेड़तो, पुस्कर न्हावाँ जाय।
२—डाँवों तो राणी छोड़यो मेड़तो, पूठ दयी चित्तौड़।
३—सूत्यो राणो जी निस भर नींद ओ।
कोई सूत्या ने सुपणो राणा जी ने आयो।
साथियो रे भाई करो ए विचार ओ।
साथिड़ा ओ कोई म्हाँरी मेड़तणी भगवाँ पहर लिया।
सुपणो राणा जी आल जंजाल ओ।

१—'महाराणा साँगा' में पृष्ठ ८८ पर, "मीराँ बाई द्वारिका के तीर्थ-स्थान में बहुत वर्षों से रहती थीं। देखो चतुर-कुल चरित्र अर्थात् मेड़ते के राठौड़ वंश का इतिहास और 'वीर-विनोद'।"

राणा जी पड़्योरे जूनागढ़ रो मारग ओ।
राणा जी कोई दीप उगायो मीराँ बाई के देस।

उपर्युक्त पद का ही एक पाठान्तर और मिलता है जिसकी अभिव्यक्ति के आधार पर भी यही सिद्ध होता है कि मीराँ की यात्रा का प्रारम्भ मेड़ते से ही हुआ है।

सूत्या राणा जी निस भर नींद।
सूत्यो राणा ने सुपणो भी आयो।
थाँरी मीराँ मेड़तणी भगवाँ भी लियो।
मीराँ मेड़तणी ए भगवाँ लियो।
सुपणो तो है आल जंजाल।
मीराँ तो मेड़तणी बैठि बाप के।
४—म्हें तो चाल्याँ ए माय म्हाँरी द्वारिका।
म्हाँरी राम ही राम ल्यो।

उपर्युक्त पदों से यही सिद्ध होता है कि मेड़ते से ही मीराँ द्वारिका की ओर प्रस्थान करती हैं। मेड़ते से द्वारिका जाते समय पुष्कर तीर्थ मार्ग में ही पड़ता है। जूनागढ़ द्वारिका के करीब में पड़ता है और नाथ-पंथियों का तीर्थ विशेष है। नाथ-पंथियों का प्रमुख मठ भी यहीं है।

मीराँ के जीवन-वृतान्त की ऐतिहासिक दृष्टिकोण से सर्व-प्रथम समीक्षा करने वाले मुंशी जी का मत कुछ अलग पड़ता है। उनकी पुस्तक 'मीराँ बाई का जीवन चरित्र' देखने से यही आभासित होता है कि इनके मतानुसार मीराँ ने वृन्दावन की यात्रा दो बार की थी। इस पुस्तक में पृष्ठ २९ पर दिये गये विवरण के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि गृह-त्याग के पूर्व भी एक बार मीराँ

वृन्दावन-यात्रा तीर्थ-हेतु करती हैं, व इसी अवसर पर प्रसिद्ध भक्त जीव गोस्वामी के दर्शन लाभ भी करती हैं। शायद यही मीराँ की पहली वृन्दावन-यात्रा है। उनकी दूसरी यात्रा का प्रारम्भ जयमल जी से मेड़ता छीन जाने पर ही होता है। पृष्ठ २८ पर आप लिखते हैं, "मीराँ बाई का क्या परिणाम हुआ यह तवारीखी वृतान्त से कुछ मालूम नहीं। सिर्फ भक्त कथनानुसार यह मालूम होता है कि वे वृन्दावन और वहाँ से द्वारिका में जाकर रणछोड़ जी की मूर्ति में समा गयीं, क्योंकि राणा ने उनको लौटा लाने के लिये ब्राह्मण भेजे थे। इससे ऐसा अनुभव किया जाता है कि उनकी मृत्यु द्वारिका में हुई।"

मीराँ की यह वृन्दावन-यात्रा सम्भव होते हुये भी संदिग्ध ही है। श्री परशुराम जी के मतानुसार मीराँ ने अपने पितृव्य वीरमदेव से मेड़ता छीन जाने पर 'भक्ति के रंग' में गृह-त्याग कर वृन्दावन की ओर पैर बढ़ाया, तो डा० लाल के अनुसार मीराँ ने विवशतावश ही मेड़ता-त्याग कर, संभवतः वृन्दावन की ओर पैर बढ़ाया। चतुर्वेदी जी और डा० लाल दोनों ही वृन्दावन-यात्रा पर सहमत हैं, तथापि यात्रा के हेतु को लेकर दोनों विद्वानों में गहरा अन्तर है। श्री परशुराम जी के मतानुसार इसी यात्रावसर पर मीराँ, महाप्रभु के शिष्य व प्रसिद्ध भक्त जीव गोसाँई से भेंट करती हैं। डा० लाल लिखते हैं, "जान पड़ता है कि जीव गोस्वामी जी की अधिक कीर्ति फैलने के कारण ही रूप के स्थान पर जीव का नाम प्रचलित हो गया।" ('मीराँ बाई' पृष्ठ ३८) प्राचीन व आधुनिक सभी विद्वानों के मतानुसार मीराँ की तीर्थ-यात्रा का प्रारम्भ मेड़ते से ही होता है, यह

एक विशेष ध्यान देने योग्य बात है। मीराँ के प्राप्त जीवन-वृतान्त में यही एक ऐसा पहलू है जिस पर सब विद्वान सहमत हैं। लोक-गीत परम्परा से कुछ ऐसे पद मिलते हैं जिनकी अभिव्यक्ति के आधार पर भी यही सिद्ध होता है कि मीराँ मेड़ते से ही सीधे द्वारिका जाती हैं और यह यात्रा मात्र तीर्थ-यात्रा नहीं अपितु गृह-त्याग ही है। 'वीर-विनोद' 'चतुर-कुल-चरित्र' सारडा जी और प्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्री ओझा जी का मत इन लोक-गीतों से व्यक्त होती घटनाओं का समर्थन करता है। तीर्थ-आकाँक्षा अथवा गृह-त्याग, किसी भी हेतु की गई मीराँ की यात्रा मेड़ते से ही आरम्भ होती है, इसका समर्थन सभी विद्वानों ने एक स्वर से किया है। फिर भी, आश्चर्य है कि ऐसे पदों को किसी भी पद-संग्रह में स्थान नहीं मिला और वे अभी तक भी मात्र लोक-गीत-परम्परा द्वारा ही सुरक्षित हैं। हम देखते हैं कि इन लोक-गीतों से व्यक्त होती घटना और प्राप्त इतिहास के एक ही सुनिश्चित पहलू में बहुत बड़ा साम्य है जैसा कि तथाकथित मीराँ के अन्य पदों में नहीं। इस आधार पर यह धारणा स्वभावतः होती है कि शायद इन पदों का दूसरा अर्धांश भी प्रामाणिक ही हो, तथापि निश्चित रूपेण कुछ कहना असम्भव ही है। भक्तों द्वारा रचित ग्रंथों में भी मीराँ द्वारा वृन्दावन-यात्रा किये जाने का सर्व-प्रथम उल्लेख ध्रुवदास रचित 'भक्त नामावली' (रचना काल वि० सं० १६९८) में मिलता है, यह भी संशयोत्पादक है। मीराँ के अवसान के लगभग २० वर्ष बाद लिखे जाने वाले व मीराँ के जीवन पर प्रकाश डालने वाले ग्रंथों में सर्वाधिक प्रामाणिक माने जाने वाले

नाभादास रचित 'भक्तमाल' में मीराँ द्वारा की गई वृन्दावन-यात्र की कहीं कोई चर्चा नहीं। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से मीराँ वं जीवन का सर्व-प्रथम अध्ययन करने वाले प्रसिद्ध इतिहासज्ञ स्व० मुंशी देवीप्रसाद जी मीराँ की वृन्दावन-यात्रा के बारे मं अनिश्चित ही हैं। 'भक्त कथनानुसार' कहकर वे अपने उत्तर दायित्व से बरी हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में उपर्युक्त पद प्रामा णिकता से कुछ और निकट पहुंच जाते हैं।

यहाँ एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। मुंशी जी वं मतानुसार सम्भवतः मीराँ वृन्दावन-यात्रा दो बार करती हैं। एक गृह-त्याग के पूर्व और दूसरी गृह-त्याग के बाद। यद्यपि मुंशी जी के इस मत का विरोध भी किसी अन्य विद्वान् ने नहीं किया है, तथापि इसका समर्थन भी सिवाय कुछ लोक-गीतों को छोड़कर और कहीं नहीं मिलता:—'अबके किरपा कीजिये, हूं तो फिर बाधूं तलवार।' (वही पद ४७) सर्व-सम्मत है कि राणा ने एक बार मीराँ को लौटाने के प्रयास में कुछ ब्राह्मणों को द्वारिका भेजा था, परन्तु लौटने के बदले मीराँ द्वारिकाधीश रणछोड़ जी की प्रतिमा में ही समा गईं। यह घटना कुछ अमान्य सी प्रतीत होती है। 'मीराँ बाई की पदावली' में प्राप्त पद ४७[१]

१—"अबके किरपा कीजियो, हूं तो फिर बांधूं तलवार।
रथां बैल जुताय कै, ऊटां कसियो भार।
कैसे तोडूं राम सूं, म्हाँरो भोभो रो भरतार।
राणो सांडियो मोकल्यो, जाज्यो एके दौड़।
कुल की तारण अस्तरी, या तो मुरड़ चली राठौड़।
सांढ्यो पाछो फेरियो रे, परत न देस्यां पाँव।

की अभिव्यक्ति से भी यही स्पष्ट होता है कि लौटाने का प्रयास द्वारिका पहुंचने पर नहीं परन्तु तीर्थ के मार्ग में ही हुआ है। सम्भव है कि वृन्दावन से द्वारिका जाते समय राणा ने 'कुल की तारण अस्तरी' मीराँ को लौटाने का प्रयास किया हो, और 'भक्त-माल' के टीकाकार ध्रुवदास जी के कथनानुसार मीराँ, वृन्दावन की यात्रा से लौटने पर 'राणा की मलीन मति देखि, बसी द्वारावती।' इससे यही आभासित होता है कि मीराँ वृन्दावन से सीधे द्वारिका नहीं चली जातीं, जैसी की प्रायः विद्वानों की राय है। इतना ही नहीं, अपितु वे चित्तौड़ आती हैं और एक काल विशेष तक रह भी जाती हैं। 'राणा की मलीन मति देखि' वाक्यांश बहुत ही महत्वपूर्ण है। राणा की कुलवधू रूप में रह-कर ही राणा की 'मति' को 'देखि' उस पर असंतोष प्रकट किया जा सकता है। उपर्युक्त बातों पर विचार करने से यही प्रतीत होता है कि सम्भवतः तीर्थ-हेतु की गई वृन्दावन-यात्रा से लौटने पर राणा की रीति-नीति से दुखित हो मीराँ गृह-त्याग कर द्वारिका चली जाती हैं। शायद दूसरी बार के इस प्रस्थान को ही मुंशी देवीप्रसाद जी ने भक्तों में चली आती जनश्रुति के आधार पर दुबारा वृन्दावन-गमन ही मान लिया हो। उपर्युक्त परिस्थिति में यही अधिक सम्भव प्रतीत होता है कि मीराँ की यह वृन्दावन-यात्रा या तो मेवाड़-त्याग पूर्व की गई तीर्थ-यात्रा थी या गृह-त्याग असफल प्रथम प्रयास।

"कर सूरापण नीसारी, म्हाँरे कुण राणे कुण राव।
संसारी निन्दा करे, दुखियो सब संसार।
कुल सारो ही लाजसी, मीराँ थे जो भया जी ख्वार।"

प्राप्त पदों के आधार पर भी इस पहलू पर गहरा प्रकाश पड़ता है। मीराँ के नाम पर प्रचलित निखरी हुई ब्रजभाषा म लिखित कई सरस पद साहित्य के अमूल्य रत्न हैं। ये पद प्रामाणिक रूपेण मीराँ की रचना न हों तो भी अपनी सरसता और कलात्मकता के कारण सदा ही ब्रजभाषा-साहित्य के गौरव-रूप ही सिद्ध होंगे। ऐसे अधिकाँश पदों में कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का वर्णन ब्रजभाषा के वैष्णव-साहित्य की परम्परानुकूल ही है। कुछ पदों में तत्कालीन विभिन्न धार्मिक विचार-धाराओं का भी संकेत मिलता है। ऐसे पद बहुत थोड़े ही हैं। अपने आराध्य 'जोगी' के प्रति मीराँ का गहरा समर्पण, मिलन का आनन्द तथा 'जग-हाँसी' मिटने की भी अभिव्यक्ति इन ब्रजभाषा में रचित पदों में मिलती है। ब्रजभाषा का निखरा हुआ शुद्धतम् साहित्यिक रूप ही इन पदों की विशेषता है। किसी भी भाषा विशेष में इतनी उत्कृष्ट रचना करने के लिए उस भाषा की मात्र जानकारी ही पर्याप्त नहीं। भाषा के ज्ञान के साथ ही साथ उसको 'अपना लेना' भी नितान्त आवश्यक है। इस 'अपना लेने' के लिये उस भाषा विशेष के प्रदेश में वहाँ की आम जनता के निकट सम्पर्क में एक सुदीर्घ काल तक रहना नितान्त आवश्यक हो जाता है। पदों पर ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इनकी भाषा उत्तरोत्तर शुद्ध होती हुई निखरी हुई साहित्यिक भाषा बन गई है, यहाँ तक कि कुछ पद तो महाकवि सूरदास के पदों से भी होड़ लेने लगे हैं। ऐसी निखरी हुई शुद्ध व साहित्यिक भाषा में रचित इन पदों के आधार पर यह तो निश्चित

रूपेण ही कहा जा सकता है कि मीराँ वृन्दावन के मुक्त वातावरण में एक सुदीर्घ काल तक रही हैं।

इन पदों की सिर्फ भाषा ही नहीं अपितु भावाभिव्यक्ति से भी यही सिद्ध होता है कि गृह-त्याग के बाद ही मीराँ वृन्दावन गईं और वहाँ एक दीर्घ काल तक रहीं। ब्रजभाषा के अधिकाँश पदों में संघर्ष और वेदना की वह अभिव्यक्ति नहीं जो राजस्थानी के अधिकाँश पदों में है। वृन्दावन के मुक्त वातावरण में ठाकुर-पूजा और साधु-समागम में संलग्न मीराँ शान्त हैं, वेदना-विहीन हैं। इतना ही नहीं, अपितु आनन्दमग्न हो वे गा उठती हैं:—

"अंसुवन जल सींच सींच प्रेम बेलि बोई।
अब तो बेलि फैलि गई आणन्द फल होई।"

('मीराँ बाई की पदावली'—पद १५)

यहाँ तक कि 'जग-हाँसी' भी मिट जाती है, 'कुल-कुटुम्बी' स्वजन भी विरोध त्याग कर 'मधुमासी' की तरह उनको घेर लेते हैं।

"कुल कुटुम्बी आन बैठे मनहु मधुमासी
दासी मीराँ लाल गिरधर मिटी जग हाँसी।"

(वही, पद २८)

उपर्युक्त अभिव्यक्ति से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि स्वजनों की गहरी नाराजगी और संसार द्वारा की गई गहरी निन्दा के अति कटु वातावरण में ही मीराँ गृह-त्याग कर वृन्दावन की ओर प्रस्थान करती हैं। कुछ अन्य पदों में भी इन्हीं भावों की पुनरुक्ति मिलती है।

१–"छांड़ि दई कुल की कानि, कहा करिहै कोई ।
संतन ढिग बैठि बैठि, लोक लाज खोई ।"
(वही, पद २५)

२–"लोग कहै मीराँ भई बावरी, न्यात कहै कुल नासी रे ।"
(वही, पद ३९)

३–"कोई कहै मीराँ भई बावरी, कोई कहै मदमाती रे ।"
(वही, पद ४०)

४–"संसारी निन्दा करै, दुखियो सब संसार ।
कुल सारो ही लाजसी, मीराँ थे जो भया ख्वार ।"
(वही, पद ४७)

पद २८ जैसे कुछ पदों की अभिव्यक्ति से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि मीराँ तीर्थ-हेतु वृन्दावन जाकर कुछ ही दिनों में लौट नहीं आतीं अपितु ख्याति प्राप्त होने तक वहाँ रहती भी हैं । वृन्दावन-निवास के पूर्व तक कोई उनको 'बावरी' कहता है, तो कोई "कुल-नासी" और "जग-हाँसी" करता है "मदमाती" कहकर, परन्तु वृन्दावन के मुक्त वातावरण में एकनिष्ठ भक्ति की उच्च सीमा पर पहुंच कर वे ख्याति-प्राप्त होती हैं ।

कुल-कुटुम्बियों की नाराजगी और 'जग-हाँसी' के खत्म होकर ख्याति फैलने के लिये एक दीर्घावधि की नितान्त आवश्यकता सहज ही प्रतीत होती है, अतएव उपर्युक्त अभिव्यक्तियों के आधार पर एक सुदीर्घ काल के लिये ही मीराँ का वृन्दावन रहना सिद्ध होता है । इन्हीं उपर्युक्त अभिव्यक्तियों के आधार पर यह भी आभासित होता है कि मीराँ की यह वृन्दावन-यात्रा मात्र तीर्थ-हेतु नहीं हुई है क्योंकि तीर्थ-हेतु जाने वाली

मीराँ के सम्मुख कुल के विरोध या "जग-हाँसी" की समस्या का उपस्थित होना अस्वाभाविक ही प्रतीत होता है, विशेषत: जब कि मीराँ का पितृ-कुल और श्वसुर-कुल दोनों ही अपनी वैष्णव भक्ति के लिये प्रसिद्धि पा चुका था। अपने दादा परम वैष्णव भक्त राव दूदा जी से ही मीराँ ने कृष्ण-भक्ति की प्रेरणा पाई थी। अपने छोटे चचेरे भाई जयमल जी की परम भक्ति से प्रसन्न होकर "बहुत बढ़ै तेरो परिवार, नहीं होय कजिया में हार" जैसा अभय दान दिया था। सर्व-सम्मत है कि मीराँ के पितृव्य बीरमदेव भी उनकी बहुत खातिर किया करते थे।

अद्यावधि मान्य मतानुसार जहर देने जैसी घटना के कारण मीराँ अपने पितृव्य बीरमदेव द्वारा वि० सं० १५९२ में मेड़ते बुला ली जाती हैं। वि० सं० १५९५ में बीरमदेव से मेड़ता छिन जाता है और मीराँ वृन्दावन की ओर चल पड़ती हैं। वहीं से द्वारिका चली जाती हैं और वि० सं० १६०३ में लौटाने का प्रयास होने पर द्वारिकाधीश रणछोड़ जी की प्रस्तर-प्रतिमा में समा जाती हैं। किन्तु मीराँ के पदों से व्यक्त होती घटनाएं कुछ और ही संकेत करती हैं। पदों के आधार पर यही सिद्ध होता है कि कुल और समाज की गहरी नाराजगी और 'बदनामी' के बीच ही मीराँ महल-त्याग करती हैं। तदुपरान्त समय पाकर 'जग-हाँसी' भी मिट जाती है और 'कुल-कुटुम्बी' भी आकर 'मधु-मासी' की तरह घेर लेते हैं। यदि मेड़ता के हस्तान्तरित होने पर ही मीराँ 'भक्ति के रंग' में या विवश होकर वृन्दावन गमन करती तो ऐसी गहरी बदनामी और नाराजगी का होना वा समय पाकर 'जग-हाँसी' का मिटना और स्वजनों का 'मधुमासी,' की तरह घेर

लेना आदि घटनाएं सम्भव ही क्योंकर होतीं ? उपर्युक्त बातों पर विचार करने से गृह-त्याग के बाद मीराँ द्वारा की गई वृन्दावन यात्रा ही संदिग्ध जान पड़ती है । इस यात्रा का समय हेतु व अवधि सभी कुछ अनिश्चित है । सम्भव है कि मीराँ द्वारा की गई इन विभिन्न यात्राओं की प्रामाणिकता व हेतु पर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से खोज होने पर मीराँ के जीवन की कई जटिल समस्याएं एकदम सुलझ जांय ।

मृत्यु

मीराँ की मृत्यु कब और कहाँ हुई, यह भी एक बड़ा विवादास्पद विषय है । इस पहलू पर प्राप्त इतिहास में गहरे मतभेद हैं । एक मत मुंशी देवीप्रसाद के आधार पर वि० सं० १६०३ को मीराँ की मृत्यु-तिथि मानता है तो दूसरा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के मत व अन्य कतिपय ऐतिहासिक आधार पर वि० सं० १६३० को ही मृत्यु-तिथि मानता है ।

प्राचीन ग्रंथों से इस पहलू पर कोई सुनिश्चित प्रकाश नहीं पड़ता । '८४ वैष्णवणकी वार्ता' में आयी कतिपय कथाओं की विवेचना करने से यह सुनिश्चित हो जाता है कि वि० सं० १६२२ के बाद तक मीराँ जीवित थीं । 'गुंसाई जी के सेवक कृष्णदास अधिकारी तिनकी वार्ता' से हरिराम व्यास का मीराँ के घर जाना सिद्ध होता है । 'मीराँ बाई' में पृष्ठ २२ पर डा० लाल लिखते हैं, "यह प्रसंग निश्चित

रूप से सं० १६२२ के पश्चात् किसी समय का है। इस प्रकार मीराँ बाई का सं० १६२२ के बाद तक जीवित रहने का प्रमाण मिल जाता है।"

'महकमे तवारीख, मेवाड़' से भी कोई निश्चित तिथि प्राप्त नहीं हो सकी। "मीराँ बाई रत्नसिंह के राज तक (वि० सं० १५८८-१५९२) तो जिंदा थी, महाराणा उदैसिंह जी (१५९२-१६२८) के राज में मरीं[1]।" 'महकमे तवारीख मेवाड़' का यह कथन अतिशय संशयात्मक सिद्ध होता है क्योंकि राणा उदयसिंह का राज्य काल वि० सं० १५९८ से शुरू होता है। इतिहास प्रसिद्ध है कि वि० सं० १५९२ में पृथ्वीराज के खवासवाल बेटे बनवीर राणा विक्रमाजीत को मार स्वयं गद्दी का मालिक बन बैठा था, वि० सं० १५९८ में उदयसिंह ने बनवीर को हराकर मेवाड़ पर अपना कब्जा जमा लिया। 'महकमे तवारीख' के अनुसार वि० सं० १५८८-१५९२ तक राणा रत्नसिंह का १५९२ से १६३८ तक राणा उदयसिंह का राज्य काल मान लेने पर उपर्युक्त प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना का न होना ही सिद्ध होता है। प्राप्त इतिहासानुसार उपर्युक्त घटना मात्र किम्बदन्ती नहीं अपितु सुनिश्चित इतिहास है अतः 'महकमे तवारीख' 'मेवाड़' द्वारा दिये गए काल पर निर्भर नहीं किया जा सकता। 'वीर-विनोद' के आधार पर भी मीराँ बाई महाराणा विक्रमाजीत व उदयसिंह के समय तक जीती रहीं[1]। ९ सितम्बर १९३८ में पुरोहित जी को लिखे गए अपने पत्र में गौरीशंकर हीराचन्द

---

१. "मीराँ बाई का जीवन चरित्र" पृष्ठ ३ तीन पर दिया गया फुटनोट

ओझा लिखते हैं "मीराँ बाई के निश्चित जन्म सं० का पता नहीं और न मृत्यु के।"[1] तथापि, 'उदयपुर राज्य का इतिहास' में पृष्ठ ३६० पर लिखते हैं, "मीराँ द्वारिकापुरी में जाकर रहने लगीं जहाँ वि० सं० १६०३ (ई० सन् १५४६) में उसका देहान्त हो गया।" 'चतुर-कुल-चरित्र' में भी मीराँ की मृत्यु-तिथि वि० सं० १६०३ दी गई है। हरविलास सारडा भी इससे सहमत हैं[२]।

मुंशी देवीप्रसाद लिखते हैं, "राठोड़ो का एक भाट जिसका नाम भूरदान है, गाँव लूंणवे परगने मारोठ, इलाके मारवाड़ में रहता है उसकी जबानी सुना गया है कि मीराँ बाई का देहान्त सं० १६०३ में हुआ था और कहाँ हुआ था यह मालूम नहीं।"[3] इस मौखिक आधार पर ही मुंशी जी ने १६०३ को ही मीराँ की मृत्यु-तिथि निर्धारित की है तथापि वे स्वयं ही कुछ अनिश्चित प्रतीत होते हैं, क्योंकि जैसा कि पीछे बताया गया है आप ही के द्वारा दिए गए वृतान्त के आधार पर मीराँ का वि० सं० १६१८ तक मेड़ते में रहना ही सिद्ध होता है।

अधिकांश विद्वानों ने मुंशी जी के मत को प्रामाणिक माना है। श्री परशुराम जी 'मीराँ बाई की पदावली' पृष्ठ ६१ (परिशिष्ट) पर लिखते हैं, "इन निश्चयों के विषय में अभी तक किसी भी विद्वान् ने कोई वैसी आपत्ति नहीं की है। केवल मिश्र बंधुओं ने, न जाने किस प्रमाण का आश्रय लेकर, अपने 'मिश्रबंधु

---

१ व्यक्तिगत नोट से उद्धृत।

२. 'वीर-विनोद'–'महाराणा रत्नसिंह' के अन्तर्गत पृष्ठ २ पर दिया गया फुटनोट। ३–"मीराँ बाई का जीवन-चरित्र।" पृष्ठ २८

विनोद' (भाग[१])में सं० १५७३ के उक्त समय को मीराँ बाई का जन्म काल मान लिया है और पं० रामचन्द्र शुक्ल ने भी अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में उसी को दुहरा दिया है। संभव है इन विद्वानों ने भ्रमवश उक्त विवाह संवत् को जन्म संवत् समझ लिया हो।"

बेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित 'मीराँ बाई की शब्दावली और जीवन चरित्र' में मुंशी जी की मान्यता का खण्डन दो जनश्रुतियों के आधार पर किया गया है। ये जनश्रुतियाँ सम्राट अकबर का तानसेन के साथ मीराँ के दर्शनार्थ आने और तुलसीदास के साथ परमार्थी पत्र-व्यवहार करने की है। वि० सं० १६०३ को मीराँ की मृत्यु-तिथि मान लेने से उपर्युक्त दोनों ही जनश्रुतियाँ गलत सिद्ध हो जाती हैं। वि० सं० १५९९ में जन्म लेने वाला, ४, ५ वर्ष का बालक का मीराँ के दर्शन के लिये जाना असंगत ही सिद्ध होता है। फिर, तानसेन का साथ तो इस समय को और भी पीछे ले जाता है। तुलसीदास की प्रसिद्धि भी 'मानस' लिखने के बाद ही हुई और 'मानस' लिखने का प्रारम्भ ही वि० सं० १६३१ में हुआ था अत: मात्र इन जनश्रुतियों के आधार पर मुंशी देवीप्रसाद के मत का खण्डन सम्भव नहीं, तथापि मुंशी जी का मत भी मान्य नहीं क्योंकि वह भी मात्र अनुश्रुति पर ही निर्धारित हैं।

प्रियादास में ही इस जनश्रुति का सर्व प्रथम उल्लेख मिलता है।

"लागी चटपटी भूप भक्ति को सरुप जानि,

---

१. "मीराँ बाई का जीवन चरित्र" पृष्ठ २८

अति दुख मानि विप्र श्रेणी लै पठाइयै।
बेगि लेके आवों मों को प्राण दे जिवावौ,
अहो गये द्वार धरनौ दै बिनती सुनाइये।
सुनि विदा होन गई राय रणछोर जू पै,
छांड़ौ राखौ हीन लीन भई नहीं पाइये।"

प्रियादास ने अपने कवित्त में मीराँ विषयक सभी प्रचलित जनश्रुतियों का संग्रह किया[1] अतः उस पर निर्भर नहीं किया जा सकता। यदि इसको प्रामाणिक भी माना जाय तो भी पदाभिव्यक्ति से यह सुस्पष्ट हो उठता है कि मीराँ पर अत्याचार करने वाले राणा और मीराँ को लौट आने का आग्रह करने वाले राणा एक ही थे परन्तु प्राप्त इतिहास बताता है कि राणा विक्रमाजीत ने मीराँ पर अत्याचार किया और राणा उदयसिह ने मीराँ को लौटाने का प्रयास किया।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने उदयपुर दरबार की सम्मति से मीराँ की मृत्युतिथि वि० सं १६२०-१६३० के बीच किसी समय मानी थी। 'वृहत-काव्य दोहन' के लेखक इच्छाराम सूर्यराम देसाई और डा० रामकुमार वर्मा भी उसका अनुमोदन करते हैं। यदि वार्ताओं को प्रामाणिक माना जाय तो '८४ वैष्णवण की वार्ता' में मीराँ सम्बन्धी अवतरणों से यह सुनिश्चित हो जाता है कि वि० सं० १६२२ के बाद तक भी मीराँ जीवित थीं। 'मीराँ बाई' में पृष्ठ ६० पर डा० लाल लिखते हैं, "गुजरात में मीराँ की प्रसिद्धि देखते हुए यह असम्भव जान पड़ता है कि वे इतनी कम

---

१. डा० लाल लिखित मीराँ बाई के पृष्ठ २५ पर।

अवस्था में मरी होगीं । वियोगी हरि सं० १६२५ के आसपास मीराँ का निधन मानते हैं और कुंवर कृष्ण सं० १६३० के आसपास । मृत्यु-तिथि सं० १६३० मानने पर मीराँ की अवस्था भी ७० के आसपास पहुंच जाती है जो इस कीर्ति के लिए पर्याप्त है और किसी प्रकार अधिक भी नहीं कही जा सकती ।"

प्राप्त पदों के आधार पर इस पहलू पर कोई प्रकाश तो पड़ता ही नहीं साथ ही राजा द्वारा मीराँ को लौटाने के प्रयास वाली जनश्रुति ही अमान्य ठहरती है। मीराँ के कुछ पदों में 'जग-हाँसी' मिटने की और कुल-कुटुम्बियों द्वारा 'मधु-मासी' की तरह घेर लिये जाने की अभिव्यक्ति मिलती है तथापि लौटाने के लिए राणा द्वारा किए गए किसी भी प्रयास की कोई अभिव्यक्ति नहीं मिलती। यद्यपि, वैसे पदोंकी प्रामाणिकता जिनमें'जग-हाँसी'मिटने की अभिव्यक्ति मिलती है, निस्संदेह नहीं, अधिक सम्भव है कि वे प्रक्षिप्त ही हों । जनश्रुति के अनुसार लौटा लाने के लिए भेजे हुए ब्राह्मणों को लौटा देने में असमर्थ हो मीराँ रणछोड़ जी की मूर्ति में समा गयीं । यह एक बड़ी अमान्य सी घटना प्रतीत होती है । किसी भी मानव का सदेह एक प्रस्तर मूर्ति में समा जाना असम्भव ही है । सम्भव है कि भक्त कवियों ने मीराँ के प्रति अपनी श्रद्धा और भक्ति को व्यक्त करन क लिए ही एक ऐसे भावनामय रूपक का सहारा लिया हो । मुंशी देवीप्रसाद लिखते हैं, "मीराँ द्वारिका में जाकर रणछोड़ जी की मूर्ति में समा गयीं, क्योंकि राणा ने उनको लौटा लाने के लिए ब्राह्मण भेजे थे। इससे ऐसा अनुभव किया जाता है कि उनकी मृत्यु द्वारिका में

हुई[1]।, डा० लाल लिखते हैं, "बहुत सम्भव है कि इस तिथि का सम्बन्ध प्रियादास की टीका में वर्णित उस प्रसंग से है जिसके अनुसार मेवाड़ के राणा ने मीराँ बाई को मेवाड़ लौटा लाने के लिये ब्राह्मणों का एक दल भेजा था। ब्राह्मण जब मीराँ को लौटा लाने में समर्थ नहीं हुए तब सम्भवतः उन्होंने अपनी मर्यादा बचाने के लिये उनके मूर्ति में अंतर्धान होने की कथा गढ़ ली, जो मेवाड़ और मारवाड़ में स्वीकार कर ली गई। अस्तु, राजस्थान में मीराँ के अंतर्धान होने की तिथि सं० १६०३ प्रसिद्ध हो गई और सं० १६११ में बड़े धूमधाम से मीराँ बाई के नाम से प्रसिद्ध मंदिर में उनके इष्टदेव श्री गिरधर लाल की मूर्ति की स्थापना हुई जैसा कि राधाकृष्ण दास की खोज से स्पष्ट है[2]।" उपर्युक्त कारणों से इस जनश्रुति की सत्यता में ही शंका होती है अतः इसके आधार पर समय का निर्धारण करना निश्चित ही असंगत ठहरता है।

प्राप्त इतिहास और पद के आधार पर मीराँ की मृत्यु-तिथि का अन्तिम निश्चय करना असम्भव ही है, तथापि प्राप्त वृतान्त की विवेचना पर वि० सं० १६३० के लगभग ही मीराँ का निधन ज्यादह सम्भव प्रतीत होता है।

---

१. 'मीराँ बाई का जीवन-चरित्र' पृष्ठ २८।
२. मीराँ बाई पृष्ठ ६०।

उपासना खंड

३

उपासना

साँस्कृतिक इतिहास में विक्रम की १५ वीं, १६वीं, व १७वीं शताब्दी अपूर्व हैं। रामानन्द, कबीर, रैदास, दादू जैसे विचारक संत, महाप्रभु वल्लभाचार्य और महाप्रभु चैतन्य जैसे अद्वितीय भक्त, सूरदास, रसखान और तुलसीदास जैसे भक्तकवि, महाराणा साँगा और महाराणा प्रताप जैसे वीर-शूरमा व अन्य कितने ही महात्माओं द्वारा विभूषित होने का गौरव तीन शताब्दियों के इस युग को प्राप्त है। इतिहास के पन्ने इस बात के साक्षी हैं कि यह युग विभिन्न भावनाओं से आलोड़ित हो रहा था। यह एक क्रान्तिकारी युग था, जिसके अग्रदूत रामानन्द थे

"भक्ति द्राविड़ ऊपजी, लाए रामानन्द।
प्रकट करि कबीर ने, सप्त दीप नौखंड।"

इस युग में प्रस्फुरित होती प्रेरणा ब्राह्मणों द्वारा प्रसारित पौराणिक धर्म व उसकी रूढ़ियों को गहरी चुनौती थी। शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित एकेश्वरवाद के सिद्धान्त पंडितों के वितण्डावाद में सीमित होकर आडम्बरमय हो गये। पंडितों के तर्क-वितर्क की शुष्कता और आडम्बर जन-हृदय तक पहुंच कर जनरंजन न कर सकी। राजनैतिक और सामाजिक विषमता का स्वार्थान्ध ब्राह्मणों ने लाभ उठाया अतः जन-जीवन में एक गहरी विषमता छा गयी। ऐसे समय में "जाँति पाँति पूछै नहीं कोई,

हरि को भजे सो हरि का होई" जैसे अपने नवीन सिद्धान्त क प्रतिपादन और प्रचार कर रामानन्द ने ब्राह्मणों को और उनवे रूढ़िवादी धर्म को एक गहरी चुनौती दी। समाज में निम्न माने जाने वाले मुसलमान जुलाहा कबीर, चमार रैदास, जाट पीपा और सेना नाई को भी अपना शिष्य बनाकर जन-साम्य की अभूतपूर्व प्रेरणा दी। यह विषमता को साम्य की गहरी चुनौती थी। साथ ही परमानन्द ने शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों वं आवरण में प्रचलित तर्क-वितर्क और आडम्बर का खंडन करते हुए भक्ति-मार्ग को भी अपनाया। इनकी भक्ति का स्वरूप नया था।

"तेरा साँइयाँ तुझ्झ में"

या

"और सूनी सेज नहीं कोय"

जैसी अनुभूति के साथ ही वियोग के परम भाव की भी अभिव्यक्ति मिलती है।

"तलफै बिन बालम मोर जिया।
दिन नहीं चैन रात नहिं निंदिया, तड़फ तड़फ के भोर किया।
तन मन मोर रहर अस डोले, सूनि सेज पर जनम छिया।।
नैन थकित भये पंथ न सूझे, साँईं बेदरदी सुध न लिया।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, हरो पीर दुख जोर किया।।

एकेश्वरवाद की अखंड शाश्वत सत्ता की अनुभूति के साथ ही साथ भक्ति के माधुर्य-भाव का सम्मिश्रण ही रामानन्द द्वारा स्थापित सिद्धान्त की विशेषता है।

"साधो सहज समाधि भली,

गुरु प्रताप जा दिन तें उपजी,
दिन दिन अधिक चली ।"

युग की इन विभिन्न भावनाओं का राजस्थान पर गहरा प्रभाव पड़ा । हृदय और बुद्धि की तीक्ष्णता, तलवार और राज श्री की तीक्ष्णता, से आच्छादित न हो सकी । एक ओर 'हिन्दुवाणे सूरज' महाराणा कुम्भ वैष्णव-भक्ति में रंग कर राधा-कृष्ण के प्रेम-गीत गा उठे तो दूसरी ओर वीर-शिरोमणि जयमल परम वैष्णव प्रसिद्ध हुए । महाराणा साँगा की माता झाली राणी ने रामानन्द के शिष्य, चर्मकार रैदास को गुरु बनाने में अपना गौरव समझा । इसी युग में 'पग घूंघरू बाँध नाच नाच पिव रसिक रिझाने' को उत्सुक एक मधुर लय गूंज उठी—स्वातंत्र्य और साम्य की अदम्य प्रेरणा देने वाले इस युग की वह अद्भुत श्री थी मीराँ ।

उपासना-पद्धति

मीराँ की साधना सगुणोपासिनी धारा के अन्तर्गत मानी जाती है । प्रेमावेश में अपने गिरधर के सम्मुख "मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई" गा गा कर नाच उठने वाली मीराँ परम वैष्णव के अतिरिक्त और हो भी क्या सकती हैं ?

महाप्रभु बल्लभाचार्य मीराँ के समकालीन थे । बड़े बड़े विद्वान् भी बल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित पुष्टि मार्ग के अनुयायी थे, जनता ने भी इसका स्वागत किया था । परन्तु मीराँ ने कभी

भी इस मत को स्वीकार किया हो ऐसा वर्तमान इतिहास के आधार पर प्रतीत नहीं होता, अपितु '८४ और २५२ वैष्णवण की वार्ताएं' इसके विरुद्ध ही गवाही देतीं हैं। 'चौरासी वैष्णवण की वार्ता" के अनुसार वल्लभ मतानुयायी रामदास ने मीराँ का साथ इसलिये छोड़ दिया था कि मीराँ ने महाप्रभु के पदों के अतिरिक्त अन्य पदों को गाने का आग्रह किया। इस प्रस्ताव से रुष्ट होकर रामदास मीराँ को 'दारी राँड' जैसे विशेषण से विभूषित कर वहाँ से चल पड़ते हैं। मीराँ के अतिथि बने अपने पट्ट शिष्य गोविन्द दूबे को महाप्रभु वल्लभाचार्य ने पत्र लिखकर बुलवा भेजा। पत्र को पाते ही मीराँ के अत्यधिक आग्रह के बावजूद भी गोविन्द दूबे वहाँ से चल ही पड़ते हैं। मीराँ के पुष्टि-मार्ग में दीक्षित होकर 'महाप्रभुन की सेवक' न बनने के कारण ही कृष्णदास अधिकारी मीराँ की भेंट स्वीकार नहीं करते। 'वार्ताओं' के आधार पर यह तो निश्चित रूपेण ही कहा जा सकता है कि मीराँ कभी भी वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित नहीं हुई थीं।

"८४ वैष्णवण की वार्ता" में दी गयी 'अथ कृष्णदास अधिकारी तिनकी वार्ता।'

"सो वे कृष्णदास शूद्र एकबेर द्वारका गये हुते सो श्री रणछोर जी के दर्शन करिकें तहाँ ते चले सो आप मीराँ बाई के गाँव आये सो वे कृष्णदास मीराँ बाई के घर गये तहाँ हरिवंश व्यास आदि दे विशेष सह वैष्णव हुते सो काहू को आयै आठ दिन काहू को आयै दश दिन काहू को आयै पंद्रह दिन भये हुते तिनकी विदा न भई हुती और कृष्णदास नें तौ आवत ही कही जो हूं तो चलूंगों। तब मीराँ बाई ने कही जो बैठो तब कितनेक मोहर श्रीनाथ जी

को देन लागी सो कृष्णदास ने न लीनी और कह्यो जो तूं श्री आचार्य जी महाप्रभून की सेवक नाहीं होत ताते तेरी भेंट हम हाथ ते छूवेंगे नाहीं सो ऐसे कहिकें कृष्णदास उहाँ ते उठि चले ।"

(प्रसंग १ चौ० वै० की वा० डाकोर सं० १९६०)

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट हो उठता है कि 'हरिवंश व्यास आदि दे विशेष सह वैष्णव' जैसे महाप्रभु वल्लभाचार्य के पट्-शिष्य भी मीराँ से भगवद्वार्त्ता करते हुए काफी समय के लिये रुक जाते थे। कृष्णदास अधिकारी अपनी साम्प्रदायिक संकीर्णता के कारण मीराँ का आतिथ्य स्वीकार नहीं कर सके तथापि "मीराँ बाई के गाँव" आये अवश्य ही।

"अथ मीराँ बाई के पुरोहित रामदास तिनकी वार्ता ।"

"सो एक दिन मीराँ बाई के श्री ठाकुर जी के आगे रामदास जी कीर्तन करत हुते सो रामदास जी श्री आचार्य जी महाप्रभून के पद गावत हुते, तब मीराँ बाई बोली जो दूसरो पद श्री ठाकुर जी को गावो तब रामदास जी ने कह्यो मीराँ बाई सो जो अरे दारी राँड यह कौन को पद है। यह कहा तेरे खसम को मूंड़ है जो जा आज से तेरो मुहड़ो कबहूं न देखूंगो। तब तहाँ से सब कुटुम्ब को ले कें रामदास जी उठि चले तब मीराँ बाई नें बहुतेरो कह्यो परि रामदास जी रहे नाहीं। पाछें फिरि कें वाको मुख न देख्यौ। ऐसें अपने प्रभून सों अनुरक्त हुते। सों वा दिन तें मीराँ बाई को मुख न देख्यौ, वाकी वृत्ति छोड़ दीनी, फेर वाके गाँव के आगे होय के निकसे नाहीं। मीराँ बाई ने बहुत बुलाये परि वे रामदासजी आये नाहीं। तब घर बैठे भेंट पठाई सोई

फेरि दीनी और कह्यो जो राँड तेरों श्री आचार्य जी महाप्रभून ऊपर समत्व नाहीं जो हमको तेरी वृत्ति कहा करनी है।"

(प्रसंग १ चौ० वै० की वा० डाकोर सं० १९३० पृ० १६१, १३२)

स्पष्ट है कि रामदास पुरोहित ने मीराँ का "महाप्रभून उपर समत्व नाहीं" होने के कारण उनकी पुरोहित वृत्ति छोड़ दी।

"महाप्रभून के सेवक" बनने के पूर्व रामदास जैसे विद्वान् भी मीराँ की पुरोहित-वृत्ति निस्संकोच ग्रहण करते थे। अपनी साम्प्रदायिक संकीर्णता के कारण रामदास पुरोहित "दारी राँड" जैसी अशिष्ट भाषा का व्यवहार कर मीराँ का गहरा अपमान करते हैं, और कृष्णदास अधिकारी उनका आतिथ्य भी अस्वीकार कर देते हैं, तथापि हित हरिवंश और हरिराम व्यास जैसे उद्भट विद्वान् और अन्य "विशेष सह वैष्णव" वहाँ एक खासे समय के लिये बेहिचक टिक जाते हैं। इतने पर भी, गोविन्द दूबे साचोरा ब्राह्मण को महाप्रभु वल्लभाचार्य स्वयं ही पत्र लिखकर बुलवा भेजते हैं। गोविन्द दूबे साचोरा ब्राह्मण भी पत्र पाकर चले जाने को तुरन्त ही उद्यत हो जाते हैं, मीराँ के बहुत समाधान करते रहने पर भी "फिर पाछे न देखो।"

'मीराँ बाई' में पृष्ठ २४ पर डा० लाल लिखते हैं:— "हरिदास बनिया की वार्ता में किसी जयमल की बेन का उल्लेख मिलता है जो गोसाँई जी की शिष्या हो गयी थीं। इस 'बेन' को कुछ विद्वानों ने मीराँ बाई ही मान लिया है, परन्तु भली भांति विचार करने पर यह बात ठीक नहीं जान पड़ती। मीराँ

बाई जयमल की चचेरी बहन अवश्य थी, परन्तु परदे में रहने वाली, तथा गोसाँई विट्ठलनाथ की शिष्या होने वाली, यह 'राजा जैमल' की 'बेन' मीराँ बाई के अतिरिक्त कोई अन्य बहन रही होगी, क्योंकि मीराँ बाई तो अपनी ससुरालमें भी परदा न करती थीं और गोविन्द दूबे, रामदास पुरोहित, कृष्णदास अधिकारी आदि सभी से निर्भय भगवद्वार्त्ता करती थीं और वे कभी भी बल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित नहीं हुईं जैसा कि '८४ वैष्णवण की वार्ता' से स्पष्ट है। तत्कालीन साम्प्रदायिक संकीर्णता के बावजूद भी वल्लभ-सम्प्रदाय के ग्रंथों में ही मीराँ की चर्चा मिलती है। 'महाप्रभून के सेवक' श्री नाभादास रचित 'भक्तमाल' ही ऐतिहासिक दृष्टिकोण से प्राचीन ग्रंथों में सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। आज तक भी वल्लभ-सम्प्रदाय की खास गद्दी नाथद्वारे में ही मीराँ की पूजा की जाती है, "शंका और भी गहरी हो जाती है जब कि हम देखते हैं कि उसी राजपरिवार में, मीराँ की समकालीन, मीराँ की देवरानी अजब कुंवर बाई पुष्टि-मार्ग में दीक्षित होकर विघ्न-बाधा रहित कृष्ण की सेवा उपासना में संलग्न है। न तो उनको 'जग-हाँसी' और 'बदनामी' ही सहनी पड़ती है, न अपने राज-परिवार को छोड़कर दर दर की ठोकर खाने पर ही मजबूर होना पड़ता है, ऐसा क्यों ? प्राप्त इतिहास इस प्रश्न पर सर्वथा मौन है ? एक ही वातावरण में, एक ही परिस्थिति में, एक ही राजपरिवार की एक बहू पुष्टि मार्ग में दीक्षित होकर सर्वथा सुनिश्चित रूपेण कृष्ण-पूजा में संलग्न रहें और दूसरी को उसी कृष्ण-पूजा के कारण ही 'जग-हाँसी' और 'बदनामी'

सहनी पड़े, साधु-दर्शनों के कारण ससुराल में विष-पान करना पड़े और परम वैष्णव, भक्त जयमल जैसे भाई को छोड़कर दर दर की ठोकर खानी पड़े, यह सब अत्यन्त असंगत प्रतीत होता है। ऐसी असंगत बातों का निराकरण होने पर ही मीराँ के जीवन की विभिन्न समस्याएं सुलझायी जा सकेगीं।

प्राप्त इतिहास के आधार पर महाप्रभु वल्लभाचार्य व उनके सम्प्रदाय के गहरे विरोध के बावजूद भी वल्लभ-सम्प्रदायी सन्तों का मीराँ के पास बराबर आना और भगवद् वार्त्ता करते रुक जाना ही सिद्ध होता है। अतः '२५२ वैष्णवण की वार्ता' के आधार पर कुछ विद्वान् मीराँ के पुष्टि-मार्ग में दीक्षित होने की सम्भावना भी देखते हैं तथापि '८४ वैष्णवण की वार्ता' से इसका खण्डन हो जाता है।

'पग घूंघरू बाँध नाच नाच पिव रसिक रिझाने' को तत्पर मीराँ ने शायद महाप्रभु चैतन्य द्वारा प्रतिपादित मार्ग का ही अनुसरण किया। वृन्दावन जाकर चैतन्य महाप्रभु के अनन्य शिष्य जीव गोस्वामी (या रूप गोस्वामी) से अत्यधिक आग्रह के साथ मिलीं व कुछ दिन इन्हीं के आश्रम में रहीं, ऐसी आम मान्यता है। किम्बदन्ती है कि वे वृन्दावन से द्वारिका जाकर रणछोड़ जी की प्रतिमा में ही समा गईं तथापि मीराँ अपने सम्पूर्ण शृंगार और सुहाग चिन्हों को तिलाञ्जलि देकर अपने 'साहिब' के अनुकूल 'जोगण भेष' धारण करने के लिये अति उत्सुक हैं। वे स्पष्ट ही कहतीं हैं, "जोई भेखाँ म्हाँरो साहिब रीझै, सोई भेख धारणां।" अपने इस 'साहिब' की रीझ के अनुकूल वे जोगण बनने को आकुल-व्याकुल हैं।

१–"तेरे खातर जोग लियो है, घर घर अलख जगाय।"
('मीराँ बाई की पदावली', पद ११०)

२–"तेरे कारण बन बन डोलूं, कर जोगण को वेश।"
(वही, पद १२१)

३–"माला मुदरा भेखलाँ रे बाला, खप्पर लूंगी हाथ।
जोगिण होय जुग ढूंढसूं रे, म्हाँरे रावलियारी साथ।"
(वही, पद ११८)

अपने 'साहिब' के अनुकूल मीराँ जिस जोगण वेश को अपनाने को उद्यत हैं वह तत्कालीन नाथ-पंथी धारा के अनुकूल पड़ता हे। हिन्दी के प्रख्यात विद्वान् श्री हजारी प्रसाद जी द्विवेदी अपनी पुस्तक 'कबीर' की भूमिका में लिखते हैं:–"यही लोग (गोरख-पन्थी कनफटे योगी) कान में छिद्र करके वह कुंडल धारण करते हैं जिसे मुद्रा या दर्शन कहते हैं, यही दो तीन अंगुल की काली सींग की छोटी सी सीटी गले में धारण करते हैं जिसे नाद (शृंगी नाद) कहते हैं और जो सेली नामक काले ऊनी धागों से गुंथा होता हैं। ये लोग गेरुआ वस्त्र और जटा धारण करते हैं।" मीराँ भी इन सब चिन्हों को अपनाने के लिए व्याकुल हैं।

१–"या तन ऊपरि भसम रमाऊं, खोर करूं सिर केश।
भगवाँ भेख धरूं तुम कारण, ढूंढत च्यारूं देस।"
(वही,-पद ७०।)

२–"माणिक मोती हम सब छोड़े, गल में पहनी सेली।"
(वही,-पद ८०।)

३–"आऊंगी मैं नाहिं, रहूं रे कर जटाधारी भेस,

चीर को फारूं, कंथा पहिरूं, लेऊंगी उपदेस ।"
("वही,-पद ११८ का पाठान्तर")

४–"मुद्रा माला मेखला रे, खप्पर लूंगी हाथ ।
जोगण होइ जुग ढूंढ सूंरे, म्हारा रावलियारी साथ ।"
("वही, पद ११८ ।")

५–"तेरे कारन जोगण हूंगी, दूंगी नग्र बीच फेरी,
कुञ्ज सब हेरी हेरी ।
अंग भभूत गले म्रिघछाला, यो तन भसम करूं री ।
अजहूं न मिला राम अविनासी, बन बन फिरूं री ।"
("वही पद ९४" ।)

इन कतिपय उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि मीराँ 'माला', 'मुद्रा', 'सेली', 'नाद', आदि सभी चिन्हों से युक्त जोगण बन रहीं हैं ।

मीराँ के आराध्य भगवान श्री कृष्ण योगिराज हैं, गुड़ाकेश हैं अवश्य, परन्तु उनका उपदेश भी हठयोग से बहुत परे है और जीवन भी राजसी है । शायद ही कहीं कृष्ण को 'जोगी' के इस रूप में देखा गया हो । कृष्ण के मधुर-रूप का वर्णन और उसी मधुर-भाव की भक्ति ही कृष्ण-भक्ति-शाखा की विशेषता है । तब कृष्ण-की प्रस्तर-मूर्ति के ब्याज से परब्रह्म की भक्ति करने वाली मीराँ तत्कालीन नाथ-पंथी 'जोगी' वेश को सर्वथा अपना लेने के लिये इतनी अधीर क्योंकर हो उठी हैं ?

पदों में व्यक्त भावनाओं के आधार पर यह सुस्पष्ट हो जाता है कि मीराँ ने अपने सद्गुरु को बहुत महत्व दिया है ।

"सगुरा सुरा अमृत पीबैं, निगुरा प्यासा जाती"
(वही,-पद १९७ ।)

नाथ-पंथ के अनुसार भी सद्गुरू की महिमा बहुत है। श्री हजारी प्रसाद जी 'कबीर' की भूमिका में "नाथ-पंथी सिद्धान्त और कबीर मत" शीर्षक के अन्तर्गत लिखते हैं:–"गोरखनाथ के योगी मार्ग में गुरू की बड़ी महिमा गाई गई है। गुरू ही समस्त श्रेयों का मूल है और एकमात्र अवधूत ही गुरू पद का अधिकारी हो सकता है।" "मीराँ के प्रभु गिरधर नागर" गा गा कर तन्मय हो जाने वाली मीराँ नाथ-पंथ की अनुयायिनी बनने को अत्यधिक अधीर प्रतीत होती हैं, यह एक गहरे रहस्य का सृजन करता है।

मीराँ की सम्पूर्ण पदाभिव्यक्ति से यह भी लक्षित होता है कि परिवार वालों का विरोध मीराँ की सगुणोपासना से या 'गिरधर नागर' की प्रस्तर-प्रतिमा के सम्मुख नृत्य और कीर्तन से नहीं था, अपितु था साधु-समागम और मीराँ द्वारा नाथ-पंथानुकूल वेश-भूषा के अपनाये जाने से। मीराँ ने अपने पदों में अनेक भौतिक यातनाओं का वर्णन किया है। साधु-सन्तों के आगमन को रोकने के लिये 'ताला-चौकी' लगाये जाने की, और पहरेदारी किये जाने की भी अभिव्यक्ति की है:–

१–"पहरो भी राख्यो, चौकी बैठारियो, ताला दियो जड़ाय।"
(वही,-पद ४६।)

इतना ही नहीं, मीराँ को मार डालने तक के कई प्रयत्न किये गये:–

१–'विष का प्याला राणा जी भेज्या, पीवत मीराँ हाँसी रे।"
(वही-पद ३९।)

२–"साँप पिटारा राणा भेज्या, मीराँ हाथ दियो जाय।

न्हाय धोय जब देखण लागी, सालिगराम गई पाय ।
जहर का प्याला राणा भेज्या, अमृत दीन्ह बनाय ।
न्हाय धोय जब पीवण लागी, हो अमर अचाँय ।
सूल सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीराँ सुलाय ।
साँझ भई मीराँ सोवण लागी, मानो फूल बिछाय ।"
(वही-पद ४५ ।)

इतना ही नहीं, तथाकथित मीराँ के पदों से व्यक्त भावना यही इंगित करती है कि 'जग-हाँसी' और 'बदनामी' के कारण ही घर वाले मीराँ के साधु-संग का विरोध करते हैं ।

१–"राणा जी म्हाँने या बदनामी लागै मीठी
कोई निन्दो, कोई बिन्दो, मैं चलूंगी चाल अनूठी
साँकली गली में सतगुर मिलिया, क्यूंकर फिरूं अपूठी
सतगुर जी सूं बातज करताँ, दुरजन लोगाँ ने दीठी"
(वही-पद ३६ ।)

मीराँ और सास के बीच हुए कथन से भी यही स्पष्ट होता है कि 'संसार' के 'बुरा' कहने से 'पीहर', 'सासरो' व अन्य कुटुम्बी लजाते हैं, अतएव मीराँ को साधु-संग छोड़ देना चाहिये ।

२–"लाजै पीहर सासरो, माइतणों मोसाल
सब ही लाजै मेड़तिया जी, थांसू बुरा कहै संसार"
(वही, पद २९ ।)

ननद ऊदाँ बाई का कथन भी इस उपर्युक्त भावना की पुष्टि करता है ।

३–"थांने बरज बरज मैं हारी, भाभी मानो बात हमारी
राणे रोस कियो थां ऊपर, साधो में मत जारी
कुल को दाग लगै छै भाभी, निंदा हो रही भारी

साधो रे संग बन बन भटकी, लाज गमाई सारी"
(वही-पद ३० ।)

सास, ननद और राणा मीराँ का विरोध करते हैं क्योंकि 'संसारी' द्वारा 'निंदा हो रही भारी' अतः कुल को 'दाग लगै छै'। सुस्पष्ट है कि परिवार वालों का विरोध मात्र 'जग-हाँसी' और 'बदनामी' के कारण ही है। तत्कालीन भावना को देखते यह युक्ति संगत नहीं प्रतीत होता कि कृष्ण-भक्ति और संकीर्तण को अपनाने के कारण ही विधवा युवराज्ञी मीराँ को इतनी गहरी 'बदनामी' और 'जग-हाँसी' का सामना करना पड़ा हो। तब, सम्पूर्ण जीवन में व्याप जाने वाला यह अति कठोर संघर्ष मीराँ ने किस हेतु किया ?

सिर्फ चित्तौड़ में ही मीराँ का विरोध नहीं होता अपितु मेड़ते में भी होता है। विष दिये जाने जैसी कटु घटना के बाद मीराँ के काका राव बीरमदेव उनको मेड़ते बुला लेते हैं। बीरमदेव और परम वैष्णव भक्त जयमल से मीराँ को बहुत सम्मान प्राप्त होता है, बीरमदेव और जयमल दोनों ही मीराँ की सुख-सुविधा के प्रति सदा बहुत सतर्क रहते हैं तथापि वहाँ भी साधु-समागम का विरोध होता है। मेड़ते में भी साधु-संतों के आगमन पर वैसा ही नियंत्रण रखा जाता है जैसा कि चित्तौड़ में था यहाँ तक कि इस प्रतिबन्ध से घबड़ा कर मीराँ एक दिन मेड़ता छोड़ कर चल देती हैं। (मुंशी देवी प्रसाद कृत 'मीराँ बाई का जीवन चरित्र' के आधार पर)। बालापन में ही वैष्णव-भक्ति की प्रेरणा देने वाले अपने परम वैष्णव-भक्त परिवार में भी मीराँ को कोई समर्थन नहीं मिलता, वह भी, जब कि विष-पान जैसी घटना से

मीराँ की अनन्य प्रेम-भक्ति की महिमा प्रमाणित हो चुकी थी। इन सब घटनाओं के कारण गहरी शंकाएं उपस्थित होती हैं।

अपनी भौतिक यातनाओं का इतना विशद वर्णन करती हुई भी मीराँ ने कहीं भी कोई भी अभिव्यक्ति ऐसी नहीं की जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि मीराँ की इस वैष्णव पद्धति की उपासना में किसी प्रकार की बिघ्न-बाधा डाली गई, या 'बालापन' से आराधित गिरधर-नागर की उनकी प्रिय मूर्ति को ही उनसे हटाने का कोई प्रयास भी किया गया। 'बंगीय-हिन्दी-परिषद' से प्रकाशित 'मीराँ-स्मृति-ग्रंथ' में प्रोफेसर शम्भू प्रसाद बहुगुणा लिखते हैं:– "घरवालों की जो बातचीत मीराँ से अपने काव्य में हुई है वे संगीत और नृत्य के निषेध विषयक नहीं हैं, वरन जोगिया-पंथ और सन्त कहे जाने वाले, समाज में निम्न समझे जाने वाले समुदाय में जाने, गाने और नाचने के ही निषेध विषयक हैं। राजघराने की कुल-वधू चमारों, धुनियों, जुलाहों और वेद-मर्यादा भंग करने वाले क्रान्तिकारियों के साथ जावे यह कब राजवंश को सह्य हो सकता था ? जिसे भोग करना है, राज रजाना है, वह मुड़ियों के धर्म को क्यों अपनाने लगा ?

वेद-विहित उच्च वंशीय, वैष्णव व शैव धर्म का अनुयायी स्वयं मीराँ का राजवंश था। यदि ऐसे धर्म के अनुसरण करने की ही बात होती तो मीराँ का विरोध न हुआ होता। मीराँ के विरोध के रूप में राजपरिवार संत-मत का विरोध करके सूचना दे रहा था कि अभी वह समय नहीं आया है जब संतमत व्यापक रूप में अपनाया जा सके।"

वहीं, "संतमत और मीराँ की भक्ति" के अन्तर्गत प्रो० तारकनाथ अग्रवाल एम० ए० पृष्ठ २४९ पर लिखते हैं :– "उपर्युक्त इतिहास यह भी सिद्ध करता हे कि इन दोनों राज-कुलों पर संतमत का कोई प्रभाव नहीं था। मीराँ के दोनों कुलों पर ही वैष्णव भक्ति के इस नवीन रूप का गहरा रंग छाया हुआ था।

प्रो० शम्भुप्रसाद बहुगुणा तथा प्रो० तारकनाथ अग्रवाल के अनुसार 'मीराँ के विरोध के रूप में राजपरिवार संतमत का ही विरोध कर रहा था' क्योंकि वह उनके परिवार और समाज में नवीन था। कबीर और संत रविदास का मीराँ के लगभग सौ वर्ष पूर्व ही होना प्रसिद्ध है। कबीर आदि निर्गुन-पंथी संतों को जनता का गहरा समर्थन प्राप्त हुआ, और इनके नाम पर विभिन्न सम्प्रदाय चल पड़े। राजस्थान और राणा परिवार के लिए भी संतमत नितान्त नवीन नहीं था यह इतिहास सिद्ध है। राणा साँगा की माता रानी झाली का कबीर के गुरु भाई, प्रसिद्ध संत चर्मकार, रविदास का शिष्यत्व स्वीकार करना प्राप्त इतिहास से सर्व-सम्मत है। संतमत के प्रारम्भिक काल में ही चित्तौड़ की महारानी निर्विरोध एक चर्मकार को गुरु बनाकर संतमत को अपना सकती हैं तब लगभग सौ वर्ष बाद यह क्योंकर कहा जा सकता है कि राजस्थान और राणा परिवार संतमत से नितान्त अपरिचित था। राणा परिवार में सर्व प्रथम संतमत को अपनाने वाली झाली रानी का कहीं कोई विरोध हुआ हो ऐसा कथन इतिहास में खोजे भी नहीं मिलता। तब, संतमत को स्वीकार करने के कारण ही मीराँ का

विरोध हुआ हो, मीराँ को इतना कठिन संघर्ष करना पड़ा हो यह युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता।

'मीराँ-स्मृति-ग्रंथ' में अपने लेख 'संतमत और मीराँ' में श्री परशुराम जी चतुर्वेदी पृष्ठ ६४ पर लिखते हैं,:–"इन रचनाओं द्वारा ये अपने इष्ट देव को पूर्ण ब्रह्मपरमात्मा समझती हुईं दीख पड़ती हैं। इन पदों में उसे ये न केवल निर्गुण, निरंजन अविनासी आदि कहकर ही व्यक्त करती हैं, किन्तु उसके मिलने के लिये एक नितान्त भिन्न साधना प्रणाली की ओर भी संकेत करती हैं, जिससे प्रकट होता है कि इन पर संतमत व निर्गुण-पंथ का भी प्रभाव प्रचुर मात्रा में पड़ चुका था। इनकी ऐसी रचनाएं अभी तक अधिक संख्या में नहीं मिली हैं और बहुत से लेखक इनमें कुछ को कभी कभी प्रक्षिप्त मानते हुए भी जान पड़ते हैं। तो भी, इस बात को स्वीकार कर लेना अनुचित नहीं कहा जा सकता कि मीराँ बाई का वातावरण सगुणोपासक भक्ति तथा निर्गुण-पंथी संतों, दोनों के ही प्रभावों से न्यूनाधिक प्रभावि तथा और उन दोनों प्रकार के साधकों के सत्संग का इन्हें सुअवसर मिल चुका था। फलतः इनके सरल व शुद्ध हृदय को उन दोनों प्रकार के साधनों ने ही अपने अपने ढंग से गढ़ने के प्रयत्न किये थे और समय समय पर इन्होंने उन दोनों ही प्रकार के भावों को अपनी रचनाओं द्वारा व्यक्त कर उनकी सचाई का परिचय दिया था। मीराँ बाई की उक्त दूसरे प्रकार की रचनाओं से प्रकट होता है कि इन्हें साहब रैदास जैसे संतों की भांति 'पिऊ' के रहस्य का पूरा परिचय उपलब्ध था और ये प्रायः उन्हीं शब्दों में इनकी ओर सदा संकेत भी किया करती थीं।"

आगे, पृष्ठ ६७ पर लिखते हैं :–"मीराँ बाई ने इसी प्रकार अपने कुछ पदों द्वारा ऐसे भाव भी प्रकट किए हैं जिनसे जान पड़ता है कि इन्हें संतों की 'सुरत', शब्द-योग नामक साधना का भी पूर्ण परिचय था तथा ये सम्भवतः उसका कुछ न कुछ अभ्यास भी कर चुकी थीं ।" आगे, पृष्ठ ६९ पर लिखते हैं :–"मीराँ बाई ने संतों की ही भांति "री मेरे पार निकस गया, सतगुर मार्‌या तीर" तथा "भरमारी रे बान मेरे सतगुरु विरह लगाय के" द्वारा अपने सदगुरु के उपदेश-दान का भी वर्णन किया है और "सतगुरू भेद बताइया, खोली भरम किवारी हो" कहकर उसकी अपूर्व सहायता के लिये अपने को ऋणी भी बतलाया है । इन्होंने स्पष्ट शब्दों में कह दिया है कि:–

"सतगुर मिलिया सुंज पिछानी, ऐसा ब्रह्म मैं पाती ।
सगुरा सूरा अमृत पीवैं, निगुरा प्यासा जाती ।"
(वही-पद ९० ।)

जिससे पता चलता है कि अपने 'सदगुरु' द्वारा ये केवल उस भेद को जान लेने की बात ही नहीं करतीं, किन्तु यह भी बतलाती हैं कि वास्तव में उससे दीक्षित होकर ही कोई परमात्म-तत्व उपलब्ध कर सकता है तथा 'निगुरा' सदा असफल ही रहता है ।

'दैनिक लोकवाणी' के दीपावली विशेषांक में दिया गया आपका लेख'मीराँ बाई की भक्ति का स्वरूप' और ही कुछ इंगित करता है । पृष्ठ २७ पर आप लिखते हैं, "मीराँ बाई द्वारा प्रयुक्त संतमत की शब्दावली मात्र से केवल इतना ही पता चलता है कि उन्हें इसका भी कुछ परिचय अवश्य रहा होगा, इस प्रकार की सामग्री उन्हें सुरति, शब्द योग की साधना में

पूर्णतः दक्ष सिद्ध करने के लिये अभी यथेष्ट नहीं कही जा सकती, इसके सिवाय सारी उपलब्ध रचनाओं पर विचार करने पर उन्हें एक सगुणोपासिका कहने की ही प्रवृत्ति होती है।"

स्पष्ट ही स्वयं चतुर्वेदी जी भी अनिश्चित ही हैं।

मीराँ संत रैदास को अपना गुरु बताती हैं, अतः इनके पदों पर संत-मत का प्रभाव आश्चर्यजनक नहीं। तथापि यह विचारणीय है कि प्राप्त पदों पर संत-मत का प्रभाव बहुत छोटे रूप में पाया जाता है। कबीर और संत मत को इंगित करने वाले पद सभी ब्रजभाषा में हैं उनमें दासी मीराँ का भी प्रयोग पाया जाता है, अतः सहज ही इन पदों की प्रामाणिकता में सन्देह होता है (देखें ब्रजभाषा के पदों पर विचार) यदि मीराँ का वृन्दावन गमन और निवास प्रमाणित भी हो जाता है तो भी तत्कालीन भक्ति-प्लावित वृन्दावन में पहुंच कर संत-मत से प्रभावित पदों की रचना असंगत ही प्रतीत होती है। प्राप्त इतिहास के आधार पर मीराँ का वल्लभ-सम्प्रदायी सन्तों से ही विशेष सम्पर्क भी सिद्ध होता है। जब कि संत गुरु रैदास के सिवा किसी अन्य संत-मतानुयायी महात्मा से किसी सम्पर्क की कोई चर्चा नहीं मिलती। उपर्युक्त परिस्थिति में संत रैदास का शिष्यत्व स्वीकार करने पर भी मीराँ संत-साधना-प्रणाली से अधिक प्रभावित रही हों यह कम ही संगत प्रतीत होता है।

यह समस्या और भी गहरी उलझ जाती है जब हम देखते हैं कि 'जोगण' बनने को उत्सुक मीराँ हठयोगी 'जोगी' साधना-

पद्धति का विरोध कर कबीर की तरह 'सहज कर बैराग' जैसा उपदेश भी देने लगती है:-

"जोगी होय जुगुति नहीं जाणी
उल्टी जन्म फिर आसी"

मीराँ के पदों पर संतमत की भी गहरी छाप स्पष्ट हो उठती है :-

१-'नैनन बनज बसाऊं री, जो मैं साहिब पाऊं री।
इन नैनन मेरा साहिब बसता, डरती पलक न नाऊं री।
त्रिकुटी महल में बना है झरोखा, तहाँ से झाकी लगाऊं री।'
(वही-पद १२ ।)

२-"सुरत निरत का दिवला संजोले, मनसा की करले बाती।
प्रेम हटी का तेल मगाँले, जगे रह्या दिन राती।"
(वही-पद २० ।)

तत्कालीन राजस्थान नाथ-पंथ और संत-मत दोनों से ही प्रभावित था अतएव मीराँ के पदों पर भी दोनों का ही प्रभाव पड़ंना अत्यधिक स्वाभाविक था। मीराँ संत-रैदास को अपना गुरु बताती हैं। अतएव इनके पदों पर संत-मत का प्रभाव आश्चर्यजनक नहीं। परन्तु हम देखते हैं कि जिन पदों में जोगी वेश-भूषा को अपनाने की वा 'जोगण' बनने की व्याकुलता की अभिव्यक्ति हुई है वे अधिकतर राजस्थानी भाषा में हैं, परन्तु कबीर या संतमत का प्रभाव इंगित करने वाले पद अधिकाँश ब्रजभाषा में हैं। यदि मीराँ का बृन्दावन-गमन और निवास प्रमाणित भी हो जाता है तो भी तत्कालीन भक्ति-प्लावित

वृन्दावन में पहुंच कर संतमत से प्रभावित पदों की रचना असंगत ही प्रतीत होती है ।

सम्भव है कि महानता और सर्व-प्रियता के कारण विभिन्न सम्प्रदाय वालों ने मीरां के नाम पर अपने अपने सम्प्रदाय के पद चला दिये हों । पूर्णरूपेण प्रमाणित पद-संग्रह तैयार न होने तक कुछ भी निश्चित रूपेण कहना असम्भव ही है, तथापि प्राप्त पदों के आधार पर ही विवेचना करनी पड़ेगी । विशेषतः जब कि प्राप्त इतिहास अपूर्ण और भ्रमात्मक है । नाथ-पंथ और संत-मत से प्रभावित पद न्यूनाधिक रूपेण प्रायः सभी पद-संग्रहों में मिल जाते हैं । इन विभिन्न भावाभिव्यक्तियों के कारण एक गहरे रहस्य का सृजन होता है ।

संत-मत से प्रभावित, रैदास संत की शिष्या, आजीवन "मीरां के प्रभु गिरधर नागर" गा गा कर नाच उठने वाली मीरां अपने 'साहिब' के अनुकूल ही 'खप्पर' 'सेली' 'नाद' आदि को अपनाकर 'जोगण' बनने को आकुल-व्याकुल हैं अतएव मीरां की साधना शुद्ध सगुणोपासना की परम्परा में तो कदापि नहीं आ सकती, अपितु वह नाथ-परम्परा के ही अधिक निकट पड़ती प्रतीत होती हैं तथापि पदों से व्यक्त होती विभिन्न भावनाओं के कारण मीरां को किसी भी पंथ या सम्प्रदाय विशेष तक सीमित कर नहीं रखा जा सकता । मीरां की स्वतंत्र आत्मा पंथ और सम्प्रदाय की सीमा से ऊपर उठकर शुद्ध सत्य की खोज में अग्रसर दृष्टिगोचर होती है ।

नाथ-प्रभाव

मीराँ के पदों की कोई हस्तलिखित या प्रामाणिक प्रति प्राप्त नहीं। मीराँ का प्राप्त जीवन-वृत्त भी इतना अपूर्ण और भ्रमात्मक है कि उसको इतिहास की संज्ञा तो कदापि नहीं दी जा सकती। मात्र लोक-गीत के आधार पर संकलित कौन पद या पद का कौन विशेष पाठान्तर प्रामाणिक और कौन प्रक्षिप्त है यह बताना असम्भव नहीं तो दुरूह तो अवश्य ही है। विभिन्न पद-संग्रहों में एक ही पद विभिन्न पाठान्तरों में मिलता है। इन पाठान्तरों के कारण पदों से व्यक्त भावनाओं और घटनाओं में भी अन्तर का पड़ जाना स्वाभाविक है, तथापि कुछ पद ऐसे हैं जो अधिकांश संग्रहों में प्रायः एक ही रूप में मिल जाते हैं। बहुत संभव है कि ऐसे कुछ पदों तथा प्राप्त वृतान्त की समन्वयात्मक एवं मनोवैज्ञानिक आलोचना के आधार पर सत्य के अधिक निकट पहुंचा जा सके।

मीराँ के नाम पर प्रचलित पद गुजराती, ब्रज और राजस्थानी तीनों ही भाषा में पाये जाते हैं। प्राप्त इतिहास के आधार पर ही गुजराती और ब्रजभाषा में प्रचलित इन तथाकथित मीराँ के पदों की प्रामाणिकता में सन्देह के लिये पर्याप्त स्थान है (देखें आलोचना खंड)। उपर्युक्त परिस्थिति में राजस्थानी भाषा में प्रचलित, तथाकथित मीराँ के पद विशेष महत्वपूर्ण हो उठते हैं, अतएव इनसे व्यक्त होती भावनाएं भी विशेष ध्यान आकर्षित करती हैं। इन पदों से व्यक्त भावनाओं में प्रायः सर्वत्र एक ऐसा अन्तःश्रोत लक्षित होता है जिसके आधार पर यह कहा जा सकता

है कि मीराँ के जोगी 'सगुण व साकार श्री कृष्ण ही हैं[1]।'

मीराँ के नाम पर प्रचलित अधिकांश राजस्थानी पदों में मीराँ ने अपने आराध्य का जो रूप वर्णन किया है वह वृन्दावन-वासिनी गोपियों के कृष्ण या द्वारिका-वासी रणछोड़ जी का नहीं, अपितु नाथ-परम्परानुसार विभूषित 'जोगी' विशेष का है। यद्यपि कृष्ण योगिराज हैं, गुड़ाकेश हैं, तथापि न तो 'जोगी' ही उनका विशेषण है और न नाथ-परम्परानुकूल जोगी वेश-भूषा ही उनकी वेश-भूषा है। प्राचीन साहित्य में कृष्ण के चार विभिन्न रूप दृष्टिगोचर होते हैं। सर्व-प्रथम वे हैं यशोदा के लाड़िले, गोकुल के प्यारे गोपाल, "अहीर की छोहरियों के छछिया भरि छाछ" पर नाचने वाले बाल-कृष्ण। मुरली की मधुर टेर पर गोपियों को लुभा, उनके साथ रास रचाते ब्रज-युवराज ही उनका दूसरा चित्र है। महाभारत के नीति-निपुण संचालक, द्वारिका के पीताम्बरधारी नाथ श्री वासुदेव के रूप में ही उनका तीसरा भव्य चित्र उपस्थित होता है। तब, सहसा ही हमारे सम्मुख उनका विराट रूप गीता के महान् उपदेशक योगि-राज, गुड़ाकेश कृष्ण के रूप में प्रस्फुटित होता है। इन चारों विभिन्न चित्रों में (phases) सदा ही "मोर मुकुट पीताम्बर" तथा "गल बैजन्ती माल" ही उनकी स्थायी वेश-भूषा है, और "मोहन मुरलीवाला" ही उनका सर्व-प्रिय विशेषण है। कृष्ण के मधुर-रूप की स्थापना और मधुर-भाव की भक्ति ही कृष्ण-भक्ति-

---

१—'बंगीय-हिन्दी-परिषद' से प्रकाशित 'मीराँ-स्मृति-ग्रन्थ' में श्री परशुराम जी का 'संतमत और मीराँ' नामक लेख से उद्धृत!

शाखा की विशेषता है तथापि मीराँ ने अपने आराध्य को बारबार 'जोगी' नाम से ही सम्बोधित किया है। मीराँ के 'जोगी' की वेश-भूषा भी नाथ-पंथ-परम्परानुसार ही है। कृष्ण की मुरली का स्थान 'नाद' ने और 'मोर मुकुट पीताम्बर गल बैजन्ती माला' का स्थान 'सेली' 'बटवो' व 'भभूति' ने ले लिया है।

१—"तेरो मरम नहि पायो रे जोगी ।
आसण माँडि गुफा में बैठियो, ध्यान हरी को लगायो।
गल बिच सेली हाथ हाजरियो, अंग भभूति रमायो।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, भाग लिख्यो सो ही पायो।"
('मीराँ बाई की पदावली',-पद १८९।)

२—"जोगिया ने कहज्यो जी आदेस ।
जोगियो चतुर सुजाण सजनी, ध्यावै संकर सेस।
आऊंगी मै नाह रहूंगी (रे म्हाँरा) पीव बिना परदेस।
करि किरपा प्रतिपाल मो परि, राखो न आँपण देस।
माला मुदरा भेखलाँ रे बाला, खप्पर लूंगी हाथ।
जोगिण होइ जुग ढूंढसूं रे, म्हाँरा रावलियारी साथ।
सावण आवण कह गया बाला, कर गया कौल अनेक।
गिणता गिणता घिस गई रे, म्हाँरा आँगलियाँरी रेख।
पीव कारण पीली पड़ी बाला, जोबन बाली बेस।
दासी मीराँ राम भजि के, तन मन कीन्हौ पेस।"
(वही-पद ११८।)

३—"कोई दिन याद करोगे रमता राम अतीत।
आसण माँडि अडिग होय बैठा, याही भजन की रीत।

मैं तो जाणूं जोगी संग चलेगा, छांड गया अधबीच ।
आत न दीसे जात न दीसे, जोगी किसका मीत ।
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, चरणन आवे चीत ।"

(वही-पद ५९ ।)

उपर्युक्त अभिव्यक्तियों से किसी साधनरत 'जोगी' का ही भव्य चित्र उपस्थित होता है । 'सेली', 'नाद', 'भभूति' आदि चिन्हों को धारणकर 'आसन माँडि' 'हरि अविनासी' का ध्यान लगाने वाला और 'संकर सेस' को ध्याने वाला निश्चित रूपेण ही कोई मानव है । स्वयं 'हरि अविनासी' या उनकी प्रस्तर-प्रतिमा के लिये भी यह मानवोचित कर्म सम्भव नहीं । भजन करना तो मानव का ही धर्म है । "आसन माँडि अडिग होय बैठिया, याही भजन की रीत" में कितना मार्मिक व्यंग है ।

४—"जोगिया जी निसिदिन जोऊं बाट ।
पाँव न चालै पंथ दुहेलो, आड़ा औघड़ घाट ।
नगर आय जोगी रम गया रे, मो मन प्रीत न पाइ ।
मैं भोली भोलापन कीन्हौ, राख्यो नहिं बिलमाइ ।
जोगिया कूं जोवत बोहो दिन बीता, अजहूं आयो नाहिं ।
विरह बुझावण अन्तरि आवो, तपत लगी तन माँहि ।
कै तो जोगी जग में नहीं, कैर बिसारी मोइ ।
काँइ करूं कित जाऊंरी सजनी, नैण गुमायो रोइ ।
आरति तेरी अन्तरि मेरे, आवो अपनी जाणि ।
मीराँ व्याकुल बिरहिणी रे, तुम बिनि तलफत प्राणि" ।

(वही-पद ४९ ।)

"कै तो जोगी जग में नहीं, कैर बिसारी मोय" जैसी अभि-

व्यक्ति से चित्र कितना सुस्पष्ट हो उठता है। मानव ही आवागमन के चक्र में बंधा हुआ है।

५–"गोबिंद ! कबहुं मिलै पिया मेरा।
चरण कंवल कूं हंसि हंसि देखूं राखूं नैणन नेरा।
निरखण कूं मोहि चाव घणेरो, कब देखूं मुख तेरा।
व्याकुल प्राण धरत नहिं धीरज, मिलि तूं मीत सबेरा।
मीरां के प्रभु हरि गिरधर नागर, ताप तपन बहुतेरा।"
(वही-पद १११।)

६–"पिया मिल्या मोंहि किरपा कीन्हीं, दीदार दिखाया हरि ने।
सतगुरु सबद लखाया अंसरी, ध्यान लगाया धुन में।"
(वही-पद १५०।)

७–"मीरां तो सतगुरु जी सरणे, हरि चरणा चित दीजोजी।"
(वही-पद ११२।)

८–"राणा जी मुझे यह बदनामी लगे मीठी।
कोई निन्दो कोई बिन्दो, मैं चलूंगी चाल अपूठी।
सांकली गली में सतगुरु मिलिया, क्यूं कर फिरूं अपूठी।
सतगुरु जी सूं बातज करत्तां, दुरजन लोगां ने दीठी।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, दुरजन जलो जा अंगीठी।"
(वही-पद ३६।)

निश्चित ही "हरि अविनासी" और 'पिया' दो विभिन्न हस्तियाँ हैं। इतना ही नहीं अपितुः–

'सुन अर्जुन सत्य प्रतिज्ञा मोरी
जहं जहं भीर परी भक्तन पै
तहं तहं पांव प्यादेही धाऊं'

जैसा कौल करने वाले भगवान श्री कृष्ण को अनन्य भक्त मीराँ द्वारा "विश्वासघात करि छाड़ि गये अधबीच" या "मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, अपनी गरज के मीत", जैसे कठोर उपालम्भ सुनने पड़ते हैं।

८—"जोगियारी प्रीतड़ी दुखड़ा रो मूल।
हिल मिल बात बणावत मीठी, पीछै जावत भूल।
तोड़त जेज करत नहि सजनी, जैसे चम्पेली के फूल।
मीराँ कहै प्रभु तुमरे दरस बिन, लगत हिवड़े में सूल।"
(वही-पद ५८।)

९—"जावो निरमोहिया जाणी तेरी प्रीत।
लगन लगी जदि प्रीत और ही, अब कुछ और ही रीति।
इमरत पाइ के विष क्यूं दीजै, कुण गाँव की रीति।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, अपणी गरज के मीत।"
(वही-पद ६०।)

१०—"धूतारा जोगी एकर सूं हंसि बोल।
जगत बदीत करी मन मोहन, कहा बजावत ढोल।
अंग भभूति गले मृग छाला, तू जन गुढ़ियाँ खोल।
सदन सरोज बदन की सोभा, ऊभी जोऊं कपोल।
सेली नाद बभूत न बटवो, अजूं मुनी मुख खोल।
चढ़ती बैस नैण अणियाले, तू घरि घरि मत डोल।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, चेरी भई बिन मोल।"
(वही-पद ६२।)

११—"प्रभु जी थे कहाँ गया नेहड़ी लगाय।
छोड़ गया विस्वास संघाती, प्रेम की बाती बराय।

बिरह समंद में छोड़ गया छो, नेह की नाव चलाय ।
मीराँ के प्रभु कबर मिलोगे, तुम बिनि रह्योइ न जाय ।"
(वही-पद ६६ ।)

१२–"जोगिया जी छाइ रह्याँ परदेस ।
जब का बिछड़िया फेर न मिलिया, बहोरि न दियो संदेस ।
या तन ऊपरि भसम रमाऊं, खोर करूं सिर केस ।
भगवाँ भेख धरूं तुम कारण, ढूंढत च्यारूं देस ।
मीराँ के प्रभु राम मिलण कूं, जीवनि जनम अनेस ।"
(वही-पद ७० ।)

१३–"होजी हरि कित गये नेह लगाय ।
नेह लगाय मेरो मन हर लियो, रस भरी टेर सुनाय ।
मेरे मन में ऐसी आवै, मरूं जहर बिस खाय ।
छाड़ि गये बिसवासघात करि, नेह केरी नाव चढ़ाय ।
मीराँ के प्रभु कबरे मिलोगे, रहै मधुपुरी छाय ।"
(वही-पद १८० ।)

"अपनी गरज के मीत" या "जगत बदीत करी मन-मोहन, कहा बजावत ढोल" जैसी अभिव्यक्ति "मीराँ के प्रभु हरि अविनासी" का कितना करुण चित्र उपस्थित करती है । "जबका बिछड़िया फेर न मिल्या, बहुरी न दियो संदेस" जैसी अभिव्यक्ति भी "सगुण और साकार श्री कृष्ण" के प्रति ही सम्भव है । 'मीराँ-स्मृति-ग्रंथ' में 'मीराँ की वेदना' के लेखक प्रो० रामेश्वर प्रसाद शुक्ल एम० ए० 'अंचल' पृष्ठ १२७ पर लिखते हैं:–"मीराँ की वेदना के पीछे एक कुचले हुए स्वप्न की, एक प्रेमदग्ध हृदय की विकलता है । उस वेदना

में पार्थिव यथार्थता है।' वहीं, पृष्ठ ११० पर श्री शरतचन्द्र कौशिक अपने लेख "मध्य एवं आधुनिक युग की काव्यागत वेदनानुभूति' के अन्तर्गत इसका समर्थन करते हुए प्रतीत होते हैं:—"मीराँ की कविता एक भुक्त-भोगिनी के हृदय की सच्ची कहानी है।"

मीराँ के कुछ पदों से व्यक्त एक और भी भावना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इन पदाभिव्यक्तियों से सुस्पष्ट हो उठता है कि मीराँ के 'जोगी' जाने को उद्यत हैं। प्रस्थान के लिये उद्यत 'जोगी' का जाने का निश्चय जितना अटल है उतना ही गहरा है मीराँ का रुक जाने के लिये किया गया आग्रह। इतने पर भी 'जोगी' रुकता नहीं और निराश मीराँ झुंझला पड़ती हैं, "जावा दे जावा दे जोगी किसका मीत।"

१—"जोगी मत जा, मत जा, मत जा, पाँइ परूं मैं चेरी तेरीहौं।
प्रेम भगति को पैड़ो ही न्यारो, हमकूं गैल बता जा।
अगर चंदण की चिता रचाऊं, अपणे हाथ जला जा।
जल बल भई भसम की ढेरी, अपणे अंग लगा जा।
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, जोत में जोत मिला जा।"
(वही-पद ५० ।)

२—"होजी म्हाँराज छोड़ मत जाज्यो।
मैं अबला बल नाहिं गुसाँई, तुमहिं मेरे सिरताज।
मैं गुणहीन गुण नाहिं गुसाँई, तुम समरथ महराज।
रावली होइ के किण रे जाऊं, तुम हौ हिवड़ा रो साज।
मीराँ के प्रभु और न कोई, राखो अबके लाज।"
(वही-पद ५१ ।)

३—"ऐसी लगन लगाइ कहाँ तूं जासी।
तुम देखे बिन कलि न परति है, तलफि तलफि जिव जासी।
तेरे खातिर जोगण हूंगी, करवत लूंगी कासी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कंवल की दासी।"
(वही-पद ५२।)

४—"पियाजी म्हाँरे नैणां आगे रहज्यो जी।
नैणां आगे रहज्यो, म्हाँने भूल मत जाज्यो जी।
भौ सागर में बही जात हूं, बेग म्हाँरी सुध लीज्यो जी।
राणा जी भेज्याँ बिख का प्याला, सो इमरित कर दीज्यो जी
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मिल बिछुड़न मत कीज्यो जी।"
(वही-पद ५३।)

'मिल बिछुड़न मत कीज्यो जी' जैसे करुण आग्रह का भी 'जोगी' पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जाते हुए 'जोगी' को रोक रखने में असमर्थ होकर भी मीराँ 'पिय आपणाँ' का साथ नहीं छोड़ना चाहती। अतएव 'जल बल कर भसम की ढेरी' होने के लिये भी उत्सुक हो उठीं हैं। क्योंकि 'प्रेम-भगति को पैड़ो' ही 'न्यारो' है। नाथ-परम्परानुसार विभूषित मीराँ के 'जोगी' के लिये 'अंग-भभूति' रमाना अत्यावश्यक है और मीराँ 'भसम' बनकर भी अपने 'जोगी' से लिपटी ही रहना चाहती हैं। इतने पर भी 'जोगी' रुकता नहीं और मीराँ दद में कराह उठती हैं, "ऐसी लगन लगाय कहाँ तू जासी ?"

१—"जोगिया से प्रीत कियाँ दुख होइ।
प्रीत कियाँ सुख ना मोरी सजनी, जोगी मीत न कोइ।
राति दिवस कल नाहिं परत है, तुम मिलियाँ बिनि मोइ।

ऐसी सूरत या जग माँही, फेरि न देखी सोइ।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे, मिलियाँ आँणद होइ।"
(वही-पद ५७।)

२—जावो निरमोहिया जाणी तेरी प्रीत।
लगन लगी जदि प्रीत और ही, अब कुछ औरि ही रीति।
इमरत पाइ के विष क्यूं दीजै, कुण गाँव की रीति।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, अपणी गरज के मीत।"
(वही-पद ६०।)

३—"जाबा दे जाबा दे जोगी किसका मीत।
सदा उदासी रहै मोरि सजनी, निपट अटपटी रीत।
बोलत बचन मधुर से मानूं, जोरत नाहिं प्रीत।
मैं जाणूं या पार निभैगी, छांड़ि चले अधबीच।
मीराँ के प्रभु स्याम मनोहर, प्रेम पियारा मीत।"
(वही-पद ६१।)

किसी जाते हुए 'जोगी' 'सतगुरु' को रोकने का कभी कोई अवसर मीराँ के जीवन में आया हो, ऐसा प्राप्त वृत्तान्त के आधार पर नहीं प्रतीत होता। सम्भव है कि '८४ वैष्णवण की वार्ता' में 'गुसाई जी के सेवक गोविन्द दूबे साचोरा ब्राह्मण, तिनकी वार्ता' के अन्तर्गत दिया गया संक्षिप्त वृत्तान्त इस विषय पर कुछ प्रकाश डाल सके।

"गोविन्द दूबे साचोरा ब्राह्मण तिनकी वार्ता"

"और एक समें गोविन्द दूबे मीराँ बाई के घर हुते तहाँ मीराँ बाई सों भगवद्वार्ता करत अटके। तब श्री आचार्य जी ने सुनी जो गोविन्द दूबे मीराँ बाई के घर उतरे हैं सो अटके हैं,

तब श्री गोसाँई जी ने एक श्लोक लिखि पठायो सो एक ब्रजवासी के हाथ पठायौ तब वह ब्रजवासी चल्यौ सो वहाँ जाय पहुंचौ, ता समय गोविन्द दूबे संध्या बंदन करत हुते। तब ब्रजवासी ने आय कें वह पत्र दीनो सो पत्र बाँचि के गोविन्द दूबे तत्काल उठे, तब मीराँ ने बहुत समाधान कियो, परि गोविन्द दूबे नें पाछें न देखौ।

(प्रसंग २ चौ० वै० की वा० डाकोर सं० १९६० पृ० १२६, १२७)

सम्भव है कि यह गोविन्द दूबे साचोरा ब्राह्मण ही मीराँ के 'सतगुरु' हों। परन्तु इसको मानने में एक आपत्ति होती है। गोविन्द दूबे सचीरा ब्राह्मण महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य हैं, जब कि मीराँ के 'सतगुरु' नाथ परम्परानुसार सुसज्जित, नाथ-धर्मानुकूल 'संकर सेस' की ध्याने में रत जोगी विशेष हैं।

'बालापन' से ही 'गिरधर-गोपाल' का पति-रूप में वरण करने वाली मीराँ, "मेरे तो गिरधर-गोपाल, दूसरा न कोई" गा गा कर नाच उठने वाली मीराँ, रैदास संत को अपना गुरु मानती हुई भी अपने इष्ट देव का वर्णन तत्कालीन नाथ-परम्परानुसार विभूषित जोगियों का सा ही करती हैं और स्वयं भी अपने 'साहिब' के अनुकूल ही 'जोगण वेश' धारण करके 'जोगण' बनने को अत्युत्सुक हैं। ऐसा क्यों ?

"जिन भेखाँ म्हाँरो साहिब रीझे, सोई भेख धारणाँ" जैसी नारी-हृदय की एकान्त चाह के कारण मीराँ स्वयं भी 'जोगन' वेष अपनाने को आकुल-व्याकुल हैं।

१—"या तन ऊपरि भसम रमाऊं, खोर करूं सिर केस।

भगवाँ भेख धरू तुम कारण, ढूंढत च्यारूं देस ।"
(वही-पद ७० ।)

२—"तेरे कारण जोगण हूंगी, दूंगी नग्र बिच फेरी ।
कुंज सब हेरी हेरी ।
अंग भभूत गले मृग छाला, यो तन भसम करूंरी ।
अजहुं न मिल्या राम अविनासी, बन बन बीच फिरूंरी ।"
(वही-पद ९४ ।)

३—"फारूंगी चीर करूं गल कंथा, रहूंगी वैरागण होई री ।
चुरियाँ फोरूं माँग बिखेरूं, कजरा में डारूं धोय री ।"
(वही-पद ४८ ।)

कुछ अन्य पदाभिव्यक्तियाँ इस रहस्य को और भी गहरा कर देती हैं । विरोध द्योतक अधिकाँश पदों में मीराँ के आराध्य की वेश-भूषा नाथ-परम्परानकूल नहीं अपितु परम्परानुगत कृष्ण-भक्ति-प्रथानुसार ही है । साधु-सन्तों का अत्यधिक सत्कार का विरोध करने वाली माँ के प्रति मीराँ का कथन है:—

"माई म्हाँने सुपने में परण गया गोपाल ।
अंग अंग हल्दी मैं करी जी, सुध भीज्यो गात ।।
माई म्हाँने सुपने में परण गया दीनानाथ ।
छप्पन कोट जहाँ जान पधारे, दुलहा श्री भगवान ।
सुपने में तोरण बाँधियो जी, सुपने में आई जान ।
मीराँ को गिरधर मिलिया जी, पूर्व जनम के भाग ।
सुपन में म्हाँने परण गया जी, हो गया अचल सुहाग ।"
(वही पद २७ ।)

दुनियाँ की नीति समझा कर मीराँ से 'महल में' चलने का आग्रह करने वाली ननद ऊदाँ बाई के प्रति भी मीराँ का कथन है:–

"भाव भगत भूषण सजे, सील संतों सिंगार।
ओढ़ी चूनर प्रेम की, गिरधर जी भरतार।
ऊदाँ बाई मन समझ, जावो अपने धाम।
राज पाट भोगो तुम्हीं, हमें न तासूं काम।"

(वही-पद ३० ।)

मीराँ के सामान्य शृंगार में भी भेद है:–

१–"मीराँ लागो रंग हरी, औरन रंग अटक परी।
चूड़ो म्हाँरे तिलक अरु माला, सील बरत सिणगारो।
और सिंगार म्हाँरे दाय न आवे, यो गुरु ग्यान हमारो।
कोई निन्दो कोई बिन्दो, म्हें तो गुण गोबिंद का गास्याँ।
जिन मारग म्हाँरा साध पधारै, उण मारग म्हे जास्याँ।
चोरी न करस्याँ जिव न सतास्याँ, काँई करसी म्हाँरो कोई।
गज से उतर के खर नहिं चढ़स्याँ, ये तो बात न होई।"

(वही-पद २३ ।)

२–"मेरो मन लागो हरि सूं, अब न रहूंगी अटकी।
गुरु मिलिया रैदास जी, दीन्ही ग्यान की गुटकी।
चोट लगी निज नाम हरी की, म्हाँरे हिवड़े खटकी।
मोती माणिक परत न पहिरूं, मैं कब की नटकी।
गेणो तो म्हाँरे माला दोवड़ी, और चंदन की कुटकी।
राज कुल की लाज गमाई, साधां के संग मैं भटकी।
नित उठ हरिजी के मंदिर जास्याँ, नाच्याँ दे दे चुटकी।
भाग खुल्यो म्हाँरो साध संगत सूं, साँवरिया की बटकी।

जेठ बहू की काण न मानूं, घूंघट पड़ गई पटकी।
परम गुरां के सरण में रहस्यां, परणाम करां लुटकी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जनम मरण सूं छुटकी।"

(वही-पद २४।)

मीराँ के सम्बोधन और वेश-भूषा की चाह में इतना गहरा अन्तर एकाएक ही क्योंकर सम्भव हुआ ?

प्राप्त इतिहास की विरोधाभिव्यक्तियां सन्देहोत्पादक हैं। यद्यपि प्राप्त इतिहास के आधार पर ही मीराँ द्वारा की गयी वृन्दावन-यात्रा तथा ब्रजभाषा में प्राप्त तथाकथित मीराँ के पदों की प्रामाणिकता में संशय उपस्थित होता है तथापि जब तक कि उपर्युक्त घटना अप्रामाणिक सिद्ध नहीं हो जाती तब तक तो मीराँ के जीवन की पूर्ण विवेचना के लिये इस पर भी विचार करना ही अधिक उपयुक्त होगा। सम्भव है कि प्राप्त पद और इतिहास की समन्वयात्मक आलोचना मीराँ के प्राप्त जीवन-वृत्त में तारतम्य की खोई हुई इन कड़ियों पर प्रकाश डालने में सफल हो सके और प्राप्त सामग्री की मनोवैज्ञानिक विवेचना तथाकथित मीराँ के पदों में प्रायः सर्वत्र प्राप्त किसी जोगी विशेष के प्रति गहरे व्यक्तिगत दाम्पत्य सम्बन्ध को व्यक्त करने वाले अन्तःश्रोत का स्पष्टीकरण कर सके।

गुरू

मीराँ के गुरू कौन थे, यह एक बड़ा विवादास्पद विषय है। किसी के अनुसार चैतन्य महाप्रभु के अनन्य शिष्य जीव गोस्वामी ही इनके गुरू हैं, तो कोई इनको रूप गोस्वामी की ही शिष्या मानते हैं। जनश्रुति के अनुसार ये तुलसीदास से भी परामर्श करती प्रतीत होती हैं। मीराँ अपने गुरू का नाम रैदास संत बताती हैं। इन सब विभिन्न मान्यताओं पर प्राप्त इतिहास कोई प्रकाश नहीं डालता।

वियोगी हरि आदि कुछ विद्वान् जीव गोस्वामी को ही मीराँ के गुरू मानते हैं। जनश्रुति है कि अपनी बृन्दावन की यात्रा के अवसर पर मीराँ जीव गोसाँई से मिली थीं। एक अन्य मत है कि समय और अवस्था का विचार करने पर रूप गोस्वामी से ही मीराँ की भेंट अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होती है अतएव मीराँ के गुरू रूप गोस्वामी ही हैं। प्राप्त इतिहास के आधार पर मीराँ द्वारा की गई बृन्दावन-यात्रा में ही संदेह के लिए पर्याप्त कारण है। यदि अद्यावधि प्राप्त बृतान्त को ही प्रमाणित मान लिया जाय तो भी जीव या रूप गोस्वामी के प्रति मीराँ द्वारा भेजे गये संदेश के आधार पर मीराँ ही गोस्वामी जी की गुरू प्रतीत होती हैं। क्योंकि अपने संदेश द्वारा मीराँ गोस्वामी जी के भेद जनित अंधकार को दूर करती हैं। फिर, इसी कथा के आधार पर ही यह भी स्पष्ट हो उठता है कि गोस्वामी जी से मीराँ की यह भेंट प्रथम ही थी। बृन्दावन की संदिग्ध यात्रा के अवसर पर जीव या रूप गोस्वामी से प्रथम भेंट में ही

मीराँ द्वारा भेजे गए संदेश के आधार पर यह तो निश्चित रूपेण ही कहा जा सकता है कि इन दोनों में से किसी का भी मीराँ का गुरू होना असंगत ही प्रतीत होता है।

श्री परशुराम जी, चतुर्वेदी लिखते हैं, "श्री वियोगी हरि ने तो स्पष्ट शब्दों में कह डाला है कि मीराँ बाई के "सिद्ध गुरु जीव गोस्वामी" ही थे और वह इसी कारण श्री चैतन्य सम्प्रदाय की ही वैष्णवी थीं यथापि उन्होंने श्री चैतन्य महा प्रभु के सम्बन्ध में एक पद बना कर उसमें अपने को "गौरी कृष्ण की दासी" भी मान लिया था, परन्तु मीराँ बाई के उक्त वृन्दावन यात्रा का कोई ऐतिहासिक विवरण नहीं मिलता। हमें इस बात का भीं अभी तक पता नहीं कि उक्त गौड़ीय वैष्णव भक्तों का भी कभी मेवाड़ की ओर भ्रमण हुआ था या नहीं। मीराँ बाई (सं० १५५५–१६०३) से श्री जीव गोस्वामी (सं० १५६८–१६५३) अवस्था में कुछ छोटे ठहरते हैं और उनके लिये प्रसिद्ध है कि अपनी २० वर्ष की अवस्था से वे निरन्तर वृन्दावन में ही रहे थे। इसके सिवाय भी वियोगी हरि ने जिस पद का उल्लेख किया है उसका किसी प्राचीन प्रामाणिक संग्रह में मिलना ही सिद्ध नहीं[1]।"

जनश्रुति है कि मीराँ ने तुलसी को एक पत्र लिख कर अपना कर्तव्य निर्धारित करने का प्रयास किया था। तब क्या मीराँ

---

१ 'दैनिक लोकवाणी के दीपावली विशेषांक में प्रकाशित "मीराँ बाई की भक्ति का स्वरूप" लेख से उद्धृत।

के गुरू तुलसी ही थे ? शिष्य का पथ-प्रदर्शन करते हुए उसके कर्तव्याकर्तव्य का निर्धारण करना ही तो गुरू की विशेषता है। परन्तु प्राप्त इतिहास के आधार पर इस शंका का भी निराकरण हो जाता है। 'मानस' की रचना के बाद ही तुलसी ख्याति-प्राप्त होते हैं, और 'मानस' का प्रारम्भ वि० सं० १६३१ के लगभग हुआ था जब कि प्राप्त मान्यतानुसार मीराँ वि० सं० १६०३ में रणछोड़ जी में समा जाती हैं।

वल्लभ-सम्प्रदायी ग्रंथ '८४ वैष्णवण की वार्ता' के आधार पर ही यह भी सुस्पष्ट हो उठता है कि मीराँ कभी महाप्रभु वल्लभाचार्य से दीक्षित नहीं हुई थीं। कीर्तन और सुमिरण के मार्ग को अपनाने वाली मीराँ कभी चैतन्य महाप्रभु से दीक्षित हुई हों या उनसे मिली भी हों ऐसी कोई चर्चा प्राप्त इतिहास में कहीं नहीं मिलती।

'२५२ वैष्णवण की वार्ता' में हरिदास बनिया की कथा आती है। इस कथानक के आधार पर जयमल की किसी एक 'बेन' का पुष्टिमार्ग में दीक्षित होना सिद्ध होता है। सम्भव है कि जयमल की यह 'बेन' मीराँ के अतिरिक्त अन्य कोई रही हों, परन्तु प्राप्त इतिहास इसका समर्थन नहीं करता। प्राप्त इतिहास के मतानुसार जयमल और मीराँ दोनों ही अपने अपने पिता की इकलौती सन्तान थे। अतः उपर्युक्त कथानक के आधार पर 'मेरता के राजा जैमल की इस बेन' को ही मीराँ मान लिया जाय तो यह सिद्ध हो जाता है कि मीराँ ने गुंसाई विट्ठलनाथ जी से पुष्टि-मार्ग की दीक्षा ली थी। प्राप्त इतिहास के आधार पर मीराँ का गुंसाई विट्ठलनाथ जी के समकालीन होना

संदिग्ध ही ठहरता है। फिर '८४ वैष्णवण की वार्ता' से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि मीराँ ने पुष्टि मार्ग की दीक्षा नहीं ली और इसलिए रामदास पुरोहित, कृष्णदास अधिकारी जैसे 'वैष्णवण' से भी अपमानित ही होती रहीं।

"मीराँ-स्मृति-ग्रंथ" में "जनम जोगिण मीराँ" के लेखक शम्भुप्रसाद बहुगुणा पृष्ठ ४२ पर लिखते हैं:—"ऐसे भी ताम्र पत्र बतलाये जाते हैं जिनका सम्बन्ध मीराँ से कहा जाता है। कहा जाता है कि मीराँ ने बाल्यकाल में अपने पुरोहित गजाधर से पुराण इत्यादि सुने थे और विवाह हो जाने पर वे उसे चित्तौड़ ले गई जहाँ उन्हें मुरलीधर के मंदिर की पूजा सौंपी और 'व्यास' की उपाधि के साथ साथ एक हजार बीघा भूमि भी दान दी जो आज भी गजाधर के वंशज भोग रहे हैं।

इस बात की पुष्टि अभी अन्य सामग्री से नहीं हुई है और न ताम्रपत्र ही मेरे देखने में आया है।"

आगे, पृष्ठ ३८ पर आप लिखते हैं:—"नाभादास के 'भक्त-माल' और उसकी प्रियादास की टीका को ध्यान में रखकर बीठलदास का मीराँ के गुरू होने की संभावना भी लोग देखते हैं। बीठलदास का जो विवरण अन्य ग्रंथों से मिलता है वह इतना ही बतलाता है कि बिठलदास माथुर चौबे थे। इनके पिता राणा के पुरोहित थे। बिठलदास राग रंग नृत्य तथा भजनीकों के प्रेमी थे। राणा के यहाँ भजन तथा नृत्य कर एक रात बेहोश हो गये, तीन दिन तक बेहोश रहे। मथुरा की यात्रा इन्होंने की, वहाँ अपने सगोतियों में भक्ति की दुर्दशा देखकर वापिस लौट गये। हरि-सम्मुख नृत्य करती एक नटिनी पर

रीझ कर इन्होंने उसे अपना सर्वस्व दिया, पुत्र रंगीराम भी। परम गुरू राणा की कन्या ने इन्हें अपने यहाँ बुलाने का प्रयत्न किया। बिठलदास ने उसे भी अपना नृत्य दिखाया। नर्तकी भी आश्चर्य चकित रह गई।

(इस विवरण से यह स्पष्ट नहीं होता कि यह राणा कौन थे तथा यह कन्या कौन थी) लेखक।"

प्राप्त पदों की अभिव्यक्ति के आधार पर यही सिद्ध होता है कि मीरांके गुरू 'रैदास संत' थे।

१—"मेरो मन लागो हरि सूं, अब न रहूंगी अटकी।
गुरू मिल्या रैदास जी, दीन्ही ग्यान की गुटकी।"
(मीराँ बाई की पदावली—पद २४)

२—"मीराँ ने गौविन्द मिलाया जी, गुरू मिलिया रैदास।"
(वही—पद)

३—"गुरू रैदास मिले मोहिं पूरे, धुर से कलम मिली।
सतगुरू सैन दई जब आके, जोत मे जोत रली।"
(वही-पद)

४—"रैदास संत मिले मोहि सतगुरू, दीन्हीं सुरत सहदानी।
मै मिली जाय पाय पिय आपण, तब मेरी पीर बुझानी।"
(वही-पद १५९)

मीराँ के गुरू कौन थे, उनका नाम क्या था ? यह जानने के लिए उपर्युक्त चार पदाँशों के सिवा और कहीं से भी कोई सूत्र उपलब्ध नहीं। यह 'रैदास संत' कौन थे यह जानने का भी कहीं कोई प्रामाणिक सूत्र नहीं। 'भक्तमाल' से पता चलता है कि भक्त बीठलदास रैदासी कहलाते थे, किन्तु उनके समय का कोई परिचय नहीं मिलता।

लोक-गीतों के आधार पर प्राप्त, तथाकथित मीराँ के कुछ पदों से यही व्यक्त होता है कि मीराँ के गुरू 'रैदास संत' दर्जी जाति के थे।

"मीराँ ए ज्ञान धरम की गाँठड़ी
हीरा रतन जड़ाजो जी
लोग थांरी निंदरा करै, साधों के मत जाओ जी
कुण गरू समझायो, घर को धन्धो छोड़यो जी
लोग थारी निंदरा करै, साधां में मत जाओ जी

कने कहोगी बाई माइड़ी
कने कहोगी बाई बीरोजी
कूण थाराँ पगलिया चापसी
कूण बुझे थारे मन री बात
बुढ़ी ठेढ़ी म्हाँरी मायड़ी
बीराँ भर्‌यो ए संसार

पावड़ी पगलियाँ चापसी, माला बूझे मन की बात
हरिदास दर्जी की बीनती जी, धोला वस्त्र सिमाओ
देर नगारो मीराँ चढ़ गई, माता हियो मत हारो जी
बागाँ में बोली कोयली, बन में दादुर मोर
मीराँ ने गिरधर मिलिया, नागर नन्दकिशोर"

पदाभिव्यक्ति से स्पष्ट है कि गुरू 'हरिदास दर्जी' के कहने पर मीराँ सफेद वस्त्र धारण कर 'दे नगारो', (डंके की चोट) अपने मार्ग पर चल देती हैं। सम्भव है कि "हरि को भजे सो हरि का होय, जाँति पाँति पूछै नहिं कोय", जैसे सिद्धान्त को

अपना कर 'हरिदास दर्जी' को अपना गुरू बनाने के कारण ही मीराँ को इतना कठिन विरोध सहना पड़ा हो।

यह 'हरिदास दर्जी' या 'रैदास संत' कौन थे इसका कोई उत्तर इतिहास में कहीं भी प्राप्त नहीं, तथापि प्राप्त इतिहास के अनुसार यह तो निश्चित है कि ये 'रैदास संत' प्रसिद्ध संत रविदास नहीं हो सकते। प्रसिद्ध संत रविदास कबीर के गुरू भाई और राणी झाली के गुरू थे। इतिहास के आधार पर संत रविदास मीराँ के लगभग सौ वर्ष पूर्ववर्ती थे। प्राप्त इतिहास के आधार पर ही कबीर के गुरू भाई प्रसिद्ध संत रविदास जाति के चमार थे, परन्तु (उपर्युक्त पद के आधार पर) मीराँ के गुरू 'हरिदास' या 'रैदास संत' दर्जी जाति के हैं। सम्भव है कि चर्मकार जाति के प्रसिद्ध संत रविदास के मत में दीक्षित हुआ, मीराँ का समकालीन कोई 'हरिदास' दर्जी अपनी एकनिष्ठ भक्ति के कारण 'रैदास संत' के नाम से विख्यात हो गया हो। और मीराँ पदों में आये 'रैदास संत' यही हों।

"इण सरवरियाँरी पाल मीराँ बाई साँपड़े" जैसे पद के आधार पर शायद यह कहा जा सकता है कि गुरु 'रैदास संत' से मीराँ की भेंट गृह-त्याग के बाद ही हुई। प्रचलित किम्बदंतियों से भी इस अनुमान की पुष्टि होती है। प्रसिद्ध है कि राजपरिवार की मर्यादा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये राणा ने मीराँ को मार डालने के अनेकों प्रयत्न किये, परन्तु "जाको राखै साइयाँ मारि न सकै कोय" और मीराँ हर बार साफ बच जाती हैं। मीराँ का दृढ़ विश्वास है कि "थांरी मारी नाँ मरूं, मेरो राखनहार और" यहाँ आकर जनश्रुतियाँ दो विभागों में विभक्त हो जाती

हैं। एक जनश्रुति के अनुसार अपने अन्य सभी प्रयत्नों में असफल होकर राणा क्रुद्ध हो उठते हैं और मीराँ को पत्र द्वारा आज्ञा देते हैं कि वे तालाब में कूदकर आत्महत्या कर लें। मीराँ ने इस आज्ञा का भी सहर्ष पालन किया,परन्तु वहाँ भी मीराँ दैवी-शक्ति के प्रभाव से बच जाती हैं। उसी दैवी-शक्ति से प्रेरित हो मीराँ ग्वाल-बाल की सहायता से बृन्दावन पहुंच जाती हैं। दूसरी जनश्रुति के अनुसार क्रुद्ध राणा ही मीराँ को तालाब में ढकेल देते हैं और एक साधु वहाँ मौके पर पहुंचकर मीराँ को बचा लेते हैं। दोनों ही किम्बदन्तियों से मीराँ का तालाब में डूबना और किसी की सहायता से बच निकलना सिद्ध होता है। सम्भव है कि ऐसी विपत्ति में मीराँ की रक्षा करने वाले यह साधु 'रैदास संत' ही थे। मीराँ के प्राप्त पदों में इसका समर्थन मिलता है, यद्यपि इतिहास इस घटना से सर्वथा अपरिचित ही है।

मीराँ के पदों पर कहीं कहीं संतमत का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। सम्भव है कि अपने इस, गुरु 'रैदास संत' से प्रभावित होकर मीराँ ने भी कबीर आदि अन्य संतों की भांति "भर मारि रे बाणसतगुरु बिरह लगाय के या सतगुरु मार्‍या बाण बिरह का" जैसी उक्तियाँ की हों। 'गोविन्द' से मिलाने के लिये 'गुरु' की नतान्त आवश्यकता का अनुभव कबीर और अन्य संतों की तरह ही मीराँ ने भी किया है।

गुरुदेव बिन जीव की कल्पना ना मिटै।
गुरुदेव बिन जीव का भला नाहीं।
गुरुदेव बिन जीव का तिमर नासै नहीं।

समुझि विचार ले मनै माहीं।
राह बारीक गुरुदेव तें पाइये।
जनम अनेक की अटक खोले।
कहै कबीर गुरुदेव पूरन मिलै।
जीव और सीव तब एक तोलै।

("कबीर का रहस्यवाद" लेखक डा० रामकुमार वर्मा पृष्ठ ५३ से उद्‌धृत)

मीराँ की भी अनुभूति ऐसी ही है।

"सगुरा सूरा अमृत पीवे, निगुरा प्यासा जाती।
मगन भया मेरा मन सुख में, गोविन्द का गुण गाती।
साहब पाया आदि अनादि, नातर भव में जाती।
मीराँ कहे इक आस आपकी, औराँ सूं सकुचाती।"

('मीराँ बाई की पदावली',-पद १९७।)

'गोविन्द' से मिलाने वाले अपने गुरु रामानन्द के प्रति कबीर श्रद्धा-वन्दना से परिपूर्ण हैं।

"सतगुरु के प्रताप ते, मिटि गयो सब दुख द्वन्द।
कहै कबीर द्विधा मिटि, गुरु मिलियो रामानन्द।"

अपने 'पिय' से मिलाने वाले 'संत रैदास' के प्रति मीराँ की भी भावना कुछ ऐसी ही है।

"रैदास संत मिले मोहि सतगुरु, दीन्हीं सुरत सहदानी।
मैं मिली जाय पाय पिय अपना, तब मोरी पीर बुझानी।
मीराँ खाक खलक सिर डारी, मैं अपना घर जानी।"

(वही-पद १५९।)

कुछ अभिव्यक्तियों में इतने गहरे साम्य के बाद भी कुछ

अन्य पदाभिव्यक्तियों के आधार पर मीराँ और कबीर की अनुभूतियों का गहरा अन्तर सुस्पष्ट हो उठता है ।

"परमातम गुरु निकट विराजैं
जाग जाग मन मेरे ।
धाय के पीतम चरनन लागै
साँई खड़ा सिर तेरे ।
जुगन जुगन तोंहि सोवत बीता
अजहुं न जाग सबेरे ।"

('कबीर' लेखक हजारीप्रसाद द्विवेदी पृष्ठ २५०, पद१९)

सर्वमान्य है कि मीराँ ने अपने आराध्य को ही 'जोगी' 'सतगुरु' आदि विभिन्न नामों से सम्बोधित किया है ।

और मीराँ की अनुभूति हैः–

"कै तो जोगी जग में नहीं, कै विसारी मोइ"

स्पष्ट ही मीराँ और कबीर की अनुभूति में गहरा साम्य होते हुए भी कुछ अन्तर है । जहाँ कबीर के 'सतगुरु' स्वयं "परमातम" हैं वहाँ मीराँ के 'सतगुरु' कोई 'जोगी' विशेष प्रतीत होते हैं । पदाभिव्यक्तियों के आधार पर यह सुस्पष्ट हो उठता है कि मीराँ के यह आराध्य नाथ-परम्परानुसार वेष-भूषा से विभूषित नाथ-परम्परानुकूल 'जोगी' कर्म में रत हैं ।

१–"जोगिया चतुर सुजान (सजनी) ध्यावै संकर सेस ।"

(वही-पद ११८ ।)

२–"तेरो मरम नहीं पायो जोगी ।
आसन माँड़ि गुफा माँहि बैठ्यो, ध्यान हरि को लगायो ।
गल बीच सेली हाथ हाजरियो, अंग भभूति रमायो ।

मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, भाग लिख्यो सो ही पायो ।"

(वही-पद १८९ ।)

३–"कोई दिन याद करोगे रमता राम अतीत ।
आसण माँड़ि अडिग होय बैठ्या, याही भजन की रीत ।
मैं तो जाणूं जोगी संग चलेगा, छांड़ि गया अधबीच ।
आत न दीसे जात न दीसे, जोगी किसका मीत ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरणन आवे चीत ।"

(वही-पद ५९ ।)

कृष्ण-भक्ति व कृष्ण-भक्ति शाखा के साहित्य, दोनों की ही परम्परा में 'मीराँ के प्रभु गिरधर नागर' को न तो कहीं 'जोगी' के इस रूप में देखा ही गया है और न कहीं नाथ-परम्परानुसार विभूषित 'जोगी' के रूप में उनका वर्णन ही मिलता है ।

किम्बदन्ती के अनुसार बालापन में ही मीराँ ने परम वैष्णव भक्त अपने दादा राव दूदा जी के घर पधारे किसी अतिथि साधु से गिरधर लाल की एक विशेष प्रतिमा अति हठपूर्वक ले ली थी । तभी से वे अनन्य भाव से उनकी पूजा किया करती थीं । 'बाल सनेही गोविन्दो' जैसी उक्तियों से शायद मीराँ ऐसी ही किसी घटना की ओर संकेत करती हैं । माता के मजाक को सत्य समझ कर उन्होंने उस प्रतिमा को ही पति-रूप में वरण किया, यहाँ तक कि विवाह मंडप में उसके साथ भांवरे ली । मीराँ के प्रेम और जीवन की एकमात्र आधार, परब्रह्मकी प्रतिमूर्ति "मीराँ के प्रभु गिरधर नागर " की वह प्रस्तर-प्रतिमा तो सदा सर्वदा ही उनके साथ है । मीराँ की इस मूर्ति को उनके पास से हटाने का कभी कोई प्रयास भी हुआ था ऐसी कोई चर्चा प्राप्त इतिहास

व पदों में नहीं मिलती। तब भी मीराँ अहर्निश किसी 'सतगुरु' के विरह में तड़पती रहती हैं।

"नातो नाम को मोसूं तनक न तोड़यो जाइ ।
पानाँ ज्यूं पिली पड़ी रे, लोग कहै घट रोग ।
छाने लाँघन में किया रे, राम मिलण के जोग ।
बाबुल बैद बुलाइया रे, पकड़ दिखाई मोरी बाँह ।
मूरखि बैद मरम नही जाणै, करक कलेजा माँह ।"

(वही-पद ७४ ।)

मीराँ द्वारा किये गये विरह वर्णन में प्रायः सर्वत्र एक ऐसा अंतः श्रोत लक्षित होता है जिससे उनके किसी के साथ गहरे व्यक्तिगत संपर्क की गंध आती है ।

आलोचना खंड

४

मीराँ के बारे में उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री इतनी कम है कि उसके आधार पर उनके जीवन की किसी भी विशेष घटना को या उनके नाम पर प्रचलित किसी भी पद या पदाँश को निश्चित रूपेण प्रक्षिप्त वा प्रामाणिक मान लेना असम्भव ही है। तथाकथित मीराँ के पदों से व्यक्त होती घटनाओं और उपलब्ध ऐतिहासिक वृतान्त में गहरा बैषम्य दीख पड़ता है। मीराँ का प्रामाणिक जीवन-चरित्र और पद-संग्रह तो और भी ऐतिहासिक प्रमाणों के मिलने पर ही सम्भव है, तथापि प्राप्त रचनाओं पर भी ध्यान देना अत्यावश्यक है। कृति ही कलाकार का सूक्ष्म रूप है, कृति के आधार पर ही हम कलाकार के जीवन सम्बन्धी सत्य के अधिक निकट पहुंच सकते हैं। अतः, मेरे विनम्र विचार से, प्राप्त ऐतिहासिक तथ्यों और प्राप्त रचनाओं से आभासित होती घटनाओं की समन्वयात्मक आलोचना ही हमें सत्य के अधिक निकट पहुंचा सकेगी। अपने आसपास, अपने घर में भी नित्य घटने वाली घटनाओं के प्रति हमारी की गयी धारणाएं प्रायः सत्य से बहुत दूर होती हैं। अपने प्रति कही गयी किसी भी बात को प्रत्येक व्यक्ति ठीक उसी भाव में नहीं ग्रहण करता जिस भाव में वक्ता ने कहा था।

अपितु वह ग्रहण करता है अपने जीवन और विचार के कारण उपस्थित तत्कालीन मनोदशा (मूड) विशेष में ही।

अतएव प्रायः वक्ता और श्रोता की धारणा (impressions) में अन्तर पड़ जाता है और यों दो चार व्यक्तियों से चलते चलाते घटना का रूप घट बढ़ जाता है। तब सैकड़ों वर्ष बाद किसी भी घटना और वह भी एक भाव-प्रधान घटना का निश्चित रूप सिर्फ अधूरे इतिहास के बूते पर निर्धारित करना आकाश-कुसुम पाने का प्रयास मात्र ही सिद्ध होगा अतएव अधिक युक्तियुक्त होगा यदि प्राप्त रचनाओं से व्यक्त होती भावनाओं और घटनाओं पर भी ध्यान दिया जाय।

इस दृष्टिकोण से विचार करने पर मीराँ के कुछ पदों की स्वतन्त्र आलोचना आवश्यक हो जाती है। इन पदों को मीराँ का मान लेने पर उपलब्ध-वृतान्त सही नहीं ठहरता। यदि उपलब्ध वृतान्त को ही अधिक प्रामाणिक माना जाय तो यह निश्चित रूपेण कहा जा सकता है कि ऐसे वैषम्य द्योतक कुछ पद अवश्य ही प्रक्षिप्त हैं।

मीराँ के पदों की कोई हस्तलिखित प्रामाणिक प्रति प्राप्त नहीं। मात्र लोक गीतों के आधार पर संग्रहीत कौन पद प्रामाणिक वा कौन पद प्रक्षिप्त है यह कहना असम्भव सा है। तथापि पदों से व्यक्त होती भावनाओं और घटनाओं का विवेचन अनावश्यक न होगा। सम्भव है कि पद से व्यक्त होती घटनाओं की विवेचना होने पर हमारा प्राप्त अधूरा इतिहास पूर्णता के अधिक निकट पहुंच सके। सम्भव है कि मीराँ के काल निर्णय पर भी गहरा प्रकाश पड़े!

अपने अध्ययन का आधार श्री परशुरामजी चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित 'मीराँ बाई की पदावली' में पाये गये ऐसे कुछ पदों पर

ही मैं ने विशेष ध्यान दिया है। सम्भव है कि अन्य संग्रहों में भी ऐसे कुछ और पद हों। तथापि, जिन पदों पर मैं ने अपना विचार प्रकट किया है, वे प्रायः सभी संग्रहों में करीब करीब इसी रूप में पाये जाते हैं।

घटनाद्योतक पद

तथाकथित मीराँ के पदों में कुछ ऐसे घटना प्रधान पद भी पाये जाते हैं जिनसे व्यक्त होती घटनाओं के प्रति प्राप्त इतिहास या तो सर्वथा मौन है या विरोधात्मक है। प्रायः सभी संग्रहों में ऐसे कुछ पद करीब करीब एक ही रूप में प्राप्त हैं। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विचार करने पर ऐसे पद विशेष महत्वपूर्ण साबित होते हैं। सम्भव है कि इनकी आलोचना करने पर मीराँ के जीवन का इतिहास अधिक प्रत्यक्ष हो उठे।

जनश्रुति है कि मीराँ की प्रेम-भक्ति और साधु-समागम से घबड़ा कर राणा ने अपने परिवार की कीर्ति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये, मीराँ को येनकेन प्रकारेण मार डालने के कई प्रयत्न किये। मीराँ के पास हलाहल भरा कटोरा भेजा गया। भक्त वत्सल श्री रणछोड़ जी ने उस हलाहल के प्रभाव को स्वयं अपने पर झेलकर भक्त की रक्षा की। मीराँ को मार डालने के इस प्रथम प्रयास में असफल हो राणा और भी क्रुद्ध हो उठे, अतएव इस बार और भी सबल उपायों का सहारा लिया गया। सर्प और सूल-सेज का षड़यंत्र रचा गया। इतने

पर भी असफल होकर राणा स्वयं ही 'सेल' (कटारी) ले मीराँ पर दौड़ पड़े, पर वहाँ भी भक्त-वत्सल रणछोड़जी ने भक्त की रक्षा की। बार बार असफल होकर भी राणा मीराँ की अनन्य भक्ति की महत्ता को नहीं समझ पाते। राणा वंश की मान-मर्यादा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये मीराँ को आज्ञा दी गयी कि चूंकि और किसी तरह उनको मारना सम्भव नहीं, तब वे स्वयं ही तालाब में कूदकर राणा परिवार की मर्यादा की रक्षा करें— मीराँ ने वह भी किया परन्तु,

"जाको राखै साइयाँ, मारि न सकै कोय।
बाल न बाकों करि सके, जो जग बैरी होय॥"

और यहाँ भी दैवी सहायता से मीराँ साफ बच निकली। इन विभिन्न जनश्रुतियों में सत्यासत्य का निर्णय बहुत कुछ तर्क के आधार पर ही करना पड़ेगा, क्योंकि कोई सुनिश्चित ऐतिहासिक वृतान्त नहीं और जो कुछ प्राप्त है, वह भक्तों की श्रद्धापूर्ण अतिशयोक्तियों से परिप्लावित है।

'मीराँ बाई' में पृष्ठ १६ पर डा० लाल लिखते हैं, "मीराँ बाई के जीवन-वृत-संबंधी वहिःसाक्ष्यों में सबसे अधिक प्रामाणिक ग्रंथ नाभादास रचित 'भक्तमाल' है जिसकी रचना वि० सं० १६४२ के पीछे किसी समय हुई थी। उस समय तक मीराँ बाई को मरे अधिक दिन नहीं हुए थे। शायद सब मिलाकर बीस वर्ष भी न बीत पाये थे।" 'भक्तमाल' में साँप या सूलसेज भेजे जाने का या (कटारी) सेल से हत्या करने के प्रयास का कहीं कोई भी वर्णन नहीं। ध्रुवदास रचित 'भक्त-नामावली' जिसका रचना काल वि० सं० १६९८ के लगभग माना जाता है, में भी

उपर्युक्त जनश्रुतियों का कोई उल्लेख नहीं । 'भक्त-नामावली' के बाद प्रियादास द्वारा की गयी 'भक्तमाल' की टीका मीराँ विषयक प्रचलित सभी जनश्रुतियों का संग्रह है । उपर्युक्त परिस्थिति में जिन घटनाओं का वर्णन प्रियादास कृत 'भक्तमाल' की टीका के अतिरिक्त अन्य किसी पूर्व रचित ग्रंथ में न मिलता हो उनकी प्रामाणिकता में संदेह का होना स्वाभाविक है । विशेषत: जब कि प्रियादास ने अपनी टीका में मीराँ के संबंध में प्रचलित सभी जनश्रुतियों को एकत्रित करने का प्रयास किया है ।

अद्यावधि प्राप्त इतिहास के आधार पर भी उपर्युक्त घटनाओं की प्रामाणिकता में संदेह के लिये पर्याप्त स्थान है । बिष-पान जैसी घटना के बाद मीराँ अपने काका राव बीरमदेव द्वारा मेड़ते बुला ली जाती हैं और एक दिन वहीं से तीर्थ-यात्रा के लिये प्रस्थान भी कर देती हैं, इसका समर्थन सभी विद्वान् एक स्वर से करते हैं । उपर्युक्त परिस्थिति में "बासक नाग" और "सूल-सेज" भेजे जाने या कटारी से हत्या का प्रयास किये जाने जैसी घटनाओं का मीराँ के मेड़ते जाने के पूर्व ही घट जाना सुनिश्चित है । तब मीराँ से कुछ ही परवर्ती भक्त नाभादास जो मीराँ को "बृज गोपिका सदृश्य" बताते हैं, मीराँ द्वारा विष-पान करने की घटना का वर्णन कर उनकी अतुल भक्ति और उनके प्रति परिवारवालों की गहरी कटुता का वर्णन करते हैं, तथापि उसके पूर्व घटित अन्य किसी भी विरोधात्मक घटना का वर्णन नहीं करते अतएव गहरी शंका होती है । उपर्युक्त घटनाओं को श्रद्धालु भक्तों द्वारा प्रचारित किंबदंतियाँ मात्र मानने का

एक और भी कारण है। ये कथाएं कई विभिन्न रूपकों में प्रचलित हैं, किसी भी घटना का एक से अधिक रूपक में प्रचलित होना ही उसे असत्य प्रमाणित करता है।

सर्प भेजे जाने के कथानक को व्यक्त करने वाले निम्नांकित पद प्राप्त हैं।

१—"पेटिया बासक भेजिया जी, यो छै मोतीडाँरो हार।
नाग गले में पहिरिया, म्हाँरे महला भयो उजार।"
('मीराँ बाई की पदावली',-पद ४२।)

२—"डबिया में भेज्या जी भुजंगम, सालिगराम करि जाणा।"
(वही-पद ४३।)

३—"साँप पिटारो राणाजी भेज्यो, द्यो मेड़तणी गल डार।
हंस हंस मीराँ कंठ लगायो, यो म्हाँरे नौसर हार।"
(वही,-पद ४४।)

४—"साँप पिटारा राणा भेज्यो, मीराँ हाथ दियो जाय।
न्हाय धोय जब देखण लागी, सालिगराम गई पाय।"
(वही,-पद ४५।)

स्पष्ट ही एक ही घटना के दो रूपक प्राप्त हैं। इसमें किस रूपक को सत्य और किसको असत्य माना जाय? सत्या-सत्य की कसौटी क्या हो?

एक ही घटना विशेष के दोनों कथानक तो कदापि सत्य नहीं हो सकते। अपने सुदूर लक्ष्य के बारे में सुनिश्चित मीराँ अपने जीवन की एक छोटी सी घटना के बारे में इतना अनिश्चित क्योंकर हो सकती हैं। सम्भव है कि मीराँ ने अपने जीवन की किसी घटना का वर्णन साँप भेजे जाने का रूपक बाँधकर किया

हो और पीछे से भक्तों ने उसमें अपनी अपनी प्रवृत्तियों के अनुसार न्यूनाधिक कर उसको वर्त्तमान रूपों में प्रचलित कर दिया हो, सम्भव है कि इस तरह के सभी पद, मीराँ की महत्ता प्रदर्शित करने के हेतु भक्तों द्वारा प्रचलित किये गये हों। सर्प का "मोतीड़ाँरो हारो" या 'सालिगराम' में परिवर्तित हो जाना सूर्य का पश्चिम में उदय होने के समान है।

कहीं कहीं एक तीसरा कथानक भी मिलता है जो कि अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है। परन्तु यह कथानक या तद्द्योतक पद आमतौर से प्रचलित नहीं है, इस कथानक के अनुसार भी साँप का मीराँ के पास येनकेन प्रकारेण पहुंचाया जाना सिद्ध हो जाता है। कथा निम्नांकित एक सर्प भी पूजा घर की खूंटी पर हार के साथ टाँग दिया जाता है। मीराँ हार उतार लेती हैं, और सर्प टंगा रह जाता है।

तीनों ही कथाओं से साँप का भेजा जाना और मीराँ का साफ बच निकलना सिद्ध हो जाता है, केवल बीच के कथानक में मीराँ किस प्रकार साफ बच जाती हैं, यही रहस्यमय प्रश्न है। वातावरण की कटुता के कारण, मीराँ का कुछ अधिक सचेत रहना ही अधिक सम्भव है। 'वासक' या 'नाग' के लिये फूलों का थाल या डलिया तो पर्याप्त कदापि नहीं, और इस थाल या डलिया के बदले 'पेट्या' या 'डविया' देखकर मीराँ को संदेह हुआ हो और वे सतर्क हो गयी हों या अनजान में ही किसी अन्य से उठवा लिया हो और इस तरह अनजाने ही वे स्वयं बच गयीं हों। इस कथानक का उपर्युक्त रूपक मेकालिफ में ही प्राप्त है। इन पदों में उपर्युक्त अधिकांश

क्रियाएं अन्य पुरुषवाची हैं जब कि एक तीव्र-स्वानुभूति ही मीरां के पदों की विशेषता है।

१–"विष का प्याला राणाजी भेज्या, पीवत मीरां हांसी रे।"
(वही-पद ३९ ।)

२–"विष का प्याला राणाजी भेज्या, अमृत का आरोगी रे।"
(वही-पद ४० ।)

३–"सांप पिटारो राणाजी भेज्यो, द्यो मेड़तणी गल डार।
हंस हंस मीरां कंठ लगायो, यो तो म्हांरे नौसर हार।"
(वही-पद ४४ ।)

"मीरां मगन भई हरि के गुण गाय" पद ४५ में तीनों ही किम्बदंतियों का संग्रह हुआ है। इस पद की सभी क्रियाएं अन्य पुरुष-वाचक हैं। अतः इस पद की प्रामाणिकता में तो और भी अधिक संदेह होता है। यद्यपि अन्य दोनों कथानकों के विभिन्न रूपों को व्यक्त करने वाले मीरां के पद विभिन्न संग्रहों में पाये जाते हैं तथापि मेरे अध्ययन का आधार, श्री परशुरामजी चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित 'मीरां बाई की पदावली' में सिर्फ ये ही पद पाये जाते हैं, अतएव मैं उन्हीं को उद्धृत करती हूं।

१–"सूल सेज राणा ने भेजी, दीजो मीरां सुलाय।
सांझ भई मीरां सोवण लागी, मानो फूल बिछाय।"
(वही-पद ४५ ।)

२–"राणो जी मो पर कोप्यो रे, मारूं एकज सेल।
मार्‍यां पिराछित लागसी, म्हांने दीजो पीहर मेल।"
(वही-पद ४७ ।)

'सूल-सेज' वाली घटना को व्यक्त करने वाली ये दो ही पंक्तियां

मिलती हैं और उनमें यह घटना इस एक ही रूपक में मिलती है। इस घटना की चर्चा किसी स्वतंत्र पद में नहीं हुई है। इस घटना को व्यक्त करने वाली ऐसी कुछ पंक्तियाँ प्रायः इसी रूप में अन्य-कथानकों को इंगित करने वाले पद में मिल जाती हैं।

क्रुद्ध राणा का मीराँ पर कटारी ले दौड़ने के कथानक के भी दो रूपक मिलते हैं। एक कथानक के अनुसार मीराँ "मार्याँ पिराछित लागसी, म्हाँने दीजो पीहर मेल" जैसी बुद्धिमत्ता पूर्ण उक्ति से बच जाती है तो दूसरे कथानक के अनुसार भक्त-वत्सल रणछोड़जी की कृपा से मीराँ की हजारों प्रतिमूर्तियाँ अवतरित हो जाती हैं, और राणा घबड़ा कर अस्त्र छोड़ भाग निकलते हैं। कथानक का पहला रूपक मान्य है तथापि दूसरा तो भक्तों की श्रद्धांजली जैसा ही प्रतीत होता है। उपर्युक्त दोनों ही घटनाएं किसी भी पद में एक साथ ही मिलती हैं अतः इनको वस्तुतः सत्य न मानकर भक्तों द्वारा प्रसारित कथाएं मानना ही अधिक युक्ति संगत प्रतीत होता है।

घटताद्योतक पद

"अब नहिं विसरूं.............धन मीराँ राठोड"

(वही-पद ४७।)

महलों में रहने वाली मीराँ की दृढ़ भक्ति और साधु-सेवा से राणा बार बार खीज उठते हैं। यहाँ तक कि मीराँ की हत्या के प्रयास में भी कुछ उठा नहीं रखते। मीराँ 'बतलाये' बोलती

प्याला' भेजकर अपनी प्रतिहिंसाग्नि को शान्त किया परन्तु मीरां के "राखनहार और" हैं, अपने "सबल धणी" के दृढ़ विश्वास के भरोसे वे विष को भी चरणामृत मानकर पी जाती हैं, और उनका बाल भी बाँका नहीं होता।

इतने पर भी राणाजी नहीं समझते। एक दिन फिर क्रोधावेश में वे मीरां को बरछी से मारने दौड़ पड़ते हैं, "मारूं एकज सेल।" कई अन्य लोक-गीतों से भी इस घटना का समर्थन होता है तथापि इतिहास इससे सर्वथा उदासीन है। इस बार, अपने बुद्धि कौशल से ही मीरां बच जाती हैं। स्त्री पर हाथ उठाना, हिन्दूमात्र घृणित समझते हैं, तथापि राजस्थान में यह भावना अत्यधिक प्रबल रही है। राजस्थान की वर्तमान गिरी हुई परिस्थिति में भी स्त्री पर हाथ उठाने वाले पुरुष को अत्यन्त हीन-दृष्टि से देखा जाता है। "मार्‌यां पिराछित लागसी, म्हाने दीजो पीहर मेल", जैसा शान्त उत्तर देकर मीरां अपनी अतुल बुद्धि और महानता का परिचय देती है। मारनेवाले के प्रति उनको कोई गिला वा शिकायत नहीं। शान्त हृदय से ही वे राणा के भविष्य की विवेचना करती हुई 'पीहर' जाने की अपनी आकांक्षा प्रकट कर देती हैं। इस 'पीहर' जाने में कितनी उपेक्षा और विरोध अन्तर्निहित है। स्व० श्री मुन्शी देवीप्रसादजी और प्रसिद्ध इतिहासज्ञ स्व० श्री ओझाजी के मतानुसार विष देने की दुर्घटना से दुखित होकर मीरां के काका राव बीरमदेव ने इनको अपने पास मेड़ते बुला लिया था। परन्तु उपर्युक्त पद की आगे की कुछ पंक्तियों को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि शायद "विष रा प्याला" पीने के बाद और "मारूं एकज सेल"

जैसी घटना के बाद भी मीराँ को पीहर जाने का सुअवसर नहीं प्राप्त हो सका था या शायद चले जाने पर भी लौट ही आना पड़ा था। प्राप्त इतिहास यहाँ सर्वथा मौन है। चित्तौड़ के महलों में एक बार फिर अप्रिय स्थिति उत्पन्न होती है और दुखित मीराँ कराह उठती हैं "ले जाती बैकुण्ठाँ माँहि, ये तो समझ्यो नहीं सिसोद" पर इस बार वे रुकेगीं भी नहीं, लौटेगीं भी नहीं, वे दृढ़ हैं। "म्हें तो सरणे राम के भल निन्दो संसार" और वे चल ही पड़ती हैं।

"अब के किरपा कीजिये, हूं तो फिर बाँधू तलवार"

उपर्युक्त पंक्ति से आभासित होने वाले अर्थ के कारण इस पंक्ति का महत्व अत्यधिक बढ़ जाता है। सुस्पष्ट है कि मीराँ का यह प्रयाण सहज रूप में पीहर जाना वा तीर्थ-गमन नहीं है। वे घर छोड़कर ही जा रही हैं। तथापि सम्पूर्ण पद से यही अभिव्यक्त होता है कि मीराँ रुष्ठ होकर पीहर जा रही हैं। मीराँ द्वारा "म्हाँने दीजो पीहर मेल" जैसी आकाँक्षा व्यक्त किये जाने पर ही यात्रा की तैयारी की जा रही है और राणा भी यही समझते हैं "या तो मुरड़ चली राठोड़।" क्या पीहर जाने के बहाने ही मीराँ अपने अति प्रभावशाली कुटुम्ब के मजबूत घेरों से निकल सकी हैं? "फिर बाँधू तलवार" से यह भी सुस्पष्ट हो उठता है कि मीराँ द्वारा घर छोड़ने का यह प्रथम प्रयास नहीं हो रहा है। एक बार पहले भी वे असफल प्रयास कर चुकी हैं। मीराँ द्वारा किये गये प्रथम असफल प्रयास से भी इतिहास सर्वथा अपरिचित है। "रथाँ बैल जुताय के ऊटाँ कसियो भार" और मीराँ चल ही देती हैं, सम्भवतः राणा

के अनजान में ही, सम्भवतः विरोधमय जानकारी में रुष्ठ मीराँ के चले जाने पर ही राणा को अपनी भूल अनुभव होती है और वे मीराँ को लौटाने के लिये संदेशवाहक को दौड़ाते हैं।

"राणो साँड्यो मोकल्यो, जाज्यो एके दोड़।
कुल की तारण अस्तरी, या तो मुरड़ चली राठौर।"

पर मीराँ इस बार लौटेंगी नहीं, वे दृढ़-प्रतिज्ञ हैं।

"साँड्यो पाछो फेरयो रे, परत न देस्याँ पाँव।
कर सूरापण नीसरी, म्हाँरे कुण राणे कुण राव।"

स्व० श्री मुंशी देवीप्रसाद जी के मतानुसार गद्दी के मालिक होने पर उदयसिंह ने मीराँ से लौट आने का आग्रह किया था। प्राप्त इतिहास के आधार पर मीराँ को यंत्रणा देने वाले राणा विक्रमाजीत थे, जब कि उनको वापस लौटाने का प्रयत्न करने वाले राणा उदयसिंह थे। परन्तु लौट आने के बदले मीराँ श्री रणछोड़ जी की मूर्ति में ही समा गयीं। घर-संसार को तिलाँजलि देकर जाती हुई मीराँ को रास्ते से ही लौटाने का प्रयास इतिहास में ढूंढे नहीं मिलता। ऐसी परिस्थिति में किस राणा द्वारा और कब यह प्रयास हुआ, यह जानना तो सर्वथा असंभव हो जाता है।

"कर सूरापण नीसरी, म्हाँरे कुण राणे, कुण राव" जैसी अभिव्यक्ति से रहस्य और भी गहरा हो उठता है। क्या ससुराल के कटु अनुभवों के कारण रुष्ठ हो पीहर जाती मीराँ 'राव' से भी अपना नाता तोड़ रही हैं? तब वे जा कहाँ रही हैं? या यहाँ 'राव' का प्रयोग 'राणे' शब्द के पूरक अर्थ में ही हुआ है? परन्तु मीराँ के पद तो कवयित्री के पद नहीं जो

छन्द और लय की पूर्ति के लिये ऐसे शब्दों का भी प्रयोग करतीं जिनसे कोई घटना या भाव विशेष इंगित नहीं होता हो। मीराँ के पद तो जीवन की अभिव्यक्ति हैं।

मीराँ की महत्ता को समझकर ही राणा उनको लौटा लाने के लिये संदेश-वाहक भेजते हैं।

"राणो साँड्यो मोकल्यो, जाज्यो एके दौड़।
कुल की तारण अस्तरी, या तो मुरड़ चली राठौर।"

परन्तु संदेश-वाहक मात्र संदेशा ही नहीं देता अपितु स्वयं भी मीराँ को समझाने का प्रयत्न करता है। संदेश-वाहक का कहना है:–

"संसारी निन्दा करे, दुखियो सब संसार।
कुल सिगरो ही लाजसी, मीराँ थे जो भया ख्वार।"

जिस मीराँ को "कुल की तारण अस्तरी" मानकर लौटाने के लिये स्वयं राणा व्यग्र है, उसी मीराँ के प्रति संदेश-वाहक का कथन है, "कुल सिगरो ही लाजसी, मीराँ थे जो भया ख्वार।" दोनों अभिव्यक्तियाँ परस्पर मेल नहीं खातीं। "कुल की तारण अस्तरी" से मीराँ की महत्ता और "मीराँ थे जो भया ख्वार" से मीराँ का अनौचित्य स्पष्ट हो उठता है। दोनों में से कौन ठीक है? मीराँ के जाते ही जाते एकाएक ऐसी कौन घटना घटी, जिसके कारण राणा को इतना गहरा पश्चाताप हुआ कि वे अपनी सम्पूर्ण अहमता को त्याग श्री रणछोड़ जी की अनन्य भक्त, साधु-सेवा संलग्ना मीराँ को ससम्मान लौटाने के लिये प्रयत्नशील हो उठे? वह राणा कौन थे? वह संदेश-वाहक कौन था, जो जाती हुई मीराँ को जग-नीति का उपदेश कर लौटा लाने

का प्रयास करता है ? अवश्य ही वह कोई महत्व-प्राप्त व्यक्ति रहा होगा। राजवधू मीराँ के प्रति "मीराँ थे जो भया ख्वार" जैसी उक्ति साधारण संदेश-वाहक की कदापि नहीं हो सकती। तब वह महत्व-प्राप्त बुजुर्ग कौन था, जो मीराँ को लौटा लाने गया ? "मीराँ थे जो भया ख्वार" से संदेश-वाहक का लक्ष्य किस ओर है ? मीराँ की अनन्य भक्ति की महिमा तो विष देने वाली घटना से प्रमाणित हो ही चुकी है, यहाँ तक कि "कुल की तारण अस्तरी" जैसी अभिव्यक्ति कर स्वयं राणा उसकी महत्ता को स्वीकार कर लेते हैं, फिर भी लौटाने का प्रयास करने वाले संदेश-वाहक का कथन यही है कि मीराँ के 'ख्वार' होने के कारण ही 'दुखियो सब संसार' है। इतना ही नहीं, अपितु 'कुल सिगरो ही लाजसी' क्योंकि 'संसारी' मीराँ के 'ख्वार' होने के कारण 'निन्दा करे।' स्पष्ट है कि अनन्य भक्ति के कारण महल छोड़ने वाली मीराँ का विरोध 'संसार' और 'कुल' दोनो ही कर रहा है। यहाँ भी प्राप्त इतिहास और मीराँ के जीवन की मान्य घटनाओं में गहरा वैषम्य दीख पड़ता है। इतिहास बतलाता है कि महाप्रभु वल्लभाचार्य और महाप्रभु चैतन्य से प्रभावित वह एक भक्ति परिप्लावित युग था और राणा विक्रमाजीत अपनी उद्दण्डता के कारण अत्यधिक अप्रिय राणा हुए। परन्तु उपर्युक्त पंक्तियाँ कुछ और ही इंगित करती हैं। मीराँ की महत्ता को समझकर 'कुल की तारण अस्तरी' को लौटाने के लिये राणा प्रयत्नशील हैं, फिर भी संदेश-वाहक का कहना है 'संसारी निन्दा करे।' तब क्या मीराँ को 'जग-हाँसी'. जग का विरोध और राणा का समर्थन प्राप्त था ?

एक ही राणा द्वारा यंत्रणाओं का दिया जाना और लौटाने का प्रयास किया जाना इतिहास-सम्मत नहीं जैसा कि पदाभिव्यक्ति से आभासित होता है। यदि प्राप्त इतिहासानुकूल] राणा विक्रमाजीत ने यंत्रणाएं दीं और लौटाने का प्रयत्न राणा उदयसिंह ने किया। पद से आभासित भावना इसके विरुद्ध ही पड़ती है क्योंकि पदाभिव्यक्ति से यही स्पष्ट होता है कि मीराँ के जाते ही जाते उनको यंत्रणा देने वाले राणा पश्चाताप से भर उठे अतएव मीराँ को लौटाने के लिये उत्सुक हैं। तब यह राणा कौन थे जिन्होंने मीराँ को जहर दिया, सेल से मारने को उद्यत हुए और अब मीराँ की महत्ता को समझ पश्चाताप से भर उनको लौटाने को उत्सुक हैं?

पद की अंतिम दोनों पंक्तियाँ शेष पद से कुछ भिन्न सी प्रतीत होती हैं।

"राती माती प्रेम की, विष भगत को मोड़।
राम अमल माती रहे, धन मीराँ राठोड़।"

अपनी सुध-बुध भूलकर मीराँ कृष्ण-प्रेम में रंगी हुई हैं। भक्तों का 'मोड़', लौट जाना, बाधाओं के समक्ष सिर झुका देना ही इनके लिये विष स्वरूप है, उनका अन्त है। परन्तु 'राम' के 'अमल' नशे से मतवाली बनी 'मीराँ राठोड़' धन्य हैं। मारवाड़ी में 'धन' शब्द का अर्थ पत्नी भी होता है। श्री परशुराम जी ने अपनी टिप्पणी के अन्तर्गत इस शब्द के दोनों ही अर्थ दिये हैं। तथापि पत्नी अर्थ यहाँ सार्थक नहीं प्रतीत होता अतएव "धन मीराँ राठोड़" से व्यक्त होने वाला भाव यही प्रतीत होता है कि मीराँ राठोड़ धन्य है। अपने ही लिये मीराँ 'धन मीराँ राठोड़'

जैसी दर्प-भरी उक्ति करें, यह भी सर्वथा अस्वाभाविक ही है। फिर 'मीराँ राठोड़' का प्रयोग भी आश्चर्यजनक है। मीराँ का विवाह सिसोदिया वंश में हुआ है वे 'राठोड़' नहीं कहलां सकतीं। "म्हाँरे कुण राणे कुण राव" जैसी अभिव्यक्ति करने वाली, 'राम अमल माती' मीराँ के लिये 'राठोड़' की महत्ता ही क्या? इस पंक्ति के क्रिया पद भी अन्य पुरुष-वाचक ही हैं। सम्भव है कि उपर्युक्त दोनों पंक्तियाँ मीराँ के प्रति भक्त की श्रद्धान्जलि ही हो, या 'मुरड़ चली राठोड़' जैसे पदाँश से तुक मिलाने के लोभ में 'धन मीराँ राठोड़' जैसी अभिव्यक्ति कर दी गयी हो।

उपर्युक्त पद में एक और भी पंक्ति ऐसी है जिसमें क्रिया-पद अन्य पुरुष-वाचक है। 'विष को प्यालो पी गई, भजन करे उस ठौर' इस पंक्ति में व्यवहृत क्रिया-पद और 'उस ठौर' अभिव्यक्ति (expression) विशेष विचारणीय है। विष के प्याले को पीकर भी उस स्थान में (उस ठौर) भजन करती रहीं। महलों में रहने वाली मीराँ अन्यत्र किस ओर इशारा कर रही हैं? क्या यह पद महलों को छोड़ने के बाद का ही है? परन्तु आगे की पदाभिव्यक्ति से तो यही स्पष्ट होता है कि मीराँ ने अभी घर छोड़ा नहीं है, अपितु घर छोड़ने का प्रयास भी बाद में ही करती हैं। उपर्युक्त पंक्ति के पहले और पीछे की पंक्तियों पर ध्यान देने पर यह पंक्ति निरर्थक पुनरावृति मात्र ही ठहरती है। सम्भव है कि कालान्तर में उपर्युक्त पंक्ति भी शष पद में जुड़ गयी हो।

पद से लक्षित होने वाली विभिन्न घटनाओं के बारे में प्राप्त इतिहास या तो सर्वथा मौन है या अनिश्चित है। इन घटनाओं की छानबीन और विवेचना के आधार पर इतिहास को पुष्ट

बनाना और एक प्रामाणिक पद-संग्रह तय्यार करना संभव हो सकेगा।

"इण सरवरियारी पाल मीराँ पड़ी वारणे"

(वही-पद १२०)

ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण पदों में उपर्युक्त पद भी अपना विशिष्ट स्थान रखता है। 'सरवर' के किनारे मीराँ तैर रही हैं। 'सापड़े' तैर कर स्नान करती हैं। स्नानादि से निवृत्त हो मीराँ सूर्य-पूजा में संलग्न होती हैं। सहसा कोई अपरिचित व्यक्ति न जाने कहाँ से आकर मीराँ के 'होय बिरंगी नार, डगरा बीच क्यूं खड़ी' जैसा अटपटा प्रश्न करता है। आगन्तुक के प्रश्न से स्पष्ट है कि मीराँ राजदरबार की समस्त शान-शौकत को छोड़-कर अकेली ही खड़ी हैं। 'हे स्त्री तू यहाँ रास्ते बीच उदास और अस्त व्यस्त (बिरंगी) क्यों खड़ी है? क्या तेरा पीहर दूर है या घर में सास से झगड़ा हुआ है?' प्रस्तुत प्रश्न और उत्तर दोनों से ही मीराँ की मनःस्थिति भी सुस्पष्ट हो उठती है। 'तुझ गंवार को मेरी क्या चिन्ता है, तू अपने रास्ते जा। मेरे गुरु तो 'हीरारां पारखी' हैं जिनका आदेश है 'संगत कर साधरी।' 'हे मुकुन्द तुम्हारे ही कारण लोक लाज को खोकर तुम्हारे ही पद में पड़ी हुई हूं, अब तो शीघ्र ही सम्हाल लो।' स्पष्ट ही पद में संगति का अभाव है। स्पष्ट है कि मीराँ राजपरिवारोचित शान-शौकत के साथ सैर करने नहीं आयी हैं, कदाचित घर छोड़ कर ही आयी हैं, वे एकाकिनी हैं, उदास हैं और अस्तव्यस्त हैं, 'बिरंगी' स्थिति में खड़ी हैं। यहाँ तक कि किसी अपरिचित के लिये यह पहचानना भी

सम्भव नहीं कि ये ही राव दूदा जी की प्रिय पौत्री मेड़ते की राजकुमारी व चित्तौड़ राजपरिवार की वही बहू हैं जो किसी समय राजमहिषी के पद को अलंकृत करने वाली थीं। आगन्तुक का प्रश्न जितना सहज है उतना ही कटु है, मीराँ का उत्तर। 'सरवर' के किनारे खड़ी 'बिरंगी नार' मीराँ अपरिचित के प्रश्न पर तुनुक उठती हैं, उसको चले जाने का आदेश करती हैं, "चलो जारे असल गंवार, तने मेरी के पड़ी" परन्तु उसके बाद ही सहसा गुरु की महत्ता का वर्णन व उनके द्वारा दिये गये ज्ञान की व्याख्या बहुत ही असंगत ठहरती है। इस असंगत अभिव्यक्ति के बाद ही 'खोई कुल की लाज मुकुन्द थारे कारणे, वेगि लीजो सम्हाल, मीराँ पड़ी वारणे' जैसी करुण पुकार है। मीराँ अतीत की दुहाई देते हुए मुकुन्द के शरणापन्न होती हैं। यह और भी रहस्यमय प्रतीत होता है। यह अपरिचित कौन था? क्या यही मीराँ के गुरु संत रैदास वा कोई अन्य थे जिन्होंने साधु-संगत का उपदेश देकर मीराँ को कृतार्थ किया था। पद के पूर्वांश और उत्तरांश से मीराँ की स्थिति का बहुत ही स्पष्ट चित्र मिलता है। अस्त व्यस्त उदास मीराँ 'सरवर' के किनारे एकाकिनी खड़ी हैं। मीराँ के जीवन में ऐसा भी कोई अवसर आया था इसका पता प्राप्त इतिहास से नहीं चलता। श्री मेकालिफ ने मीराँ द्वारा आत्म हत्या के प्रयास किये जाने की चर्चा की है, तथापि वह कथन युक्तिपूर्ण नहीं प्रतीत होता।

इस भाव का द्योतक यही एक पद सभी पद-संग्रहों में करीब करीब इसी रूप में मिलता है। राजस्थानी लोकगीतों में इस पद के निम्नाँकित दो और भी पाठ मिलते हैं।

१—ऊभी मीराँ सरवरियाँ री पाल।
मन में तो आमण दूमणी।
भर भर धोबा धोए नैन, साधां रे संग जोवती।
तू छे ए मीराँ भले घररी नार, गेले बीच क्यूं खड़ी ?
के थांरो पियो परदेस, के तेरी सासू लड़ी।
चल्यो जारे असल गंवार तने मेरी के पड़ी।
चल्यो जारे असल गंवार तने मीराँ की के पड़ी।
म्हाँरे हर गया बनवास ने, संदेशा ओ हर ने ज्यूं खड़ी।
पोवे मीराँ मोतीड़ाँरो हार, हीरा री राखड़ी।
राधा रुक्मण को नोसर हार, किसन जी री राखड़ी।
ऊड़ जा ऊड़ जा सरवरियाँ रा हंस ओ
सुरंगी थांरी पाँखड़ी।
कद आसी गोपियाँ वालो कान्ह
फरूंखे बाई आँखड़ी।
सतगुरु मिलिया चतुर सुजान
हीराँरा कहिये पारखी।

'आमण दूमणी' द्विधाग्रस्त अनिश्चित और दुखमय परिस्थिति। 'जोवति' पूर्व निर्धारित स्थान और समय पर किसी की प्रतिक्षा करना। इन दोनों मारवाड़ी उक्तियों से आभासित होता अर्थ विशेष महत्व रखता है।

मीराँ ने किसी को बुलाया है और उसकी बाट 'जोवतीं' हैं। 'आमण दूमणी' जैसी अभिव्यक्ति मीराँ की मानसिक परिस्थिति का बहुत ही सजीव चित्र उपस्थित करती हैं। अनिश्चित और द्विधाग्रस्त मीराँ

उदास होकर किसी की राह देखती हुई बार बार आँखें धो रही हैं। सहसा ही एक आगन्तुक-प्रश्न कर उठता है, "तू छे ए मीराँ भले घर की नार, गेले बीच क्यों खड़ी ?" और मीराँ का उत्तर क्रोधावेश व कटुता से परिपूर्ण है। ऐसा प्रतीत होता है कि अपनी इस नाजुक परिस्थिति में मीराँ राजपरिवारोचित मर्यादापूर्ण व्यवहार को तो भूल ही जाती हैं, साथ ही साथ साधारण मानवता को भी खो देती हैं अन्यथा आगन्तुक द्वारा किये गये अति सहज और साधारण प्रश्न का ऐसा कटु उत्तर 'चलो जा रे असल गंवार, तने मेरी के पड़ी' क्योंकर दे सकती थी ? इसके बाद की ही पंक्ति से व्यक्त भावना समस्या को और भी उलझा देती है। मीराँ के आराध्य 'बनवास' के लिये गये हैं और मीराँ 'सरवरियारी पाल' 'हर' का संदेश पाने की आशा में खड़ी है। पद की अंतिम कड़ी की पहली पंक्ति से ही यह स्पष्ट हो उठता है कि मीराँ अभी तक अनिश्चित ही हैं वे अभी संदेशा ही भेज रही हैं, साथ ही 'फरूखे बाँई आँखड़ी', जैसे सगुन के कारण आशान्वित हो रहीं हैं। एकाएक ही मीराँ की नाराजगी खत्म हो जाती है और वे अपने 'चतुर सुजान' 'सदगुरू' की 'हीराँरा पारखी' कहकर प्रशंसा करने लगती हैं। उपर्युक्त परिस्थिति के कारण ऐसा ही प्रतीत होता है कि शायद यह आगन्तुक ही मीराँ के गुरू 'रैंदास संत' हैं।

इसी पद का एक और रूपान्तर भी मिलता है। इस रूपान्तर से भी उपर्युक्त भावनाओं की ही पुष्टि होती है। अपने आराध्य का संदेशा पाने की ही आशा में मीराँ 'इन सरवरियारी पाल ऊभी' हैं यह भावना इस पद से बहुत अधिक स्पष्ट हो उठती है। पद निम्नांकित है।

ऊभी मीराँ सरवरियाँ री पाल
उदासी मीराँ क्यूं खड़ी
थे छो भले घर की नार
के थांरो पिया, दूर काँई ओ थाने सास लड़ी
ना म्हाराँ पिया दूर ना सास लड़ी
जा, न, जा असल गंवार
मीराँ की तने के पड़ी
आज म्हाँरा हर गया बनवास ने
संदेशा ल्यूं खड़ी
गया है तो मीराँ जान भी द्यो
थांरो काँई ओ ले गया गोपाल
ले गया ले गया म्हाँरा हर जी सोलह सिंगार
ढक गया प्रभु जी सजन किवाड़
ताला जड़ कूंची ले गया
कद म्हाँरा प्रभु जी आवे बनवास
संदेशा ल्यूं खड़ी
उड़ जा उड़ जा सरवरिया रा हंस
सोने में गढ़ा द्यूं थाँरी चाँच, रूपे में थांरी पाँखड़ी।
मीराँ पोवै मोतीड़ाँरो हार, भल गूंथे राखड़ी
फरूंखे म्हाँरी आखड़ी।
आज म्हाँरा प्रभु जी आया बनवास
फरूंखे म्हाँरी आखड़ी

इस पद के उपर्युक्त तीनों ही रूपान्तरों से ऐसा ही आभासित होता है कि महलों में रहने वाली मीराँ इस कठोर यात्रा को प्रारंभ

करने के पूर्व अपनी यात्रा के सहायक और पथ प्रदर्शक अपने सद-गुरु 'रैदास संत' की प्रतीक्षा में अधीर हैं। ज्यों ज्यों संदेश-वाहक के आने में देर होती जाती है त्यों त्यों मीराँ की अधीरता झुंझलाहट में परिणति होती जाती है यहाँ तक कि वे आगन्तुक को जो शायद 'संत रैदास' थे पहचानती भी नहीं, पर तभी शायद आगंन्तुक से ही उनका परिचय पाकर उनको गुरु पदोचित सम्मान देती हैं। अद्यावधि प्राप्त इतिहास में इस या ऐसी किसी अन्य घटना का कोई वर्णन नहीं।

अपूर्ण या मिश्रित पद

मीराँ के कुछ पद ऐसे भी मिलते हैं जिनकी अभिव्यक्ति के आधार पर उन्हें अपूर्ण या मिश्रित कहा जा सकता है। मीराँ से अलंकृत होने का सौभाग्य राजस्थान को ही प्राप्त हुआ, अतएव राजस्थानी लोकगीत मीराँ के पदों के संग्रह का एक महत्वपूर्ण आधार हैं। तथापि, राजस्थानी भाषा और रीति-नीति के एक विशेष सम्प्रदाय तक सीमित रहने के कारण पद संकलन का यह दुरूह कार्य और भी दुरूह हो उठा। लोक-गीतों के आधार पर सम्पादित किसी भी संग्रह को निश्चित रूपेण प्रामाणिक या प्रक्षिप्त कहना वर्तमान स्थिति में असम्भव ही. है। प्रत्येक संग्रह-कर्त्ता ने अपनी सूझ-बूझ और रुचि के अनुसार ही पदों का संकलन किया है अतएव कोई संग्रह किसी अन्य संग्रह से पूर्णतः नहीं मिलता। तथापि प्रत्येक संग्रह में ऐसे कुछ पद

मिलते हैं जिनको, अभिव्यक्ति के आधार पर अपूर्ण या मिश्रित कहा जा सकता है। सम्भव है कि ऐसे कुछ पदों में अर्थ-संगति के लिये आवश्यक पंक्तियाँ काल के गर्भ में समा गयी हों, सम्भव है कि श्रद्धातिरेक में कुछ अनावश्यक पंक्तियाँ श्रद्धालु भक्तों द्वारा जुड़ा दी गयी हों। अधिक सम्भव है कि आम जनता द्वारा गाये जाने के कारण मीराँ के पदों के ही विभिन्न पदाँश एक साथ जुड़ कर कालान्तर में कुछ हेर-फेर के साथ एक स्वतंत्र पद के रूप में चल पड़े हों। ऐसे पदों की विवेचना होने पर शायद मीराँ के पदों की प्रामाणिक प्रति तैयार करने में बड़ी सहायता मिले।

१—तू मत बरजै माइड़ी..........अपनी कर लीजै।

('मीराँ बाई की पदावली'-पद २८)

इस पद में आभासित होता है कि मीराँ का कृष्ण-प्रेम और साधु-संतों का अत्यधिक सत्कार वंश-परम्परा के विरुद्ध पड़ता है। अतएव मीराँ की माता उसका विरोध करती हैं। पद की प्रथम दो पंक्तियों में मीराँ माता के द्वारा किये गये विरोध का जबाब देती हैं। पद के उत्तरार्ध में माँ की विरोध-भावना उत्सुकता में परिणित होती प्रतीत होती है। साधु-दर्शनों के विरोध से अधिक जिज्ञासा और आग्रह है मीराँ के दर्द के रहस्य को जानने के लिये। समस्त सुखों की सामग्री के प्रस्तुत रहने पर भी मीराँ, किस दर्द से व्याकुल हो वैभव जनित सम्पूर्ण सुख-सुविधाओं को तिलाञ्जलि देकर रात रात भर तड़पती रह जाती हैं। मीराँ के तड़पने से दुखित माँ घबड़ाकर पूछ बैठती है, "लोक सोवै सुख नीदड़ी, थे क्यू रैणज भूली ?" "ज्याँ के हृदय हरि बसे, त्याँकू नीद न आवै", जैसा करुण और रहस्य-ओतप्रोत

छोटा सा जवाब है मीरां का। अपने आराध्य की महत्ता और संसार की निस्सारता का दिग्दर्शन कराती हुई मीरां एकाएक ही कह बैठती हैं, "मीरां व्याकुल विरहणी अपणी कर लीजै।" निश्चित ही यह उक्ति माँ के प्रति नहीं हो सकती। संभव है कि उपर्युक्त पंक्ति किसी अन्य पद से इसमें जोड़ दी गई हो। सम्भव है कि इस पद की ऐसी कुछ पंक्तियाँ जिनसे उपर्युक्त पंक्तियों की अर्थ-संगति स्पष्ट हो सकती थी, काल के गर्भ में समा गयी हों। सम्पूर्ण पद में सामंजस्य का अभाव स्पष्ट हो उठता है। पद का प्रारम्भ होता है, साधु-संतों के दर्शनों के विरोध से तब एकाएक ही पुत्री के दर्द के कारण को जानने के लिये माँ व्यग्र हो उठती है। पद का अन्त होता है मीरां की करुण अभिव्यक्ति से। शृंखला की कड़ियाँ टूटी सी जान पड़ती हैं।

यहाँ एक और बात भी ध्यान देने योग्य है। अपने अध्ययन के लिये मैंने मीरां के पदों के विभिन्न संग्रहों को देखने का प्रयत्न किया और, लगभग तीस विभिन्न संग्रहों में से करीब २० संग्रह देखने में सफल हो सकी हूं। इन सभी प्राप्त संग्रहों में उपर्युक्त पद एक ही रूप में पाया जाता है। तथापि प्रायः सभी विद्वानों की सम्मति है कि मीरां को छोटी वयस में ही मातृ वियोग का दुख झेलना पड़ा था। अतएव इस पद को संग्रहों में स्थान देने के पूर्व मीरां की माता के निधन के प्रश्न पर ऐतिहासिक दृष्टि-कोण से विचार करना उपयोगी होगा।

(देखें—'मीरां के संदिग्ध-सम्बन्धी'।)

२—'करुणा सुणि स्याम मोरी, मिटि गई फेरा फरी'

(वही-पद ९४)

इस पद में भी सामंजस्य का अभाव है। 'स्याम' को 'राम' भी सम्बोधित किया गया है। 'अजहूं न मिलिया राम अविनासी, बन बन बीच फिरूंरी", यहाँ 'श्याम' के बदले 'राम' का प्रयोग मात्र लय को बनाये रखने के प्रयास में ही हुआ हो ऐसा प्रतीत होता है। मीराँ के पद कवयित्री की रचना नहीं अपितु विभिन्न मन:स्थिति में व्यक्त किये गये भावोद्‌गार मात्र हैं, अतएव छन्द को बनाये रखने के लिये ही अनन्य भक्त मीराँ द्वारा अपने आराध्य का किसी अन्य नाम से सम्बोधित किया जाना असंगत ही ठहरता है।

सम्पूर्ण पदाभिव्यक्ति और अन्तिम दोनों पंक्तियों की अभिव्यक्तियों में भी गहरा अन्तर है। "अजहूं न मिल्या राम अविनासी, बन बन बीच फिरूं री, रोऊं नित टेरी टेरी" के बाद एकाएक ही 'जन मीराँ को गिरधर मिलिया', असंगत ही ठहरता है। सम्पूर्ण पद से एक गहरी विरह-वेदना व्यक्त होती है। जब कि अंतिम दोनों पंक्तियों से मिलन का आनन्द ही व्यक्त होता है। दोनों अभिव्यक्तियाँ एक दूसरे के अनुकूल नहीं हैं। सम्भव है बीच की ऐसी कुछ पंक्तियाँ जिनसे इस भाव परिवर्तन के कारण पर प्रकाश पड़ सकता था, छूट गईं हों। सम्भव है कि उपर्युक्त दोनों पंक्तियाँ किसी अन्य पद की हों वा शायद प्रक्षिप्त भी हों।

'जन मीराँ' का प्रयोग भी विशेष ध्यान देने योग्य है। अधिकाँश पदों में मीराँ और कुछ में 'मीराँ दासी' का ही प्रयोग मिलता है। केवल तीन निम्नांकित पद ऐसे मिलते हैं जिनमें, जन मीराँ' का प्रयोग हुआ है।

(१) 'जन मीराँ को राखज्यों, कोई बाँह गहे की लाज',
(पद ४२,)

(२) 'जन मीराँ सतगुरू के शरणे, जीव परम पद पावै'
(पद १६०,)

(३) 'जन मीराँ गिरधर के ऊपर, सदके करूं शरीर'
(पद १९१ ।)

प्रथम पद तो अपनी भिव्यक्ति के आधार पर ही प्रक्षिप्त सा प्रतीत होता है। अपने पूर्व लेख 'कुछ पदों पर विचार' में इस पद पर मैंने अपना विचार प्रकट किया है। तृतीय पद १९१ में पंजाबी प्रभाव स्पष्ट ही है। यह पद भी प्रक्षिप्त ही प्रतीत होता है। (देखें फुटकर पदों पर विचार) 'जन मीराँ' और 'मीराँ दासी' प्रयोग की प्रामाणिकता विचारणीय है।

३—म्हारे जन्म मरण रो साथी....हरि चरण चित राती
(वही-पद १०६)

यह पद स्पष्ट ही तीन भागों में व्यक्त किया जा सकता है। "म्हारो जन्म मरण रो साथी....रोय रोय अंखियाँराती" प्रथमाँश में गहरी वेदना के साथ ही साथ प्रबल दृढ़ता भी व्यक्त होती है। "यो संसार सकल जग झूठो आकुंश दे समझाती" इस द्वितीय अंश से संसार की निस्सारता, मानव-हृदय की दुर्बलता और गुरू की महत्ता ही चित्रित होती है। "पल पल तेरा रूप निहारूं....हरि चरणाँ चित राती" इस तृतीय अंश में दृढ़ता के साथ ही साथ मिलन और आनन्द की भी अभिव्यक्ति है। तीनों अभिव्यक्तियों में संगति का अभाव ही प्रतीत होता है। प्रथम अभिव्यक्ति, "तुम देख्या बिन कल न परत है" का खन्डन

हो जाता है "पल पल तेरो रूप निहारूं" जैसी अंतिम अभिव्यक्ति से। इन परस्पर विरोधी और असंगत जंचनेवाली अभिव्यक्तियों के कारण ऐसा अनुमान होता है कि विभिन्न पदाँशों के सम्मिश्रण से इस पद की रचना हुई है।

४–"म्हांरी सुधज्यूं जानो ज्यूं लिजोजी हरि चरणा चित दीजोजी"
(वही-पद ११२)

उल्लिखित पद की तरह ही उपर्युक्त पद में भी कई भावों का सम्मिश्रण हुआ है। आराध्य का विरह, सतगुरू की महिमा, अपनी हीनता आदि विभिन्न भावों के साथ अंतिम पंक्ति के अर्धांश में "हरिचरणाँ चित दीजोजी" जैसा उपदेश भी है। "पल पलभीतर पंथ निहारूं, दरसण म्हाने दीजोजी" से यही स्पष्ट होता है कि मीराँ के आराध्य उनसे दूर ही है, तथापि "मिल बिछुरन मत कीजोजी" से लक्षित अर्थ यही है कि मीराँ अपने आराध्य से 'बिछुरन' न करने की प्रार्थना कर रही हैं। अंतिम पंक्ति सम्पूर्ण पद से ही भिन्न पड़ती है। "मीराँ तो सतगुरू जी के सरणे, हरि चरणा चित दीजोजी" इस पंक्ति के दोनों अर्धांशों में भी संगति बैठना संभव नहीं रह जाता और संगति-युक्त अर्थ करने पर मीराँ के 'सत्गुरू' को लेकर गहरी समस्या उपस्थित होती है क्योंकि वैसी परिस्थिति में अभिव्यक्ति के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि मीराँ के 'सत्गुरू' व 'हरि' दो विभिन्न हस्तियाँ हैं।

इन असंगत अभिव्यक्तियों के कारण यही अधिक संभव प्रतीत होता है कि विभिन्न पदाँशों का सम्मिश्रण इस पद में भी हुआ है।

५—"पिया मोहि दरसण दीजो हो.....दरसण कब होसी ।"
(वही,-पद ११६ ।)

राजस्थान को ही मीराँ से विभूषित होने का गौरव प्राप्त हुआ है,अतएव राजस्थान के लोकगीत मीराँ के पदों को संकलित करने के महत्वपूर्ण आधार हैं । ऐसी स्थिति में राजस्थान में प्रचलित कुछ अन्य लोकगीतों या उनके पदाँशों का मीराँ के पदों में मिलकर चल निकलना अस्वाभाविक नहीं । राजस्थान में 'बारहमासा' के नाम से उपयुक्त पद-शैली के गीतों का बहुत प्रचार है । ऋतु-वर्णन के बहाने विरहणी द्वारा अपनी वेदना का वर्णन ही ऐसे पदों की थीम होती है । मीराँ के अधिकाँश पदों से व्यक्त होने वाला प्रेम-गाम्भीर्य या गहरी वेदनाभिव्यक्ति भी इस पद में नहीं मिलती । यदि इस पद को मीराँ का मान भी लिया जाय तो 'देव काती (कार्तिक) में पूजिहे, मेरे तुम होई हो', जैसी अभिव्यक्ति विशेष ध्यान आकृष्ट करती है । विवाह के बाद, गृह-प्रवेश के अवसर पर ही जो बालिका, सम्पूर्ण समाज और अपने अतिशय प्रभावशाली कुल की 'अनदेव'-पूजा की परम्परागत रूढ़ि का विरोध कर स्वजनों की अप्रसन्नता भी कार करने को तत्पर हो उठी, जो कृष्ण-भक्ति और सत्संग-प्रेम के कारण चित्तौड़ के सम्पूर्ण वैभव की अवहेलना कर अपना सम्पूर्ण जीवन कटु संघर्ष में बदल डालने में भी नहीं हिचकी, वही अनन्य भक्त मीराँ, "काती (कार्तिक) में देव पूजि है, मेरे तुम होई हो" जैसी करुणा प्रार्थना किस अन्य 'देव' के प्रति करती है ? 'गुरू-गोविन्द री आण' लेकर मीराँ कहती है :—

"नहिं म्हें पूज्या गोरज्याजी, नहिं पूजा अनदेव।
परम सनेही गोविन्दो, थे काँई जाणो म्हारो भेव।"
(वही-पद २९)

परन्तु अब वे 'देव' पूजने को तत्पर हो रही हैं। किस अन्य-देव को अपनी पूजा से प्रसन्न कर अपने 'प्रभु'स्वयं 'हरि अविनासी' को वरदान रूप में चाह रहीं हैं? मीराँ के सम्पूर्ण जीवन से दृढ़ता और एकनिष्ठा ही झलकती है। कहीं से भी कोई विरोधाभास की अभिव्यक्ति नहीं। अपने सिद्धान्तों से आजीवन तिल भर भी विचलित न होने वाली मीराँ अपने पदों में विरोधाभिव्यक्ति करे, यह असंगत ही ठहरता है।

इस पद की एक अन्य पंक्ति, 'पोस मही पाला[1] घणाँ, अब ही तुम न्हालो जी' भी विशेष ध्यान आकर्षित करती है। उपर्युक्त पंक्ति से आभासित होने वाला भाव यही है कि 'पोस' में बहुत बहुत गहरा कुहासा है, अतएव तुम अभी स्नान कर लो। स्पष्ट ही, कथन अर्थहीन है। ऐसी असंगत व अर्थहीन अभिव्यक्तियों के कारण पद की प्रामाणिकता पर संदेह होने लगता है। पद की अंतिम दोनों पंक्तियों की अभिव्यक्ति और शैली में तथा मीराँ के अन्य पदों की अभिव्यक्ति और शैली में गहरा साम्य है। 'दरसण' के लिये 'व्याकुल' मीराँ कई बार पिंडत जोशी" की 'सरण' ले चुकी हैं, कई बार 'काग' उड़ा चुकी हैं। उड़ते हुए काग के प्रति 'काग' के प्रति मीराँ का आदेश है, "काढ़ि कलेजो मे धरूं, कौवा तूं ले जाई। ज्यों देसाँ म्हाँरो

१ पाला=गहरा कुहासा।

पिव बसे (सजनी) वे देखे तू खाई ।" शायद उपर्युक्त अभिव्यक्ति को पढ़ कर करुणा भी करुणामय हो उठे ।

'मीरां व्याकुल विरहणी' पदांश तो ज्यों का त्यों अन्य पदों में भी (पद ९६, ८७, ८४) मिलता है । सम्भव है कि उपर्युक्त पद भी जन-प्रिय लोकगीत ('बारहमासा') और मीरां के पदांशों का सम्मिश्रण हो ।

पारस्परिक विरोध द्योतक पद

मीरां के कुछ अन्य पदों में विरोधाभिव्यक्ति मिलती है । अपने लक्ष्य को लेकर मीरां कहीं भी द्वन्द-ग्रस्त रही हों, ऐसा मानने का कोई उपयुक्त आधार नहीं मिलता । इसके विरुद्ध जीवन और पदों की अभिव्यक्ति से उनकी सुनिश्चित दृढ़ता ही स्पष्ट हो उठती है । 'जोगण होय जुग ढूंढसूं रे म्हांरे रावलियारी साथ', जैसे अपने सुदृढ़ निश्चय के कारण मीरां जीवन-पर्यन्त कठोर संघर्ष करती रहीं । सुख-सुविधाओं और धन-वैभव के बीच जन्म लेने वाली मीरां अपने लक्ष्य प्राप्ति के हेतु सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को 'तजि बटुक की नाईं' चल देती हैं, ऐसी सुदृढ़ मीरां अपने ही लिये विरोधाभिव्यक्ति क्योंकर करतीं ? कथनोपकथन की शैली में लिखे गये पदों में मीरां कहतीं हैं:—

'म्हांने गुरु गोविन्द री आण, गोरल नहीं पूजां'

(वही-पद २९)

और फिर एक बार गा उठतीं हैं ।

'रे सांवलियां म्हांरे आज रंगीली गणगोर छै जी'

(वही,-पद १४३ ।)

'गुरू' और 'गोविन्द' री आण' लेकर 'गोरल' पूंजा का विरोध करने वाली मीराँ सहसा 'गणगोर' का उत्सव मनाने को कितनी अत्यधिक उत्सुक हो उठीं हैं ? क्या सहसा ही मीराँ के जीवन में कोई गहरा अन्तर आ गया है ?

कुछ अन्य पदों से भी यही साबित होता है कि मीराँ के जीवन में जरूर कोई गहरा अन्तर आया है। जहाँ एक बार वे 'होली' और 'सावन' के अवसर पर दुखी हैं, वहीं दूसरी बार उन्हीं उत्सवों को मनाने में मग्न हैं[१]।

१–'भीजे म्हाँरो दाँवन चीर, सावरियो लूम रहियो रे।'
(वही-पद १२३)

२–'मतवारो बादर आये रे, हरि को संदेशो कबहु न लाये रे।'
(वही-पद ८१)

३–"किन संग खेलूं होली, पिया तज गये हैं अकेली।"
(वही-पद ८०)

४–"होली पिया बिन मोहे न भावे, घर आँगण नहिं सुहावे।"
(वही-पद ७९)

उपर्युक्त अभिव्यक्तियों से यही सुस्पष्ट हो उठता हैं कि विरहिणी मीराँ को अपने आराध्य के वियोग में कुछ भी नहीं भाता।

१—राजस्थान मरूभूमि होने के कारण यहाँ सावन (श्रावण) का महीना बहुत ही महत्वपूर्ण समझा जाता है क्योंकि इन्हीं दिनों में यहाँ मामूली सी वर्षा व खेतीबारी भी होती है। वैसे तो हिन्दू मात्र ही श्रावण को बहुत शुभ और महत्वपूर्ण मास मानते हैं।

१–"सावन दे रह्यो जोरा रे, घर आयो जी स्याम मोरा रे।"

(वही-पद १४५।)

२–"बादला रे जल भरि ले आयो

सेज संवारि पिय घर आये, हिल मिल मंगल गायो।"

(वही-पद १४७।)

३–"रंग भरी,रंग भरी, रंग सूं भरी रे, होली आयी प्यारी रंग सूं भरी रे"

(वही-पद १४६।)

उपर्युक्त अभिव्यक्तियों से स्पष्ट है कि मीराँ आनन्दमय हैं इस आनन्द का कारण भी स्वयं मीराँ के शब्दों से ही स्पष्ट हो उठता है।

"म्हाँरा ओलगिया घर आया जी

तन की ताप मिटी सुख पाया, हिल मिल मंगल गाया जी"

(वही-पद १५०।)

और भी

"सहेलियाँ साजन घरि आया हो

बहोत दिना की जोवति, विरहिणी पिव पाया हो"

(वही-पद १४८।)

निश्चित है कि, जीवन में आये गहरे परिवर्तन के कारण ही, अभिव्यक्तियों में भी इतना गहरा अन्तर संभव हुआ है।

तथाकथित मीराँ की अधिकाँश पदाभिव्यक्तियों से यही सुस्पष्ट हो उठता है कि मीराँ नाथ-पंथानुकूल जोगी वेशभूषा से बिभूषित अपने 'साहिब' की 'रीझ' के अनुकूल स्वयं भी जोगी वेश-भूषा धारणकर, 'जोगण' बनकर 'घर घर अलख' जगाने को

अत्यधिक उत्सुक हैं तथापि कुछ अन्य पदों की अभिव्यक्ति से ऐसा प्रतीत होता है कि मीरां उसी 'हठयोगी' जोगी साधना-प्रणाली का ही गहरा विरोध करती हैं। इतना ही नहीं, अपितु

'जोगी होय जुगति नहिं जाणी, उलटि जनम फिर आसी'

जैसी स्पष्ट अपितु कठोर अभिव्यक्ति भी करती हैं–

'मन की मैल हियते न छूटी, दियो तिलक सिर धोय
दास मीरां लाल गिरधर, सहज कर वैराग'

(वही-पद १६२।)

या

'कहा भयो तीरथ व्रत कीने, कहा लिये करवत काशी
कहा भयो है भगवा पहर्यां, घर तज भये संन्यासी
जोगी होय जुगति नहिं जाणी, उलटि जनम फिर आसी'

(वही-पद १९४)

उपर्युक्त अभिव्यक्तियों से तो मीरां का अतिशय द्वन्द-ग्रस्त होना ही प्रमाणित होता है क्या ऐसा सम्भव है ? "लियो तराजू तौल" जैसी निश्चयात्मक सुदृढ़ अनुभूति वाली मीरां जोगी-वेश के अपनाने के बारे में इतनी अनिश्चित क्यों ? मीरां के जीवन-तथ्य को जानने के लिये ऐसी शंका उत्पन्न करने वाले इन पदों का विवेचन एक बार फिर से होना आवश्यक प्रतीत होता है।

ऐसे विरोध-द्योतक अधिकांश पदों की अन्तिम पंक्ति में "मीरां दासी" या "दासी मीरां" का ही प्रयोग हुआ है। ऐसे प्रयोग-युक्त पद विशेष विचारणीय हैं।

इनमें से अधिकांश पद व्रजभाषा में हैं। व्रजभाषा में प्राप्त

इन पदों में कुछ पर कबीर या संतमत का प्रभाव स्पष्ट हो उठता है तो अन्य पदों पर ब्रजभाषा-साहित्य की लिखित परम्परा का गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है ।

कबीर साम्यद्योतक कुछ पदः–

१–"मैं गिरधर रंग राती
पचरंग चोला पहर सखी, में झिरमिट खेलन जाती ।"
(वही-पद २०)

२–"मैं अपणे सैया संग साँची
अब काहे की लाज सजनी, परगट ह्वै नाची"
(वही-पद २२)

३–"मैं तो तेरी सरण परी रे रामा, ज्यूं जाणे त्यूं तार
अड़सठ तीरथ भ्रमि भ्रमि आयो, मन नाहीं मानी हार"
(वही-पद १३१)

४–"यहि बिधि भक्ति कैसे होय
मन की मैल हिय तें न छूटी, दियो तिलक सिर धोय"
(वही-पद १६२)

५–"नहिं ऐसो जनम बार बार
का जानूं कछु पुण्य प्रगटे, मानुसा अवतार"
(वही-पज १९५)

६–"लगी मोहिं राम खुमारी हो ।
रमझम बरसे मेहड़ा, भीजै तन सारी हो ।"
(वही-पद १५८)

७–"माई मेरो मोहन मन हर्यो ।

कहा करूं कित जाऊं सजनी, प्रान पुरुस सूं बर्‌यो।"
(वही-पद १७४)

निम्नाँकित कुछ पदों से ब्रजभाषा-साहित्य की लिखित परम्परा का प्रभाव स्पष्ट हो उठता है।

१–"हरि तुम हरो जन की भीर
द्रोपदा की लाज राखी, तुरत बाढ़्यौ चीर"
(वही-पद ६३)

२–"हरि बिन कूण गती मेरी
तुम मेरे प्रतिपाल कहिये, मैं रावरी चेरी"
(वही-पद ६५।)

३–"हे मेरो मन मोहना
आयो नहीं सखीरी, हे मेरो मन मोहना
कैं कहुं काज किया संतन का, कै कहुं गैल भुलावना"
(वही-पद ८५।)

४–"प्रभु बिनि ना सरै माई
मेरा प्राण निकस्याँ जात, हरी बिन ना सरै माई"
(वही-पद ८९।)

५–"रावलो बिड़द मोहिं रूढ़ो लागे, पीड़ित पराये प्राण
सगो सनेही मेरो और न कोई, बैरी सकल जहान"
(वही-पद १३४।)

६–"पिया तेरे नाम लुभाणी हो
नाम लेत तिरता सुण्या, जैसे पाहण पाणी हो"
(वही-पद १३८।)

७–"सखीरी लाज वैरण भई
श्रीलाल गोपाल के संग काहे नाहीं गई ।"
(वही-पद १८२।)

८–"कुण बाँचे पाती, बिना प्रभु कुण बाँचे पाती
कागद ले ऊधो जी आयो, कहाँ रह्या साथी"
(वही-पद पद १८६)

ब्रजभाषा और 'मीराँ-दासी' प्रयोग युक्त होने के कारण ऐसे अधिकाँश पदों की प्रामाणिकता में सहज ही संदेह होता है। (देखें 'ब्रजभाषा के कुछ पदों पर विचार')

राजस्थानी भाषा के कुछ पद

राजस्थानी भाषा मे प्राप्त तथा कथित मीराँ के पदों में कुछ पद ऐसे भी मिलते हैं जिनकी प्रामाणिकता में उनमें व्यवहृत प्रयोग विशेष के कारण ही संदेह होता है। ऐसे कुछ पदों की स्वतंत्र विवेचना ही उपयुक्त होगी।

'जोगी' अभिव्यक्ति और विरह वेदना से परिपूर्ण कुछ पद राजस्थानी भाषा में ऐसे भी पाये जाते हैं जिनमें 'मीराँ दासी' या 'दास मीराँ' का प्रयोग हुआ है।

१–"मीराँ दासी व्याकुल रे, पिव पिव करत विहाल"
(वही-पद ८४।)

२–"मीराँ दासी जनम जनम की, परी तुम्हारे पाय"
(वही-पद १०१।)

३–"मीराँ दासी जनम जनम की, अंग से अंग लगावो हो"
(वही-पद १०४।)

४–'मीराँ दासी तुम चरनण की, बार बार बलिहारी'
(वही-पद ११४।)

५–'दास मीराँ राम भजि के, तन मन कीन्हौ पेस'
(वही-पद ११८।)

६–"राणा जी म्हाँरी प्रीत पूरबली, मैं काई करूं
पेटिया बासक भेजिया जी, यो छै मोतीड़ारो हार।
मीराँ दासी राम की जी राम गरीब निवाज।
जन मीराँ को राखजो कोई बाँह गहे की लाज।"
(वही-पद ४२।)

उपर्युक्त प्रथम चार उद्धरणों में प्रयुक्त 'दासी' शब्द आराध्य के प्रति मीराँ की गहरी भक्ति का ही द्योतक है। पाँचवे उदाहरण में प्रयुक्त 'दासी मीराँ' शब्द प्रयोग अवश्य ही विचारणीय है। इस पद की शैली व अभिव्यक्ति आद्योपान्त मीराँ के अन्य राजस्थानी पदों की शैली व अभिव्यक्ति से सर्वथा मिलती है, केवल, अन्तिम पंक्ति में ही 'मीराँ के प्रभु गिरधर नागर' के बदले 'दासी मीराँ' का प्रयोग हुआ है। यद्यपि प्रमाणित संग्रह तैयार न होने तक निश्चित रुपेण कुछ भी कह सकना सम्भव नहीं तथापि उपर्युक्त तर्क के आधार पर अन्तिम पंक्ति ही प्रक्षिप्त प्रतीत होती है।

उदाहरण ६ में साँप भेजे जाने वाली जनश्रुति का वर्णन है अतएव इसकी प्रामाणिकता में सहज ही संदेह होता है। (घटना-द्योतक पद) यह संदेह और भी सबल हो उठता है जब कि हम देखते हैं कि इस पद की अंतिम दोनों पंक्तियों में क्रमशः 'मीराँ दासी' और 'जन मीराँ' दोनों का ही प्रयोग हुआ

है जैसा कि तथाकथित मीराँ के किसी अन्य पद में नहीं हुआ। दोनों प्रयोगों का साथ में व्यवहार अर्थहीन व असंगत ही प्रतीत होता है।

२—माई म्हाँरी हरिह न बूझी बात।
पिंड माँसूं प्राण पापी, निकसि क्यूं नहीं जात।
पाट न खोल्याँ मुखां न बोल्याँ, साँझ भई परभात।
अबोलणा जुग बीतण लागो, तो काहे की कुसलात।
सावण आवण कह गया रे, हरि आवण की आस।
रैण अंधेरी बीज चमकैं, तारा गिणत निरास।
लेइ कटारी कंठ सारू, मरूंगी विष खाइ।
मीराँ दासी राम राती, लालच रही ललचाइ।
(वही-पद ६८।)

'मीराँ दासी' प्रयोग वाले पदों में यह पद सर्वथा भिन्न पड़ता है। पद की भाषा राजस्थानी और पद की अभिव्यक्ति घटना प्रधान है। पदाभिव्यक्ति के अधाँश से सुस्पष्ट है कि मीराँ के आराध्य मीराँ के पास हैं तथापि नाराज हैं, वे उनसे बोलते तक नहीं, यहाँ तक कि 'बीज चमकै रैण अंधेरी' तो भी मीराँ को समझाते समझाते 'साँझ भई परभात' ऐसे 'अबोलणा' रहते हुए 'जुग बीतण लागो' अतएव निराश मीराँ अब आत्महत्या पर उतारू हैं।

'लेइ कटारी कंठ सारूं, मरूंगी विष खाइ।'

पद के मध्य में 'सावन आवन कह गया रे, हरि आवन की आस' जैसी अभिव्यक्ति से पहले पदाँश की अभिव्यक्ति निराधार हो जाती है। 'पाट न खोल्याँ मुखा न बोल्याँ साँझ भई परभात',

पदाँश से यही व्यक्त होता है कि मीराँ के आराध्य मीराँ के समीप ही हैं जब कि 'सावन आवन कह गया रे, हरि आवन की आस' से आराध्य का विरह ही लक्षित होता है। शेष पद के तृतियाँश से व्यक्त भावना दोनों ही अवस्था में संगत हो सकती है, तथापि बिरहावस्था ही ज्यादह सम्भव प्रतीत होती है। मीराँ के जीवन में ऐसा कोई अवसर कभी आया था यह इतिहास से सर्वथा अपरिचित है। सम्भव है कि भावातिरेक में की गई कवि-कल्पना मात्र ही इस पद का आधार हो परन्तु जीवन की अभिव्यक्ति ही मीराँ की विशेषता है। पद को प्रामाणिक मानने पर इससे व्यक्त होती घटनाओं की विवेचना आवश्यक हो उठती है।

सम्भव है कि 'मीराँ दासी'[1] सम्प्रदाय के कुछ पद मीराँ के नाम पर ही चल निकले हों और कालान्तर में मीराँ के अन्य पदों में इतने घुल मिल गये हो कि प्रक्षिप्त व प्रामाणिक पदों को छांट लेना असंभव नहीं तो दुरूह अवश्य ही है।

'मीराँ-स्मृति-ग्रंथ' में प्रकाशित 'पदावली परिचय' के अन्तर्गत पृष्ठ (थ) पर श्री ललिताप्रसाद सुकुल लिखते हैं, "डाकोर की प्रति में प्राप्त कुछ थोड़े से पदों में 'दासी मीराँ लाल गिरधर' की छाप भी मिलती है। उन्हें देखकर संदेह सा होने लगता है कि कदाचित यह पद मीराँ के न होकर दासी ललिता के हो सकते हैं क्योंकि उन पदों की सामग्री प्रायः मीराँ के व्यक्तित्व की ओर संकेत करती हैं। इनमें से कुछ तो मीराँ के उसी प्रकार के लिखे हुए अन्य पदों के प्रतिरूप या दोहरे रूप से भी जान पड़ते हैं।"

---

१. दि रिलिजियस सेक्ट्स आफ हिन्दूस.......लेखक विलसन।

उपर्युक्त स्थिति में 'मीराँ दासी' या दासी मीराँ प्रयोग युक्त पद या पदांशों की प्रामाणिकता में संदेह का होना ही सहज है।

ब्रजभाषा के कुछ पद

शुद्ध व साहित्यिक ब्रजभाषा में लिखित कई सरस पद मीराँ के नाम पर प्रचलित हैं। इन तथाकथित मीराँ के पदों के आधार पर मीराँ का एक सुदीर्घ काल तक बृन्दावन रहना ही सिद्ध होता है। तथापि प्राप्त वृतान्त संदेहोत्पादक है, अतएव जब तक मीराँ द्वारा की गई बृन्दावन-यात्रा इतिहास से प्रमाणित नहीं हो जाती तब तक ब्रजभाषा में लिखित इन पदों के बारे में निश्चित रूपेण कुछ भी कहना असम्भव ही है। फिर भी कुछ पदों की विवेचना की जा सकती है। शैली व अभिव्यक्ति के आधार पर ही ऐसे कुछ पद प्रक्षिप्त प्रतीत होते हैं।

इन तथाकथित मीराँ के पदों में कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का वर्णन ब्रजभाषा-साहित्य की परम्परानुसार ही हुआ है, ऐसा सर्व-सम्मत है। परन्तु मीराँ के समय (वि० सं० १५५५-१६०३) तक ब्रजभाषा-साहित्य की कोई लिखित परम्परा नहीं बन पाई थी। सूरदास ही ब्रजभाषा के सर्व-प्रथम कवि माने जाते हैं। "श्री रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं, ध्यान देने की सबसे पहली बात यह है कि चलती हुई ब्रजभाषा में सबसे पहली साहित्यिक कृति इन्हीं की मिलती है जो अपनी पूर्णता के कारण आश्चर्य में डाल देती है।" (पृष्ठ ११ 'भ्रमर-गीत-सार') ब्रजभाषा में

वैष्णव काव्य-परम्परा को स्थापित करने वाले अष्ट-छाप के अन्य कवि भी सूरदास से प्रभावित प्रतीत होते हैं। 'सूर-सागर' भी वि० सं० १६०७ के लगभग समाप्त हुआ था।(वही, पृष्ठ ४१) प्राप्त वृतान्त के अनुसार वि० सं० १६०३ में ही मीराँ द्वारिकाधीश रणछोड़जी में समा जाती हैं। उपर्युक्त स्थिति में मीराँ की पद शैली पर महाकवि सूरदास का विशेष प्रभाव पड़ा हो ऐसा कम ही संभव प्रतीत होता है।

'सूर-सागर' की काव्य-पूर्णता से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि सूर के पूर्व भी ब्रजभाषा में काव्य-परम्परा, चाहे वह मौखिक ही रही हो, एक उत्कृष्ट स्थान प्राप्त कर चुकी थी। सम्भव है कि अपने बृन्दावन-निवास-काल में मीराँ इन लोकगीतों से प्रभावित हुई हों। उपर्युक्त परिस्थिति में भी मीराँ का एक दीर्घकाल तक वृन्दावन रहना ही सिद्ध होता है। परन्तु प्राप्त वृतान्त विरोधात्मक है। अद्यावधि प्राप्त इतिहास के अनुसार मीराँ द्वारा की गई यह वृन्दावन-यात्रा एक तीर्थ-यात्रा मात्र ही थी। यदि लोकगीत परम्परा से प्रभावित इन पदों को प्रामाणिक रूपेण मीराँ की रचना मान लें तो यही मानना होगा कि महाकवि सूरदास नहीं, अपितु मीराँ ही ब्रजभाषा की प्रथम कवयित्री हैं और ब्रजभाषा की वैष्णव-साहित्य-परम्परा ही मीराँ से प्रभावित है। परन्तु ऐसा सहज प्रतीत नहीं होता क्योंकि मीराँ के पद तो कवयित्री की रचना नहीं अपितु नारी-हृदय का वह एकान्त संगीत है जिसमें वेदना, संघर्ष, आनन्द और समर्पण के विभिन्न स्वर मधुर लय में गुंजरित हो उठे हैं।

मीरां के कुछ पदों में राधा का भी वर्णन मिलता है, यह और भी भ्रमोत्पादक है क्योंकि कृष्ण-भक्ति-शाखा में राधा की भक्ति बहुत पुरानी नहीं। नलिनी मोहन सन्याल अपनी पुस्तक 'महाकवि सूरदास' में पृष्ट ४२ पर लिखते हैं, "विष्णु-पुराण" 'वायु-पुराण' और 'श्री मद्‌भागवत' में राधा का उल्लेख नहीं है। राधा का नाम जयदेव के 'गीत गोविन्द' में और निम्बार्क के 'दश-श्लोकी' नामक स्तोत्र में मिलता है। निम्बार्क ने राधा को कृष्ण की मूल प्रकृति कहा है। जयदेव और निम्बार्क प्रायः एक ही समय में जीवित थे। निम्बार्क का जन्म सं० १२१९ में हुआ था। राधा का नाम हरिवंश के एक स्थान में मिलता है, गोपियों के साथ क्रीड़ा करने के समय जिस समय दामोदर, 'हा राधे, हा चन्द्रमुखी' इत्यादि शब्दों से विरह प्रकट करते थे तब वे वारांगनागण प्रहृष्ट होकर उनकी मुख निःसृति वाणी सुनती थीं। 'गाथा सप्तशती' बहुत पुराना ग्रंथ है। उसमें राधा का उल्लेख है। आनन्दवर्धन के 'ध्वन्यालोक' के द्वितीय उद्योत में उद्‌धृत दो श्लोकों में राधा का नाम पाया जाता है। आनन्दवर्धन जयदेव के समसामयिक व कुछ परवर्ती थे। पंचदश शताब्दी के अन्तिम भाग में गुजरात में नरसिंह मेहता नामक एक कवि ने राधा-कृष्ण विषयक बहुत सी कवितायें रची थीं। उसके कुछ काल पहले बंग-देश में चंडीदास ने और मिथिला में विद्यापति ने राधा-कृष्ण की लीलाओं का अवलम्बन कर अति सरस गीति-काव्य लिखे थे। उसके कुछ समय बाद राजपूताने में मीरां बाई नामक भक्त स्त्री-कवि ने राजस्थानी बोली में बाल-कृष्ण विषयक कुछ भक्ति पूर्ण भजन

लिखे थ। राधा-कृष्ण विषयक धर्म-मत के प्रचार कार्य में श्रीमद्वल्लभाचार्य शीर्ष स्थानीय हैं। सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे। अतएव राधा का नाम और राधा-कृष्ण की लीला उनकी बहुत परिचित थी। पहले भगवान की लीला विषयक ग्रंथों में केवल गोपियाँ थीं, राधा नहीं थीं। पीछे गोपियों के सार स्वरूप राधा की कल्पना की गई। गोपियाँ प्रकृति का व्यष्टि-भाव है और राधा समष्टि-भाव।" उपर्युक्त उद्धरण से सुस्पष्ट हो जाता है कि राधा-कृष्ण की प्रेम-गाथाओं का प्रचार बृन्दावन में भी वल्लभाचार्य और उनके शिष्य सूरदास के कारण ही हुआ। मीराँ ने कभी वल्लभाचार्य का शिष्यत्व स्वीकार किया हो ऐसा कोई प्रमाण कहीं नहीं मिलता अपितु जो कुछ मिलता है वह इसके विरुद्ध ही गवाही देता है। ऐसी परिस्थिति में इनकी रचना बल्लभाचार्य या सूर से प्रभावित हो ऐसा कम ही सम्भव प्रतीत होता है। यदि कहा जाय कि जयदेव रचित 'गीत-गोविन्द' या विद्यापति और चण्डीदास से प्रभावित हो मीराँ ने राधा-कृष्ण-लीला विषयक पदों की रचना की तो वह भी युक्ति-संगत न होगा क्योंकि तथाकथित मीराँ के पद बंगला या मैथिल कवियों के प्रभाव से बिल्कुल मुक्त हैं। "बंगाल के वैष्णव पदावलियों का एक प्रधान अंग है पूर्व-राग और इसके वर्णन में बंगाली वैष्णव कवियों ने बहुत चमत्कार दिखाया है।" (वही, पृष्ठ ४२) राधा-कृष्ण-लीला विषयक तथाकथित मीराँ के पदों में बंगाल और मैथिल कवियों के परम्परानुसार पूर्व-राग का वर्णन नहीं अपितु ब्रजभाषा-साहित्य-परम्परानुसार राधा के वियोग का ही वर्णन है।

"कागद ले राधा बाँचण बैठी, भर आई छाती"

(मीराँबाई की पदावली, पद १८६)।

उपर्युक्त तर्क के आधार पर वैसे पदों की प्रामाणिकता में जिनमें राधा का वर्णन मिलता है संदेह ही होता है।

मै उपर्युक्त उद्धरण के विषय में कुछ कहना चाहूंगी। प्रख्यात विद्वान् श्री नलिनी मोहन सन्याल लिखते हैं, "उसके कुछ समय बाद राजपूताने में मीराँ बाई नामक भक्त स्त्री-कवि ने राजस्थानी बोली में बाल-कृष्ण विषयक कुछ भक्ति-पूर्ण भजन लिखे थे।" राजस्थानी के अधिकाँश पदों में मीराँ ने अपने आराध्य का जो रूप वर्णन किया है वह बाल-कृष्णका नहीं अपितु नाथ-परम्परानुसार विभूषित 'जोगी' विशेष का है। हाँ, मीराँ के नाम पर प्रचलित ब्रजभाषा में लिखित कुछ पदों में कृष्ण के बाल-रूप व बाल-लीलाओं का वर्णन ब्रजभाषा-साहित्य-परम्परानुसार मिलता है तथापि ऐसे कुछ पदों की प्रामाणिकता में संदेह करने के लिये पर्याप्त कारण है। पहले तो, जैसा मैंने ऊपर बताने का प्रयत्न किया है कि मीराँ के काल तक ब्रजभाषा-साहित्य की कोई लिखित परम्परा ही नहीं बन पाई थी। दूसरा कारण स्वयं मीराँ की भावना है। सर्व-विदित है कि नवधा भक्ति के दाम्पत्य रूप को ही मीराँ ने अपनाया था, वे कृष्ण को ही अपना पति मानती थीं और उन्हीं के विरह में अहर्निश तड़पा करती थीं। एक प्रेयसी द्वारा अपने ही प्रियतम के बाल-रूप व बाल-लीलाओं का वर्णन कुछ असंगत प्रतीत होता है। अतएव ऐसे कुछ पदों की प्रामाणिकता में संदेह होता है।

१—"बसो मेरे नैनन में नन्दलाल।

मोहनी मूरति साँवरी सूरति, नैणां बने विसाल ।
अधर सुधारस मुरलि राजति, उर बैजन्ती माल ।
छुद्र घंटिका कटि तट सोभित, नूपुर सबद रसाल ।
मीराँ प्रभु संतन सुखदाई, भक्त बच्छल गोपाल ।"
('मीराँ बाई की पदावली'-पद३)

मीराँऔर सूरदास प्रायः समसामयिक प्रसिद्ध कृष्ण-भक्त हुए हैं। दोनों ने ही अपने आराध्य के अतुल रूप गुण का कीर्तन करते हुए, भावावेश में सरस पदों की रचना की है। उपर्युक्त परिस्थिति में दोनों के पदों का सम्मिश्रण हो जाना अत्यधिक सहज व सरल है। सूरदास का काव्य-क्षेत्र बहुत विस्तृत है, उन्होंने विप्रलंभ-शृंगार और संयोग-शृंगार के साथ ही साथ बाल-वर्णन में कमाल किया है तो अपनी अद्भुत प्रतिभा के कारण वात्सल्य, सेव्य तथा सख्य भावों का भी अत्यन्त गम्भीर वर्णन किया है। सूर की तुलना में मीराँ का काव्य-क्षेत्र बहुत सीमित है। अपने आराध्य के प्रति मीराँ का समर्पण, उनके वियोग की वेदना, संघर्ष की कटुता और मिलन का आनन्द ही मीराँ का मुख्य विषय है। अतएव मीराँ के पदों का सूर के नाम पर प्रख्यात हो जाने की सम्भावना कम है और सूर के कुछ लोक-प्रिय पदों का मीराँ के नाम पर प्रचलित हो जाने की सम्भावना ही अधिक है। निम्नाँकित कुछ पदों की तुलना करने पर ऐसा ही प्रतीत होता है कि सूर के ही कुछ पद गेय-रूपान्तर के साथ मीराँ के नाम पर प्रचलित हो गये हैं।

१—"नहिं ऐसो जनम बार बार ।
का जानूं कुछ पुण्य प्रगटे, मानुसा अवतार ।

बढ़त छिन छिन, घटत पल पल, जात न लागे बार।
बिरछ के ज्यूं पात टूटे, बहुरि न लागे डार।
भौ सागर अति जोर कहिये, अनंत ऊंडी धार।
राम नाम का बाँध बेड़ा, उतर परले पार।
ज्ञान चौसर मंडी चौहटे, सुरत का पासा सार।
या दुनियाँ में रची बाजी, जीत भावै हार।
साधु संत महंत ज्ञानी, चलत करत पुकार।
दासी मीराँ लाल गिरधर, जीवणाँ दिन च्यार।"

(वही-पद १९५)

क–"नहिं अस जनम बारंबार।
पुरबलौ पुण्य प्रगट्यो, लह्यो नर अवतार।
घटै पल पल, बढ़त छिन छिन, जात लागि न बार।
धरनि पत्ता गिरि परे, तैं फिरि न लागै डार।
भय उदधि जमलोक दरसै निपट ही अंधियार।
सूर हरि को भजन करि करि, उतरि पल्ले पार।"

(सूर-सागर[1] पृष्ठ २८, पद ८८)

दोनों पदों की तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि सूर का ही पद कुछ घट बढ़ कर मीराँ के नाम पर प्रचलित हो गया है। एक पद की प्रत्येक पंक्ति का भाव दूसरे पद की प्रत्येक पंक्ति के भाव से हूबहू मिलता है। सूर के पद की साहित्यिक भाषा बोलचाल की साधारण भाषा में परिवर्तित हो गई है। 'दासी मीराँ' प्रयोग भी विचारणीय है।

---

१ 'नागिरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित 'सूर-सागर' प्रथम खंड।

बहुत सम्भव है कि 'मीराँ दासी' सम्प्रदाय में प्रचलित सूर का यह पद ही कालान्तर में मीराँ के नाम पर चल निकला हो।

२—"गोविन्द से प्रीत करत, तबहीं क्यूं न हटकी।
अब तो बात फैल परी, जैसे बीज बट की।
बीच को विचार नाहिं, छाँय परी तट की।
अब चूको तो ठौर नाहिं, जैसे कला नट की।
जल के बुरी गाँठ परी, रसना गुन रट की।
अब तो छुड़ाय हारी, बहुत बार झटकी।
घर घर में घोल मठोल, बानी घट घट की।
सबही कर सीस धारि, लोक लाज पट की।
मद की हस्ती समान, फिरत प्रेम लट की।
दास मीराँ भक्ति बुंद, हिरदय बिच गटकी।"

(वही-परिशिष्ट पद ५)

माई री ! गोविन्द सों प्रीत करत, तबही क्यों न हटकी।
यह तो अब बात फैली, भई बीज बट की।
घर घर नित यहै घैर, बानी घट घट की।
मैं तो सबै सही, लोक लाज पटकी।
मद के हस्ती समान, फिरत प्रेम लटकी।
खेलत में चुकी जाती, होती कला नट की।
जल रज्जु मिली गाँठ परी, रसना हर रट की।
छोरैं से नाहिं छुटती, कएैक बार झटकी।
मेटैं क्यों हूं न मिटती, छाप पड़ी टटकी।

सूरदास प्रभु की छबि, हिरदैं माँझ अटकी।

('सूर-सागर' पृष्ठ ८३४ पद, १६६०)

स्पष्ट ही एक पद दूसरे का रूपान्तर मात्र है। उपर्युक्त दोनों ही पदों में 'मीराँ दासी' का प्रयोग हुआ है। बहुत सम्भव है कि सूर के ही कुछ पद 'मीराँ दासी' सम्प्रदाय में प्रचलित होने के कारण मीराँ के नाम पर चल निकलें हों। मीराँ के नाम पर चल निकलने वाले ऐसे कुछ पदों की विवेचना हो जाने पर ही मीराँ के पदों का एक प्रामाणिक संग्रह तय्यार किया जा सकेगा।

गुजराती भाषा के पद

अद्यावधि प्राप्त वृतान्त से मीराँ का उत्तर वयस में, अवसान प न्त, द्वारिका निवास सर्व-सम्मत है। इस द्वारिका निवास के कारण मीराँ द्वारा रचित पदों की भाषा पर गुजराती का प्रभाव पड़ना अथवा गुजराती भाषा में ही पद रचना करना, दोनों ही अत्यधिक सहज प्रतीत होते हैं तथापि प्राप्त पदों की प्रामाणिकता में, भाषा व अभिव्यक्ति दोनों के ही आधार पर सहज ही संदेह होता है।

गुजराती के कुछ तथाकथित मीराँ के पद राजस्थानी के पदों के भाषान्तर ही प्रतीत होते हैं :—

१—"प्रीत पूरबनी ने शुं करूं ?

ओ राणा जी म्हांरी प्रीत पूरबनी शूं करूं ?"

('मीराँ अणे नरसिंह'-हरसिद्ध भाई दिवेटिया पद ७)

२–"पिया कारण पीली भई रे, लोक जाणे घट रोग"।

(वही-पद २५)

३–"बाई, मैंने गोविन्द लीन्हों वणमोल।"

(वही-पद २१)

ऐसे कई पद छाँटे जा सकते हैं जो राजस्थानी और गुजराती दोनों ही भाषाओं में साधारण हेर फेर के साथ मिलते हैं। ऐसे पदों में वियोग और संघर्ष की भावनाएं ही अत्यन्त स्पष्ट हो उठी हैं। राजस्थान के महलों में रहती हुई मीराँ के जीवन में वियोग और संघर्ष का प्रश्न उठा था, जैसा कि अत्यन्त स्वाभाविक और सहज भी है। भक्ति के रंग में रंगी मीराँ के एकबार गृह-त्याग कर अपने आराध्य द्वारिकाधीश रणछोड़ जी के आश्रय में आ जाने पर उनकी वेदना और संघर्ष का आनन्द और समर्पण में परिणित हो जाना ही अति सहज है। अतएव वियोग और संघर्ष द्योतक पदों का मूलतः राजस्थानी भाषा में होना अधिक संभव प्रतीत होता है। उपर्युक्त व अन्य ऐसे ही पद राजस्थानी भाषा में पाये गये पदों का "गुजराती करण" मात्र प्रतीत होते हैं।

गुजराती में पाये गये अन्य कुछ पद तो हुबहू राजस्थानी के ही पद हैं:–

१–"म्हाँरा ओलगिया घर आया जी।"

(वही-पद ८१)

२–"म्हाँरे जनम मरण रा साथी।

थांने नहिं बिसरूं दिन राती।"

(वही-पद ७५)

३–"ऐसी लगन लगाय कहाँ तू जासी।"

(वही-पद ७०)

इसी तरह गुजराती में पाये गये अन्य कई पद ब्रजभाषा में पाये गये पदों का गेय-रूपान्तर या लिपि-रूपान्तर ही हैं।

१–'हाँरे कोई माधव ल्यो, माधव ल्यो बेंचती ब्रजनार।'

(वही-पद ५)

२–"पायो जी मैंने राम रतन धन पायो।"

(वही-पद ९५)

उपर्युक्त परिस्थिति में गुजराती-साहित्य को ऐसे कुछ पदों का मोह छोड़ ही देना चाहिये। 'मीराँ-स्मृति-ग्रंथ' में 'अप्रकाशित पद' के अन्तर्गत जगदीश प्रसाद गुप्त, रिसर्च स्कालर, प्रयाग विश्व विद्यालय, पृष्ठ १५० १५२ पर लिखते हैं:–"मीराँ के नाम पर जो गुजराती पद उद्धृत किये जाते हैं उनमें से कितने ही या तो मिश्र भाषा के हैं या ब्रजभाषा के। केवल लिपि गुजराती होने से वे पद गुजराती के नहीं मान लिये जायेंगे। 'बृहत-काव्य-दोहन' आदि जिन संग्रहों में संग्रहीत मीराँ के गुजराती पदों का निर्देश पहले किया जा चुका है वे अधिक प्राचीन नही हैं। 'बृहत-काव्य दोहन' के सातवें भाग में जो ११३ पद दिये गये हैं उनमें से भी ३४ पद गुजराती भाषा के नहीं हैं। वे ब्रजभाषा के हैं। बड़ौदा के कीर्ति-मन्दिर में श्री नन्दलाल बोस के बनाये

हुए चित्रों के साथ जो मीराँ के पद लिखे हैं उनमें से केवल एक की भाषा गुजराती है।

जितने प्राचीन पद मिलते हैं उन पर या तो मारवाड़ी की या कुछ कुछ गुजराती की छाप मात्र मिलती है। ऐसी दशा में मीराँ के नाम पर छपे हुए गुजराती के इतने पद मेरी दृष्टि में संदेहास्पद हैं। डा० टेसीटरी के मत से मीराँ की भाषा पश्चिमी राजस्थानी है जिसे आधुनिक गुजराती का पूर्व-रूप भी माना जाता है परन्तु मीराँ के गुजराती पदों की भाषा प्राचीन नहीं लगती अतएव किसी प्राचीन हस्तलिपि से प्राप्त मीराँ के ऐसे पदों के अभाव में यह कहना कठिन है कि मीराँ ने गुजराती में इतने विस्तार से रचना की।

पर जो पद मीराँ के अन्तिम पद कहे जाते हैं उनमें भी ब्रजभाषा का ही प्राधान्य है।"

खास गुजराती भाषा में प्राप्त अन्य पदों को भी भाषा व अभिव्यक्ति के आधार पर मीराँ विरचित मानने में संकोच ही होता है। सर्व-सम्मत है कि मीराँ अपने जीवन के अन्तिम काल में ही द्वारिका गईं और राणा द्वारा लौटाने का प्रयास होने पर अपने आराध्य द्वारिकाधीश रणछोड़ जी में ही समा गईं। ऐसी परिस्थिति में यह निश्चित रूपेण ही कहा जा सकता है कि तब तक मीराँ को एक गम्भीर आध्यात्मिक अनुभूति अवश्य ही हो चुकी थी। अतएव, गुजराती में प्राप्त पदों का विचार-गाम्भीर्य-परिपूर्ण होना ही अत्यधिक सहज प्रतीत होता है परन्तु प्राप्त पदों की अभिव्यक्ति इसके विरुद्ध पड़ती है। प्राप्त पदों में आनन्द, समर्पण और भक्ति के भावों की वह गम्भीर

अभिव्यक्ति नहीं जो राजस्थानी और ब्रजभाषा के पदों से लक्षित होती है। कुछ पदों में साधारण और कहीं कहीं निम्न स्तर के घरेलू जीवन का वर्णन है :–

१–"नन्दलाल नहिं रे आवू मुझ घेर काम छे।"

(वही-पद ११)

२–"जेने मारा प्रभु जी नी भक्ति न भावे रे तेने घर शीद जइए
जेने घर संत प्राहुणो न आवे रे, तेन घर शीद जइए।
ससरो अमारो अग्नि नो भड़को, सासु सदानी सूली रे।
एनी प्रत्यें मारूं काँई ना चाले रे, ऐने आँगनिए नाखूं पूली रे।
जेठानी अमारी भभरानु जाँलु, देराणी तो दिल माँ दाजी रे।
नानी ननद तो मों भजकोड़े, ते भाग्ये अमारे कर्म पाजी रे।
......, त बलताँ मा नाँखे छे वारि रे।"

(वही-पद ६)

कुछ पदों में राधा और अन्य गोपियों के साथ की गई कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का वर्णन है अतएव इनकी प्रामाणिकता में संदेह होता है। (देखें–'ब्रजभाषा के कुछ पद')

१–"चढ़ी ने कदम पर बैठो रे, वालो मारो चीर तो हरी ने।
माता जसोदाना कुंवर कन्हैया, नागर नन्दजी नो बेटो रे।
मोर मुकुट सिर छत्र बिराजै, पहिर्यो छे पीलो लपेटो रे।"

('बृहत-काव्य-दोहन'-पद)

२–"कानुड़े ना जाणी मोरी पीर।
बाई हूं तो बाल कुंवारी रे, कानुड़े ना जाणी मोरी पीर।
जल जमना अमे पाणी ए गयाँ, बाहला कानुड़े उड़ाया अच्छा
नीर, उडाया फरररर रे"

अधिकाँश पदों में कृष्ण की बाल-लीलाओं व बाल-रूप का ही वर्णन मिलता है। सर्व-विदित है कि मीराँ ने प्रणय-भाव से ही कृष्ण की भक्ति की। मुग्धा नारी द्वारा अपने ही प्रियतम के बाल-रूप व बाल-लीलाओं का वर्णन असंगत ही प्रतीत होता है।

१—"जागो रे अलबेला कान्हा मोर मुकुट धारी रे।
सहु दुनियाँ तो सुती जागी, प्रभु तुम्हारी निद्रा भारी रे।
गोकुल गामनी गायो छूटी, वनज करे व्यापारी रे।
दातन करो तमे आदे देवा, मुख धुओ मुरारी रे।"
('बृहत-काव्य-दोहन')

"लेने तुरीने लाकड़ी रे, लेने तुरी कामली।
गायो तो चरावर्वां नहिं जाऊं मावड़ली।"
(वही-पद ३९)

शायद ही कोई पद ऐसा मिले जिसमें मीराँ ने अपने आराध्य द्वारिकानाथ रणछोड़ जी का या द्वारिकापुरी का वर्णन किया हो। 'बालापन' से ही रणछोड़ जी की अनन्य भक्त, रणछोड़ जी के विरह में अहर्निश तड़पने वाली मीराँ अभी अभी द्वारिका आयी हैं, फिर भी बृन्दावन लौट जाने की ही कामना रखती हैं और बृन्दावन की सुन्दरता ही उनके अधिकाँश पदों का विषय है।

१—"वृन्दा ते वनने मारग जाताँ, राधे गौरी ने कान श्याम छे।
वृन्दा ते वन माँ रास रच्यो छै, सहस्र गोपी ने एक कान छे।"
(वही-पद ११)

२—"वागे छे रे, वागे छे, वृन्दावन मोरली वागे छे।

तेना शब्द गगन मा गाजे छे ।"

(वही-पद १०)

रणछोड़ जी की एकनिष्ट भक्त, रणछोड़ जी में ही समा जाने वाली मीराँ द्वारिका और द्वारिकाधीश के बारे में सर्वथा मौन है, यह संदेहोत्पादक है ।

इन पदों की भाषा भी आधुनिक गुजराती है । हरसिद्ध भाई दिवेटिया लिखते हैं:—"मीराँ नाँ पदो नी भाषा तेनाँ काल नी डा० टेसीटरी जेने पश्चिम राजस्थानी कहे छे ते हती । मेवाड़ नी ए विधवा युवराज्ञी ए ते काल नी पश्चिम राजस्थानी माँ ज पोतानुं पद गायाँ छे । मीराँ नाँ प्रसिद्ध थई उपलब्ध थयेलाँ पदों हाल हिन्दी माँ, हिन्दी गुजराती माँ, या तो गुजराती हिन्दी माँ छे । एक मत एवों छे के मीराँ ए मात्र हिन्दी माँ ज लख्युं होय पण उत्तर वय माँ अवसान पर्यन्त द्वारिका निवास स्वीकारी एणे हिन्दी गुजराती या गुजराती माँ पण लख्युं होय ऐवो बीजो एक मत पण प्रचलित छे । आ बे मत नु समाधान ए थई शके के एक तो मीराँ ने तेनाँ पदो राजस्थान अने गुजरात बन्ने माँ लोकप्रिय साथे साथे ज थयाँ, अणे बीजु गुजरात नी सीमाओं ते काले राजस्थान नो समावेश करे एटली विस्तृत हती । पश्चिम राजस्थानी के जूनी गुजराती माँ लखायली मीराँ नी लोकप्रिय कविता नु हिन्दीओ उत्तरोत्तर हिन्दी करण अणे गुजरातीओ गुजराती करण करताँ गयाँ । मीराँ बाई नी कविता नो भाषा आम भाषान्तर अणे रूपान्तर थतुं आव्युं लागे छे ।" (वही, पृष्ठ ५) उपर्युक्त उद्धरण के आधार पर गुजराती भाषा में प्राप्त पदों की प्रामाणिकता में संदेह और भी गहरा हो उठता है । —

र्युक्त उद्धरण पर विचार कर लेना भी अनुपयुक्त न होगा । कहना न होगा कि हिन्दी (खड़ी बोली) का विकास मीराँ के जीवन काल से बहुत समय बाद ही हुआ है । मीराँ के प्राप्त पदों की भाषा या तो पश्चिम राजस्थानी है या ब्रजभाषा । अत्यधिक संभव है कि मीराँ के पदों की पश्चिमी राजस्थानी ठीक अपने प्राचीन रूप में ही न रह गई हो, तथापि वही अधिकाँश पदों की भाषा है । अतः, "हिन्दी ओ द्वारा हिन्दी-करण" का होना पद को प्रक्षिप्त सिद्ध करता है ।

उपर्युक्त परिस्थितियों को देखते हुए, भाषा और अभिव्यक्ति दोनों के ही कारण मीराँ के नाम पर प्रचलित गुजराती पदों की प्रामाणिकता में गहरा संदेह उत्पन्न होता है ।

कुछ फुटकर पद

तथाकथित मीराँ के कुछ पद विभिन्न प्रान्तीय बोलियों में भी पाये जाते हैं । प्राप्त इतिहास के आधार पर मेड़ता, चित्तौड़, वृन्दावन और द्वारिका में ही मीराँ का जीवन बीता । इस क्षेत्र के बाहर मीराँ ने कभी पैर रक्खा हो या अपनी तीर्थ-यात्राओं के अवसर पर भी इन विभिन्न प्रदेशों की ओर गई हों ऐसा भी प्राप्त इतिहास में कहीं नहीं मिलता ।

प्राप्त पदों को देखते हुए यह भी संगत नहीं प्रतीत होता कि साधु-समागम के कारण ही मीराँ के पदों पर अन्य प्रान्तीय

बोलियों का भी प्रभाव पड़ा हो । ऐसी स्थिति में बोली विशेष का उस काल में रचित सभी पदों पर न्यूनाधिक प्रभाव पड़ना ही सहज है। कहा जाता है कि संभवतः विशेष भाव द्योतक इन पदों की रचना मीरां ही ने की हो और कालान्तर में होते गए भाषान्तर के कारण आज ये पद इसी रूप विशेष में प्रचलित हैं । ऐसे कुछ पदों को छोड़कर मीरां के नाम पर प्रचलित अन्य सभी पद अपनी मौलिकता को लिये हुए हैं, यद्यपि भाषा पर समय का गहरा प्रभाव जरूर पड़ा है तथापि पद का रूपक आद्योपान्त परिवर्तित नहीं हुआ है। सम्पूर्ण पद का नितान्त परिवर्तन अमान्य ही प्रतीत होता है । फिर, यदि इस कथन को कुछ देर के लिये मान ही लिया जाय, तब भी यह कैसे कहा जा सकता है कि जिस पद का स्वरूप आद्योपान्त परिवर्तित हो गया है उसमें व्यक्त की गई भावना सर्वथा मीरां की ही है । दैनिक जीवन के अनुभव से यह सिद्ध हो जाता है कि श्रोता के वक्ता बन जाने पर प्रथम वक्ता द्वारा व्यक्त भाषा के साथ ही साथ भावना में भी गहरा व स्पष्ट अन्तर पड़ जाता है । अतएव ऐसे कुछ पदों की प्रामाणिकता में सहज ही संदेह होता है ।

गहरे विरोध के रहते हुए भी राजस्थान के राजपरिवारों में मुगल दरबार का विशेष प्रभाव पड़ चुका था, और हिन्दू-राज दरबारों की बोली भी मुगलों की भाषा से प्रभावित थी । मीरां के कुछ पदों से भी ऐसा ही प्रतीत होता है ।

"छप्पन् कोटि जहाँ जान पधारे, दूल्हा श्री भगवान ।"

(वही-पद ३७)

"मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, धणी मिलिया छै हजूर ।"
(वही-पद २४)

ऐसे कितने ही और उदाहरण छाँटे जा सकते हैं। उपर्युक्त परिस्थिति में ऐसा ही प्रतीत होता है कि कुछ पदों में प्राप्त उर्दू के शब्द-विशेष शायद अप्रामाणिक न भी हों।

मीराँ के कुछ पद आधुनिक खड़ी बोली में प्राप्त हैं। यह सर्वथा आश्चर्यजनक व अमान्य ही प्रतीत होता है। अपने लगभग तीन साढ़े तीन सौ वर्षों बाद अंकुरित होने वाली बोली में भी मीराँ ने रचना की, यह क्योंकर सम्भव माना जा सकता है?

१–"आली साँवरे की दृष्टि, मानो प्रेम की कटारी है।"
लागत बेहाल भई तन की सुधि बुद्धि गई।
तन मन व्यापो प्रेम, मानो मतवारी है।"
('मीराँ बाई की पदावली',-पद १७६ ।)

२–"गोहनें गुपाल फिरूं, ऐसी आवत मन में।
अवलोकत बारिज बदन, बिबस भई तन में।"
(वही-पद १८५ ।)

३–"अच्छे मीठे चाख चाख, बेर लाई भीलणी।
ऐसी कहा अचारवती, रूप नहीं एक रती।
नीच कुल ओछी जात, अति ही कुचीलणी।"
(वही-पद १८७ ।)

भोजपुरी बोली से प्रभावित पद।

१–"मेरो मन बसिगों गिरधरलाल सों।
मोर मुकुट पीताम्बर हो, गल बैजन्ती माल।

गउवन के संग डोलत, हो जसुमति को लाल ।"

(वही-पद ६)

पद में कृष्ण के बाल-रूप का ही वर्णन किया गया है । प्रेयसी नारी द्वारा अपने ही प्रियतम का बाल-रूप-वर्णन असंगत प्रतीत होता है ।

बिहारी बोली से प्रभावित पद ।

१—"गोकुला के बासी भले ही आए, गोकुला के बासी ।
गोकुल की नारी देखत, आनंद सुखरासी ।"

(वही-पद १६६)

पंजाबी बोली से प्रभावित पद ।

१—"हो काँनाँ किन गूंथी जुल्फाँ कारियाँ ।
सुघर कला प्रवीन हाथन सूं, जसुमति जू ने संवारियाँ ।"

(वही-पद १६५)

इस पद में भी कृष्ण के बाल-रूप का वर्णन किया गया है ।

२—"लागी सोही जाणै, कठण लगण दी पीर ।
विपति पड़्याँ कोई निकट न आवै, सुख मे सब को सीर ।"

(वही-पद १९१)

हिन्दी-साहित्य में संतमतानुयायी काव्य सर्व-प्रथम कबीर का ही मिलता है । संतमत के अत्यधिक प्रचार का श्रेय भी कबीर को ही प्राप्त है ।

"भक्ती द्राविड़ ऊपजी, लाये रामानन्द ।
परगट किया कबीर ने, सप्त द्वीप नव खण्ड ।"

('कबीर' लेखक—हजारी प्रसाद द्विवेदी')

कबीर भी अति प्रसिद्ध भक्त हुए हैं और उनकी वाणी भी मीराँ के पदों की तरह ही जन–कंठहार बनी रही है अतः बहुत सम्भव है कि दोनों के भिन्न पदों या पदांशों के सम्मिश्रण से बने पद मीराँ के ही नाम पर चल पड़े हों।

निम्नांकित पद कबीर के ही पद का गेय पाठान्तर प्रतीत होता है।

"गली तो चारों बन्द हुई, मैं हरि से मिलूं कैसे जाइ।
ऊंची नीची राह लपटीली, पाँव नहीं ठहराइ।
सोच सोच पग धरूं जतन से, बार बार डिग जाइ।
ऊंचा नीचा महल पिया का, हम से चढ़्या न जाइ।
पिया दूर पंथ म्हाँरो झीणो, सूरत झकोला खाइ।
कोस कोस पर पहरा बैठ्या, पैंड पैंड बटमार।
हे विधना कैसी रच दीन्हीं, दूर बस्यो म्हाँरो गाम।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सतगुर दई बताय।
जुगन जुगन के बिछड़ी मीराँ, घर में लीन्हीं लाय।"

(वही-पद १९३)

"मिलना कठिन है, कैसे मिलौंगी प्रिय जाय।
समझि सोचि पग धरौं जतन से, बार बार डिग जाय।
ऊंची गैल राह रपटीली, पाँव नहीं ठहराय।
लोक लाज कुल की मरजादा, देखत मन सकुचाय।
नैहर बास बसौं पीहर में, लाज तजी नहिं जाय।
अधर भूमि जहं महल पिया का, हम पै चढ़यौ न जाय।
धन भई बारी पुरुख भये भोला, सुरत झकोरा खाय।
दूती सतगुर मिले बीच में, दीन्हों भेद बताय।

साहब कबीर पिया सो भेट्यो, सीतल कंठ लगाय ।
('कबीर' लेखक—हजारी प्रसाद द्विवेदी)

एक मारवाड़ी कथा प्रसंग

लोकोक्ति है कि गृह-प्रवेश के साथ ही साथ मीराँ का अपनी सास के साथ विरोध हो जाता है । इस लोकोक्ति का आधार है वह पद जिसमें मीराँ 'गोरज्याँ' तथा 'अनदेव' की पूजा का कट्टर विरोध करती प्रतीत होतीं हैं । 'अनदेव' पूजा की निस्सारता को दिखलाती हुई वे अपने 'बाल सनेही' 'गुरु गोबिन्दो' के प्रति असीम श्रद्धा और विश्वास प्रकट करती हैं । मारवाड़ी समाज में प्रचलित प्रथा के अनुसार यह लोकोक्ति निराधार मालूम पड़ती है क्योंकि गृह-प्रवेश के अवसर पर नव-वधू से कुल-देव व अन्य देवी-देवताओं की पूजा कराने की प्रथा है परन्तु गौरी-पूजा कराने की प्रथा प्रचलित नहीं है ।

हिन्दू समाज में शिव-पार्वती पूजन किसी न किसी रूप में प्रचलित है । 'गणगोर' शिव-पार्वती-पूजा का ही मारवाड़ी रूप है । प्रायः सभी मारवाड़ी घरों में सात या नौ वर्ष की छोटी सी अवस्था से ही लड़कियाँ 'गोर' पूजने लगती हैं । होलिका-दहन के दूसरे दिन सबेरे ही लड़कियाँ होलिका की राख उठा लाती हैं । इस राख को गोबर में सान कर सोलह अंडाकार छोटे छोटे पिंड बनाये जाते हैं । 'गोर' पूजने वाली लड़कियाँ इन पिंडों को

'बूढ़े बासेड़े' तक पूजती हैं। यह 'बूढ़ा बासेड़ा' ७वें, ९वें या १०वें दिन पड़ता है। 'बूढ़े बासेड़े' का अर्थ है 'शीतला की पूजा।' इस दिन किसी घर में अग्नि नहीं जलाई जाती। पहले रोज रात को ही खाना बना कर रख लिया जाता है जो इस रोज दोनों जून खाया जाता है। यह रसोई भी दो तरह की बनती है, घर वालों के लिये पूड़ी कचौड़ी आदि और पूजा के लिये राजस्थान की खास उपज बाजरे की रोटी, राबड़ी आदि। रसोई बनने के बाद भंडार घर की दीवाल पर घी का थापा देकर शीतला माता की स्थापना की जाती है। घर के छोटे-बड़े सभी उसकी पूजा करते हैं। पूजा के अवसर पर जलाया गया दीप रात भर जलता रहे इसका विशेष ख्याल रखा जाता है। घर के सभी लोग सबेरे उठते ही, शीतला माता का आशीर्वाद लेने बासी मुंह ही आते हैं। इसके बाद दीपक की रखवाली छोड़ दी जाती है और कुछ देर बाद वह अपने आप 'बढ़' जाता है। तब, नहा-धोकर, परन्तु कुछ खाये पिये बिना ही घर के स्त्री-पुरुष, बूढ़े-बच्चे, सभी लोग शीतला के 'मंड' पर पूजा करने जाते हैं। वहाँ से लौटते समय शीतला का जल ले लिया जाता है। पूजा करने जाते और लौटते समय गीत गाये जाते हैं। जाते समय के गीत शीतला के गीत कहलाते हैं। स्त्री अपने बच्चे और पति की शुभकामना करती है और पूजा से संतुष्ट हुई देवी उसको अभयदान देती है, यही इन गीतों की 'थीम' होती है।

''बाँगोरारी माता के बागाँ में, बन कोयली बोले।
बन कोयली बोले, माइड़ बाप को जीवड़ो डरपै।

'बढ़ना'—बूझ जाना, अन्त हो जाना।

जीवड़ो धड़कै, ठंडी रानी बालकाँ बक्सें।"

अर्थात् बागवाली माता के बाग में बन-कोयल बोलती है। बन कोयल के बोलने से माँ-बाप का जी डरता है। जी धड़कता है। ठंडी रानी (शीतला माता) बालक की रक्षा करें।

या

"सीचे म्हाँरे कुणचन्द जी री नार।
हाथ घड़ो सिर भी घड़ो जी।
सींचतड़ा फल होय।
ठंडा झोला देय माता सीतला जी।
कुसल करेगी माता सीतला जी।"

लौटते समय गाये जाने वाले गीत 'बधावा' कहलाते हैं। प्रत्येक शुभ अवसर पर ये गीत गाये जाते हैं। 'बधावा' नाम से ही इन गीतों की 'थीम' सुस्पष्ट हो उठती है। घर की हर तरह की वृद्धि-कामना ही इनसे व्यक्त होती है।

"मनाएं बधावो, म्हाँरे सदा ए बधावो, सुरसत[1] सरब सुख
म्हाँरे भयो ए अणंद जी।"

अर्थात् हमारे यहाँ सब सुख 'सुरसत'[1] हों—पवित्र हों, न्याय-युक्त हों, अतएव सदा आनन्द बढ़े।

'बूढ़े बासेड़े' के दिन दोपहर में 'गोर' पूजने वाली लड़कियाँ तथा उनकी माँ, चाची, भाभी आदि घर की अन्य प्रौढ़ाएं सब गाते बजाते किसी कुम्हार के घर जाती हैं। कुम्हार के चाक के समीप गाना-बजाना होता है। तब कुम्हार से एक 'कुंडारे' में कुछ सानी हुई मिट्टी व 'दो घड़', (घड़े पर घड़ा) लेकर बदले में

१ सुरसत—सरस्वती अनुमोदित—शास्त्रानुकूल, पवित्र, न्यायपूर्ण।

कुम्हार को अन्न व गुड़ देते हैं। सुसम्पन्न होने पर कपड़े भी देते हैं। तब वे लड़कियाँ गाती बजाती घर लौट जाती हैं। 'दोघड़' घर के 'परेंडे' या 'पेंड़ें' में (घर में पीने का पानी रखने का स्थान) रख दिया जाता है। राजपूताने में पानी के कमी की कारण इस 'परेंडें' को विशेष महत्व दिया जाता है, विशेष अवसरों पर इसकी पूजा भी की जाती है। 'परेंडें' में सभी देवी-देवताओं, 'पितरों' तथा घर की रक्षा करने वाली सम्पूर्ण शक्तियों का निवास माना जाता है, अतएव बड़े मनोयोग से इसकी पूजा की जाती है। कलकत्ता, बम्बई, जैसे बड़े-बड़े शहरों में बसने वाले शिक्षित परिवारों में भी यह प्रथा आज भी ज्यों की त्यों चली आ रही है। इस 'दोघड़' का 'बढ़' जाना बड़ा गहरा अपशकुन समझा जाता है। किसी भी शुभ वस्तु के लिये 'फट जाना' या 'बुझ जाना' जेसे अप्रिय शब्दों का व्यवहार करने से मारवाड़ी परहेज करते हैं। वे हमेशा ही कहेंगे कलश 'बढ़' गया, दीपक 'बढ़' गया आदि।

'दोघड़' की स्थापना के बाद कुम्हार के घर से लायी गयी उस मिट्टी से चार या पाँच, प्राय: पाँच ही, मूर्तियाँ बनायी जातीं हैं। इन मूर्तियों को हल्दी से रंग कर यथाशक्ति सुन्दर कपड़े और जेवर से सजाया जाता है। किसकी 'गोर' अधिक सुन्दर बनीं, यह होड़ मुहल्ले भर की स्त्रियों में रहती है।

'ईसर' (शिव), 'गोर माता' (पार्वती), 'कान्हा' '(ईसर के भाई) और आजन्म अविवाहिता बहन 'रोवाँ' जो सदा ही दोनों भाइयों से अत्याधिक श्रद्धा और आदर पाती रहीं। (गोर-पूजा के लिये यह चारों मूर्तियाँ आवश्यक हैं।) पाँचवीं

मूर्ति मालिन की है जो कुछ लोग बनाते हैं, और कुछ नहीं भी बनाते हैं। तब, 'कुंडारे' में कुछ साफ सुथरी 'दूब' (हरी घास) बिछा दी जाती है और उसमें पाँचो मूर्तियाँ विराजमान करा दी जाती हैं। यह 'कुंडारा' किसी सुरक्षित स्थान में रख दिया जाता है। पूजने वाली लड़कियाँ दूसरे दिन से उन सोलहों पिंडों के साथ ही साथ इन मूर्तियों की भी पूजा करती हैं पूजने के बाद प्रतिमाएं फिर से उसी 'कुंडारे' में रख दी जाती हैं। 'कुंडारा' पूर्ववत् किसी सुरक्षित स्थान में रख दिया जाता है। यह क्रम भी करीब आठ या नौ दिन चलता है। अन्तिम दिन घर की सभी सधवा स्त्रियाँ 'गणगोर' की पूजा करतीं हैं। इसी दिन दोपहर को 'गणगोर' का विसर्जन किसी कुंए या गंगाजी में कर दिया जाता है। यह 'गणगोर' विसर्जन ही 'गणगोर' विदा कहलाती है। लड़की की विदाई का सा ही महत्व 'गणगोर-विदा' को भी दिया जाता है अतएव विदाई के पूर्व 'सगुण' विचार कट्टरता से किया जाता है। इस विचार के कारण, दिन के अनुकूल न पड़ने पर कभी-कभी गोर-पूजन दस या ग्यारह दिन तक भी चलता रहता है।

आम मान्यता है कि 'गोरमाता' कन्या-रूप में हमारे घर आतीं हैं। कुछ दिनों बाद वे अपना विवाह 'ईसर' (शिव) से तय कर लेती हैं, और तब 'ईसर' उनको ब्याहने आते हैं। 'ईसर' के भाई 'कान्हा' और बहन 'रोवाँ' भाई के विवाह में सम्मिलित होने आते हैं और मालिन, फूलों भरी डलिया व पानी भरा 'दोघड़' लिये, गृह प्रवेश करती नव-वधू का सगुण मनाने आती हैं। शायद मारवाड़ में पानी और हरियाली के अत्य

धिक अभाव और सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति में ही कृषि के महत्व के कारण ही, प्रत्येक हिन्दू-घर में (विशेषतः मारवाड़ी घरों में) पानी और हरियाली को इतना अधिक महत्व दिया गया है। हमारी सेवाओं से प्रसन्न हो विदाई से पहले 'गणगोर माता' सुहाग और धन-धान्य–वृद्धि का आशीर्वाद देती जाती हैं।

प्रचलित प्रथानुसार विवाह के दिन वर-वधू दोनों ही उपवास करते हैं। इस दिन भी 'गणगोर' पूजन की उक्त सभी विधियाँ दुहराई जाती हैं। अन्तर केवल इतना होता है कि इस मौके पर सिर्फ 'गोर' प्रतिमा ही बनाई जाती है और 'कुंडारे' के बदले एक छोटा सा 'घरवा' बनाया जाता है। इस 'घरवा' को विभिन्न रंगों से चित्रित किया जाता है और जिस लड़की की शादी होती है वही इसकी पूजा करती है। इस पूजा को कराने का अधिकार मामी को ही होता है। यदि मामी न हों, या विधवा हों तो फिर चाची, भाभी आदि कोई इस पूजा को कराती हैं। किसी के न रहने पर कुल-पुरोहित की स्त्री पूजा करा देती है, पर माँ या दादी इस काम को कदापि नहीं करतीं। 'गोर' पूजने पर लड़की को फलाहार करा दिया जाता है। लड़की के बिदाई के दिन यह 'गोर माता' तथा 'घरवा' दोनों ही लड़की के साथ उसकी सुसराल चले जाते हैं। वधू का गृह-प्रवेश होने पर अन्य कुल-देवों की पूजा तथा अन्य कुल रीतियाँ की जाती हैं।

विवाहोपरान्त आयी पहली साल की 'गणगोर' विशेष उत्सव के साथ उपर्युक्त विधि से पूजी जाती है। इस बार विवाहिता लड़की के साथ चार, या छः कुमारियों का होना जरूरी होता है। सात या पाँच लड़कियों का समूह शुभ समझा जाता है। विवाह

क बाद आयी पहली गणगोर पूजने के लिये विवाहिता लड़की अनिवार्य रूपेण पीहर आ जाती हैं। अगली साल से वह भी अन्य विवाहिताओं की तरह 'गणगोर' विदा के दिन ही पूजा करती है। तीसरे या पाँचवें साल 'गोर-उजमना' (उद्यापन) होता है। यह, निश्चित तौर से ससुराल में ही होता है। इसमें 'गणगोर' विदा के दिन ही पूजा होती है। इस अवसर पर विशेष उत्सव मनाया जाता है व घर के लोगों को खिला-पिला कर वस्त्रादि दिया जाता है।

उपर्युक्त कथा से यह साफ हो जाता है कि गृह-प्रवेश के अवसर पर गोर-पूजा का प्रश्न ही नहीं उठता। इस कथा के आधार पर यह भी लगता है कि विरोध का पीहर में होना ही अधिक सम्भव है। यदि ससुराल में विरोध का होना मान ही लिया जाय तो भी इस पद से सिर्फ इतना ही प्रमाणित होता है कि प्रचलित निरर्थक रूढ़ियों के विरुद्ध भी मीराँ ने आवाज उठायी जिसके कारण उनको कटु अनुभव करने पड़े, अर्थात् घरवालों का गहरा विरोध सहन करना पड़ा और व्यथित मीराँ गा उठीं :–

"नहीं हम पूजाँ गोरज्याँ जी, नहीं पूजाँ अनदेव।
परम सनेही गोविन्दो, थे काँई जानो म्हाँरो भेव।"

परिशिष्ट

मीराँ सम्बन्धी कुछ प्रसंग

नाभादास—'भक्तमाल' रचना काल वि० सं० १६४२ के बाद ।
मीराँ के जीवन-वृत्त सम्बन्धी बहि:साक्ष्यों में सर्वाधिक प्रामाणिक माना जाता है ।

"सदरिस गोपिन प्रेम प्रगट, कलिजुगहिं दिखायो ।
निरअंकुश अति निडर, रसिक जस रसना गायो ।
दुष्टनि दोष विचारि, मृत्यु को उद्दिम कीयों ।
बार न बाँको भयो, गरल अमृत ज्यों पीयों ।
भक्ति निसान बजाय के, काहू ते नाहि न लजी ।
लोक लाज कुल शृंखला, तजि मीराँ गिरधर भजी ।"

हरीराम व्यास, 'बानी' इसमें कुछ समकालीन भक्तों का उल्लेख है । मीराँ-विषयक भी इसमें दो पद मिलते हैं व्यास जी ने वि० सं० १६२२ के लगभग हित हरिवंश का शिष्यत्व स्वीकार किया अत: यह ग्रंथ सम्भवत: १६२२ के बाद का ही हो यही अधिक संगत प्रतीत होता है ।

"इतनौं है सब कुटुम हमारौ :
सैन, धना अरु नाभा, पीपा 'कबीर' रैदास चमारौ ।
रूप सनातन कौ सेवक गंगल भट्ट सुढारौ ।
सूरदास, परमानन्द, मेहा, मीराँ भक्ति विचारौ ।
ब्राह्मन राजपुत्र कुल उत्तम, तेऊ करत जाति कौ गारौ ।

आदि अंत भक्तनि कौ सर्वसु राधा वल्लभ प्यारौ।
आसू कौ हरिदास रसिक हरिवंश न मोहि बिसारौ।
इहि पथ चलत स्याम स्यामा कै व्यासहि बोरौ भावै तारौ।"

"बिहारहि स्वामी बिनु को गावै।
बिनु हरिवंशहि राधा-वल्लभ को रस-रीति सुनावै।
रूप सनातन बिनु को बृन्दा विपिन माधुरी पावै।
कृष्णदास बिनु गिरिधर जू कों को अब लाड़ लड़ावै।
मीरा बाई बिनु को भक्तनि पिता जानि उर लावै।
स्वारथ परमारथ जैमल बिनु को संत बंधु कहावै।
परमानंददास बिनु को अब लीला गाय सुनावै।
सूरदास बिनु पद रचना कौं कौन कवि हि कहि आवै।
और सकल साधुन बिनु को अब यह कलिकाल कटावै।
व्यास दास इन सब बिनु को अब तन की तपति बुझावै।"

प्रियादास–'भक्तमाल' की टीका, इसमें मीराँ विषयक सभी प्रचलित जनश्रुतियों का संग्रह किया गया है।

"मेरतो जन्मभूमि, झूमि हित नैन लागे,
पगे गिरधारीलाल पिता ही के धाम में।
राना के सगाई भई करी व्याह सामानई,
गई मति बूड़ि, वा रंगीले घनस्याम में।
भाँवरे परत, मन साँवरे सरूप माँझ,
ताँवरे सी आवे, चलिबे को पति गाम में।
पूछें पिता माता, पट आभरन लीजिये जु,
लोचन भरत नीर कहा काम दाम में। (१)

देवौ गिरधारी लाल, जौ निहाल कियौ चाहौ,
और धन माल सब राखियै उठाय के।
बेटी अति प्यारी, प्रीति रंग चढ़्यौ भारी,
रोय मिली महतारी, कही लीजिये लड़ायकै।
डोला पधराय दृग दृगसों लगाय चलीं,
सुख न समाय जाय, प्रान पति पायके।
पहुंची भवन सासु देवी पै गवन कियौ,
तिया अरु वर गंठ जोरी कर्यौ भाय कै। (२)

देवी के पुजायबे कौं, कियौ लै उपाय सासु,
वर पै पुजाइ, पुनि बधू पूजि भाखियै।
बोली जू बिकायौ माथौ, लाल गिरधारी हाथ,
और कौन नयै, एक वहै अभिलाखियै।
बढ़त सुहाग याके पूजे ताते पूजा करौ,
करौ जिनि हठ सीस पायनि पै राखियै।
कही बार बार तुम यही निरधार जानौ,
वही सुकुमार जायै वारि फेरि नाखियै। (३)

तब तौ खिसानी भई, अति जरि बरि गई,
गई पति पास यह बधू नहीं काम की।
अब ही जवाब दियौ, कियौ अपमान मेरौ,
आगे क्यों प्रमान करै ? भरै स्वास चाम की।
राना सुनि कोप कर्यौ धर्यौ हियो मारिवोई,
दई ठौरि न्यारी देखि, रीझि मति बाम की।
लालनि लड़ावै गुन गायकै मल्हावै,
साधु संग ही सुहावै, जिन्है लागी चाह स्याम की।(४)

आय कै ननंद कहै, गहै किन चेत भाभी,
साधुनिसों हेत मैं कलंक लागै भारियै।
राना देसपती लाजै, बाप कुलरती लाजै,
मान लीजै बात बेगि संग निवारिय।
लागे प्रान साथ संत, पावत अनन्त सुख,
जासों दुख होय, ताको नीके करि टारियै।
सुनि कै कटोरा भरि गरल पठाय दियौ,
लियौ करि पान, रंग चढ़्यौ यों निहारियै। (५)

गरल पठायौ, सो तौ सीस लै चढ़ायौ,
संग त्याग विष भारी, ताकी झार न संभारी है।
राना ने लगायौ चर, बैठे साधु ढिग ढर,
तबहीं खबर कर मारौ, यहै धारी है।
राजै गिरधारी लाल, तिनहीं सों रंग जाल,
बोलत हंसत ख्याल कान परी प्यारी है।
जाय कै सुनाई, भई अति चपलाई,
आयौ लियै तरवार, दै किवार खोलि न्यारी है (६)

जाके संग रंग भीजि करत प्रसंग नाना,
कहाँ वह नर गयौ, वेगि दै बताइये।
आगे ही बिराजै, कछू तो सों नहीं लाजै,
अमूं देख सुख साजै, आँखें खोलि दरसाइये।
भयोई खिसानौ राना लिख्यौ चित्रभीत मानौ,
उलट पयान कियौ, नेकु मन आइयै।
देख्यो हूं प्रभाव यै पै भाव में न भिद्यौ जाइ,
बिना हरि कृपा कहौ कैसे करि पाइयै। (७)

विषई कुटिल एक भेष धरि साधु लियौ,
कियौ यों प्रसंग मोसों अंग संग कीजियै ।
आज्ञा मों को दई आप लाल गिरधारी अहो,
सीस धरि लई करि भोजन हूं लीजिये ।
संतनि समाज में बिछाय सेज बोलि लियौ,
सीस धरिलई करि भोजन हूं लीजिये ।
संतनि समाज में बिछाय सेज बोलि लियौ,
संक अब कौन की निसंक रस भीजियै ।
सेत मुख भयौ, विषे भाव सब गयौ,
नयौ पाँयन पै आय मोकों भक्ति दान दीजियै (८)

रूप की निकाई भूप अकबर भाई हिये,
लिये संग तानसेन, देखिबे को आयो हैं ।
निरखि निहाल भयौ छबि गिरधारी लाल,
पद सुखजाल एक तब ही चढ़ायो है ।
वृन्दावन आई जीव गुंसाई जू सो मिलिझली,
तिया मुख देखिबे को पन लै छुटायौ है ।
देखी कुंज-कुंज लाल प्यारी सुख पुंज भरी,
धरी उर माँझ आय देख बन गायो है ।(९)

राना की मलीन मति देखि बसी द्वारावती,
रति गिरधर लाल, नित ही लड़ाइयै ।
लागी चटपटीं भूप भक्ति कौ सरूप जानि,
अति दुख मानि, विप्र श्रेणी लै पठाइयै ।
बेगि लैके आवौ मोंको प्रान दै जिवावौ,

अरी गयो द्वार धरनौ दै विनती सुनाइयै ।
सुन विदा होन गई राय रणछोड़ ज पै,
छांड़ौ राखौ हीन लीन भई नहीं पाइयै (१०)

ध्रुवदास—'भक्तनामावली' रचना-काल लगभग वि० सं० १६९८।

"लाज छांड़ि गिरधर भजी, करी न कछु कुल कानि,
सोई मीराँ जग विदित, प्रगट भक्ति को खानि ।
ललिता हू लइ बोलिके, तासों हो अति हेत,
आनंद सों निरखत फिरै, वृन्दावन रस खेत ।
नृत्यत नूपुर बाँधि कै, नाचत लै करतार,
विमल हियौ भक्तिनि मिली, तृन सम गन्यौ संसार ।
बंधुनि विष ताकों दियौ, करि विचार चित आन,
सो विष फिरि अमृत भयौ, तब लागे पछितान ।"

वल्लभ-सम्प्रदायी ग्रंथ—'८४ और २५२ वैष्णवण की वार्ता ।' इनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है । भक्तों द्वारा लिखित इन ग्रंथों की पौराणिक महत्ता ऐतिहासिक महत्ता से अधिक है ।

'८४ वैष्णवणकी वार्ता'में निम्नाँकित तीन उद्धरण प्राप्त हैं।

१—'गोविन्द दुबे साचोरा ब्राह्मण, तिनकी वार्ता ।'

और एक समें गोविन्द दुबे मीराँ बाई के घर हुते तहाँ मीराँ बाई सों भगवद्वार्ता करत अटके । तब श्री आचार्य जी ने सुनी जो गोविन्द दुबे मीराँ बाई के घर उतरे हैं, सो अटके हैं, तब श्री गुसाँई जी ने एक श्लोक लिखि पठायो सो एक ब्रजवासी के हाथ पठायौ तब वह ब्रजवासी चल्यौ सो वहाँ जाय पहुंचौ, ता समय गोविन्द दुबे संध्या बंदन करत हुते तब ब्रजवासीने आयकें वह पत्र

दीनों सो पत्र बाँचि के गोविन्द दुबे तत्काल उठे, तब मीराँ बाई ने बहुत समाधान कीयो, परि गोविन्द दुबे नें फिर पाछें न देखौ।"

(प्रसंग २ चौ० वै० की वा० डाकोर सं० १९६० पृ० १२६, १२७)

२—"'अथ मीराँ बाईके पुरोहित रामदास 'तिनकी वार्ता"।

सो एक दिन मीराँबाई के श्री ठाकुर जी के आगे रामदास जी कीर्तन करत हुते सो रामदास जी श्री आचार्य जी महाप्रभून के पद गावत हुते, तब मीराँ बाई बोली जो दूसरौ पद श्री ठाकुर जी कौ गावो तब रामदास जी नें कह्यौ मीराँ बाई सों जो अरे दारी राँड यह कौन को पद है। यह कहा तेरे खसम कौ मूंड़ है जो जा आज से तेरौ मुहड़ो कबहू न देखूंगो। तब तहाँ ते सब कुटुम्ब को लैं के रामदास जी उठि चले तब मीराँ बाई नें बहुतेरो कह्यौ परि रामदास जी रहे नाहीं। पाछें फिरि कें वाको मुख न देख्यौ। ऐसें अपने प्रभून सों अनुरक्त हुते। सो वा दिन तें मीराँ बाई कौ मुख न देख्यौ, वाकी वृत्ति छोड़ दीनी, फेर वाके गाँव के आगे होय के निकसे नाहीं। मीराँ बाई ने बहुत बुलाये परि वे रामदास जी आये नाहीं। तब घर बैठे भेंट पठाई सोई फेरि दीनी और कह्यौ जो राँड तेरों श्री आचार्य जी महाप्रभून ऊपर समत्व नाहीं जो हमको तेरी वृत्ति कहा करनी है।"

(प्रसंग १ चौं० वै० की वा० डाकोर सं० १९३० पृ० १६१-१६२

३—"'अथ कृष्णदास अधिकारी 'तिनकी वार्ता'।

सो वे कृष्णदास शूद्र एक बेर द्वारका गये हुते सो श्री रणछोर जी कें दर्शन करिकें तहाँ ते चले सो आपन मीराँ बाई के गाँव आये सो वे कृष्णदास मीराँ बाई के घर गये तहाँ हरिवंश व्यास आदि

दे विशेष सह् वैष्णव हुते सो कादूं कों आयै आठ दिन काहू को आये दश दिन काहू को आये पंद्रह् दिन भये हुते तिनकी विदा न भई हुती और कृष्णदास नें तौ आवत ही कही जो हूं तो चलूंगो। तब मीराँ बाई ने कही जो बैठो तब कितनेक मोहर श्रीनाथ जी को देन लागी सो कृष्णदास ने न लीनी और कह्यौ जो तू श्री आचार्य जी महाप्रभून की सेवक नाहीं होत ताते तेरी भेंट हम हाथ ते छूवेंगे नाहीं सो ऐसे कहिकें कृष्णदास उहाँ ते उठि चले।"

(प्रसंग १ चौ० वै० की वा० डाकोर सं० १९६०)

'२५२ वैष्णवण की वार्ता' में निम्नाँकित दो उद्धरण प्राप्त हैं।

१—'श्री गुंसाई जी के सेवक अजबकुंवर बाई, तिनकी वार्ता' पृष्ठ १०६-१०७।

सो वे अजबकुंवर बाई मेड़ते में रहती हती मीराँ बाई की देवरानी हती और उहाँ एक दिन श्री गुंसाई जी पधारे जब अजबकुंवर बाई कूं साक्षात पूर्ण पुरुषोत्तम के दर्शन भए। जब अजबकुंवर श्री गुंसाई जी की सेवक भई और अष्ट प्रहर श्री गुंसाई जी के चरणारविंद में चित्त लाग्यौ रहै जब श्री गुंसाई जी पधारवे लगे तब अजबकुंवर बाई कु मुर्छा आई तब श्री गुंसाई जी वाँकी ऐसी दशा देख के चार दिन उहाँ बिराजै और अजबकुंवर बाई कूं पादुका जी पधराय दीये तब अजबकुंवर बाई शुद्ध पुष्टिमार्ग की रीति प्रमाणें सेवा करन लागी और श्री नाथ जी अजबकुंवर बाई के संग नित्य चोपर खेलते। अजबकुंवर बाई की भक्ति से प्रसन्न हो श्रीनाथ जी ने सदा मेवाड़ में रहने का वचन दिया जिसके कारण वे अब तक मेवाड़ में विराजे हैं।"

(वैष्णव रामदास जी गुरु श्री गोकूलदास जी ने छपवाया-

रणहर पुस्तकालय डाकोर सं० १९६०)

२–'श्री गुंसाईं जी के सेवक हरिदास बनिया, तिनकी वार्ता' के अन्तर्गत पृष्ठ ६४-६५।

"सो वे हरिदास बनिया मेरता गाम में रहते। वा गाम में एक ही वैष्णव हते और वा गाम को राजा जैमल हतो सो स्मार्त धर्म में हतो और एकादशी पहली करते हते। और जैमल राजा की बेन को घर हरिदास बनिया के सामे हतो। सो जब श्री गुंसाईं जी हरिदास के घर पधारे हते तब जैमल की बेन कूं बारी में सूं श्री गुंसाईं जी के साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम के दर्शन भये। जब जैमल की बेन ने पत्र द्वारा श्री गुंसाईं जी को विनती लिखके पत्र द्वारा सेवक भई काहे तें वे पड़दा में से बाहर नहीं निकसते जाँसूं पत्र द्वारा सेवक भए।"

नागरीदास–'पद-प्रसंग-माल' से उद्धृत। यह अंश नाभाजी, ध्रुवदास जी के आदि ग्रंथों के समान प्राचीन न होते भी विशेष महत्व का है क्योंकि नागरीदास जी राजस्थान के उसी राठौड़-वंश के थे, जिस वंश में मीराँ बाई का जन्म हुआ था।

"मेड़तें मीरा बाई तिनकों राना के छाटे भाई सों ब्याही, यह जग-प्रसिद्ध हैं ही, सो कितनेक दिन उपरांत काहू समें राना के वा भाई को देहान्त भयो, अरु राना हुते सो मीराबाई सों दुष पाय रहे हते, ये वैष्णवनि को सत्संग करते यातें वा समें राना नें कहाई, जो यह औसर हैं तुम भरता के संग सती होहु, तब मीरा बाई भगवत रंग आगें लगे रहै, त्यौंही लगे रहे या समें कछू षेदमानी नाहीं

अरु या बात के उत्तर कों एक विष्णु पद नयो बनाय राना कों लिषि पठायो, पद बहुत प्रसिद्ध भयो।"

पुनः अन्य पद-प्रसंगः–"मीरा बाई सौं राना बहौत दुष पायें रहैं, राना के घर की रीततें इनके भिन्य रीत, यह भगवत संबंध सत्य संग विसेस करें, देह संबंध को नातो व्यौहार कछु न मानें, राना बहुत समुझाय रह्यौ, निदान एक विष को प्यालो उनकों पठायो, कह्यो चरनामृत को नाम लेकें दीजियो, उनको प्रण हैं, चरणामृत के नाम तें पी ही जायंगे, सो ऐसें ही भयो, जानि बूझ पीयो, राना तो इनके मरिबे की राह देखत रह्यौ, अरु वह झाँझ मृदंग संग लैकें परम रंग सों एक नयो पद बनाय ठाकुर आगें गावत भये, पद बहुत प्रसिद्ध भयो।"

पुनः अन्य पद-प्रसंगः–"राना को छोटो भाई मीराँ को देह संबंध को भर्ता हो, सो ताको परलोक भयो, ता पीछे मीरा बाई गंगादिक तीरथ करि कें अरु श्री वृन्दाबन हूं आये, तहाँ जीऊ गुंसाई जू को प्रण स्त्री के न देखिबे को छुटाय सब सौं गुरु गोविंद वत सन मान सत्यसंग करि द्वारिका को चले, ऊहाँ बास करिबै कें लियें तहाँ एक मारग में नयो पद बनायो, बहुत प्रसिद्ध भयो।"

पुनः पद-प्रसंगः–"सो या भांति मनोरथ करत यह पद गावत द्वारिका पहुंचे, तहाँ कई दिन रहे ता पीछें मीराँ बाई के संग प्रौहितादिक जे राना के लोक है, तिन कह्यौ अब बहुत दिन भये हैं अब देस कौं चलों, राना की आज्ञा हैं। ऐसें द्वै तीन दिन कह्यो, फिरि मीरा बाई परि धरनाँ कियो, तब मीरा बाई ठाकुर श्री रनछोड़ जू सौं विदा ह्वै को नाँव लें मंदिर में अकेले ही जाय

महा-आरती सहित एक नयो पद बनाय गायो। सो यह पद गायें हूं उत तें न ढरे, तब महा-आरती प्रेमावेस सहित एक और पद बनाय गायो, तब ही ठाकुर आप में उनकों याही शरीर तें लीन करि लीनें, देह हूं न रही, सो जा पद के गायें लीन भये।"

पुनः अन्य पद प्रसंगः-"मीराँबाई की कई भांति की चर्चा निंदक जन राना आगें बहुत करन लागे, तब एक समें राना नें अपनें अंतःपुर की एक स्त्री कों पठाई कह्यौ कि आधी राति उपरांत जहाँ वे होय तहाँ चली जाइये काहू की हटकी मत रहिये सो वानें ऐसे ही कियो, मीराँ बाई अटारी पर सोई जागत ही सौंहें चंद्रमा कौं देखि हरि प्रीतम के अंतराय को विरह सहतहीं उनकी भावना करि करि परी उसास लेतही, इतने हीं ये जाय ठाड़ी भई, ताकूं मीरा बाई कह्यौ, तनकेक बैठि कें हमारो दुख सुनौं, या समें हमकूं तुम बड़े श्रोता मिले, सो जद्यपि वह बिजाती ही, परंतु ज्यों कोऊ अति अधीर अनुरागी होय, ताकूं बिजाती सजाती को ज्ञान नाहीं रहें, वहि अपने चित्त की कहें सो कहें ही कहें, यातें वाके आगें वाही वेर एक पद बनाय बनाय कें गावन लगी, सो पद सुनि इनकी अवस्था देखि वह आई हुती सो परम अनुराग में मूरछित ह्वै गई, इनकी ही निकटवर्ती परम वैष्णव भई, फिरि राना के अंतःपुर में न गई, फिरि राना काह स्त्रीनि कौं इन पै पठावै सोई नट जाइ, अरु कहें ज्यो उन पैं जा जाय हैं, सो बावरी ह्वे जात हैं, तातें हम न जाहिगीं, यह बात इन कै बहुत प्रसिद्ध भई, सो पिछली रात के समै जा पद के सुनै तें राना की सहचरी की उन्मत्त दशा ह्वै गई।"

'वीर-विनोद'—राजस्थान का सर्वाधिक प्रामाणिक इतिहास। श्री वरवे देवीदीन की ख्यात।

१—'मेवाड़ का प्राचीन इतिहास शीर्षक के अन्तर्गत।'

"लेकिन इसमें संदेह नहीं कि इस खान्दान का बड़प्पन प्राचीन काल से वर्तमान समय तक प्रकाश में बना रहा है। उदयपुर के महाराणा 'हिन्दुवा सूरज' हैं। राणा उस पोरस के खान्दान में से हैं, जिस बहादुर हिन्दुस्तानी को सिकन्दर ने फतह कियाथा।" 'तवारीखों के पृष्ठ' के अन्तर्गत पृष्ठ २३० पर:—"इसके सिवा मुसलमानों के मुवाफिक किसी मजहब के लोगों से इस खान्दान ने द्वेष भाव नहीं रखा, जिसका पहला सुबूत तो यह ह कि जैन मतवालों ने मेवाड़ को पनाह की जगह मान कर अपने मत के सैकड़ों बड़े बड़े मंदिर बनवाये, और यहाँ के राजाओं ने उनके बनने में पूरी मदद दी। सिवा इसके, अगर्चे यहाँ के राजा प्राचीन काल से शैव हैं परन्तु उन्होंने नाथ-द्वारा व काँकड़ौली के मतावलम्बियों को बादशाह आलमगीर के भय से बचाया और शाक्त मत वालों को भी कभी न सताया, जिनके इस राज्य में बड़े-बड़े प्रतिष्ठित मंदिर हैं। इस राज्य में सब मजहब के पेशवाओं का आदर सम्मान होता है।"

२—'महाराणा संग्रामसिंह' शीर्षक के अन्तर्गत पृष्ठ ३५५ पर।

"लेकिन रायमल के कम उम्र होने के कारण उसके काका भीम ने ईडर का राज्य छीन लिया। तब राव सूर्यमल का पुत्र राव रायमल महाराणा साँगा की शरण में चला आया। महा-

राणा ने अपनी बेटी की शादी उसके साथ कर देने का इकरार किया।"

पृष्ठ ३६२ के अन्तर्गतः—"महाराणा साँगा के 'पाटवी' याने सबसे बड़े पुत्र भोजराज थे, जिनको मेड़ता के मेड़तिया राजा बीरमदेव की बेटी और जयमल्ल की बहिन ब्याहीं गयीं थीं। इन राजकुमार का देहान्त महाराणा की मौजूदगी में हो चुका था। इसलिए राजकुमार रत्नसिंह जो राठौड़ बाघा की बेटी महाराणी धना बाई के पेट से पैदा हुए थे भोजराज के मरने के बाद राज्य के वारिस ठहरे।"

वहीं पृष्ठ ३७१ परः—"इनमें से धना बाई के पेट से बड़े कुंवर रत्नसिंह पैदा हुए और बूंदी के राव भाँडा की पोती और नरवद की बेटी महाराणी कर्मवती बाई से महाराणा विक्रमादित्य और उदयसिंह पैदा हुए। इन महाराणा के सबसे बड़े राजकुमार भोजराज थे, जिनकी शादी मेड़ता के राजा बीरमदेव के छोटे भाई रत्नसिंह की बेटी व जयमल्ल के काका की बेटी मीराँ बाई के साथ हुई थीं, लकिन उक्त राजकुमार का देहान्त महाराणा साँगाँ के सामने ही हो गया था। कर्नल टाड वगैरह कितने ही मुवरिखों ने मीराँ बाई को महाराणा कुम्भा की राणी लिखा है, लेकिन यह बात गलत है क्योंकि मीराँ बाई का भाई जयमल्ल तो वि० सं० १६२४ में अकबर की लड़ाई में चित्तौड़ पर मारा गया और महाराणा कुम्भा का देहान्त वि० १५७५ में हो गया था, फिर न मालूम कर्नेल टाड ने यह बात अपनी किताब में कहाँ से दर्ज की।"

वहीं, फुटनोट (१) मेंः—"सोचना चाहिये कि महाराणा कुम्भा

के वक्त दूदा को मेड़ता ही नहीं मिला था, फिर दूदा की पोती मीराँ बाई 'मेड़तणी' कुम्भा की राणी किस तरह हो सकती हैं ?

वहीं, फुटनोट (२) में:–"महाराणा कुम्भा के देहान्त के ५९ वर्ष पीछे बाबर और राणा साँगाँ की लड़ाई में मीराँबाई का बाप रत्नसिंह मारा गया, तो महाराणा कुम्भा के वक्त में (टाड साहब का लिखना ही ठीक समझा जाय तो) रत्नसिंह की अवस्था चालीस वर्ष से कम न होगी, इस हिसाब से मारे जाने के वक्त सौ वर्ष के आसरे होनी चाहिये, और इतनी उमर के आदमी का बहादुरी के साथ लड़ाई में मारा जाना असंभव है।"

३–'महाराणा रत्नसिंह' के अन्तर्गत पृष्ठ १ पर :–

"महाराणा साँगा के सात पुत्र हुए। १–पूर्णमल्ल, २–भोज-राज, ३–पर्वतसिंह ४–रत्नसिंह, ५–विक्रमादित्य, ६–कृष्णसिंह और उदयसिंह। पूर्णमल्ल, भोजराज, पर्वतसिंह और कृष्णसिंह–चार तो महाराणा साँगा के सामने ही परलोक सिधारे, इनमें से २ भोजराज जो सोलंखी रायमल्ल की बेटी के गर्भ से जन्मे थे उनका विवाह, मेड़ता के राव दूदा जोधावत के पाँचवें बेटे रत्नसिंह की बेटी मीराँ बाई के साथ हुआ था। मीराँ बाई बड़ी धार्मिक और साधु संतों का सम्मान करने वाली थी यह विराग के गीत बनाती और गाती, इससे उसका नाम अब तक बहुत प्रसिद्ध है।

आगे, पृष्ठ ३ पर:–"महाराणा रत्नसिंह जो जोधपुर के राव बाघा सूजावत के बेटी की गर्भ से उत्पन्न हुए थे वि० सं० कार्तिक शुक्ल ५–१५८४ को चित्तौड़ की गद्दी पर बैठे थे। वि० सं० १५८८ में शिकार को गये राणा सौतेले भाई के षड़यंत्र से मारे

गये। १५८८ में विक्रमादित्य राणा हुए। विक्रमादित्य १५९२ वि० सं० में बनबीर द्वारा मारा गया।

वहीं, फुटनोट (३) :—"महाराणा कुम्भा से १०० वर्ष पीछे मीराँ बाई के चचेरे भाई जयमल्ल का मारा जाना लिखा है, इस हालत में जयमल्ल की बड़ी बहन मीराँ बाई कुम्भा की राणी किस तरह समझी जावें।

वहीं, फुटनोट (४):—"मीराँबाई महाराणा विक्रमादित्य और उदयसिंह के समय तक जीती रहीं और महाराणा ने उसको जो दुख दिया वह उसकी कविता में स्पष्ट है।

रायबहादुर हीराशंकर गौरीशंकर जी ओझा— 'उदयपुर राज्य का इतिहास', आधुनिक खोज पूर्ण राजस्थान का सर्वाधिक प्रामाणिक इतिहास।

'महाराणा संग्रामसिंह' शीर्षक के अन्तर्गत पृष्ठ ३४७ पर।

"ईडर के राव भाँण के दो पुत्र सूर्यमल और भीम थे। राव भाँण का देहान्त होने पर सूर्यमल गद्दी पर बैठा और १८ मास तक राज्य करके मर गया, सूर्यमल की जगह उसका पुत्र रायमल ईडर का राजा बना, परन्तु उसके कम उम्र होने के कारण उसका चाचा भीम उसको गद्दी से उतार स्वयं राज्य का स्वामी बन गया। रायमल ने वहाँ से भाग कर महाराणा की शरण ली। महाराणा ने अपनी पुत्री की सगाई उसके साथ कर दी। कुछ दिनों बाद भीम भी मर गया और उसका पुत्र भारमल गद्दी पर बैठा। युवा होने पर रायमल ने महाराणा की सहायता से फिर ईडर पर अधिकार कर लिया।

पृष्ठ ३५८ पर:—"महाराणा साँगा का ज्येष्ठ कुंवर भोजराज

था, जिसका विवाह मेड़ते के राव बीरमदेव के छोटे भाई रत्नसिंह की पुत्री मीराँ बाई के साथ वि० सं० १५७३ (ई० सन् १५१६) में हुआ था। परन्तु कुछ वर्षों बाद महाराणा की जीवित दशा में ही भोजराज का देहान्त हो गया, जिससे उसका छोटा भाई रत्नसिंह युवराज हुआ। कर्नल टाड ने जनश्रुति के अनुसार मीराँ बाई को महाराणा कुम्भा की राणी लिखा है और उसी आधार पर भिन्न भिन्न भाषाओं के ग्रंथों में भी वैसा ही लिखा जाने से लोग उसको महाराणा कुम्भा की राणी मानने लग गए हैं जो भ्रम ही है।

मीराँ बाई मेड़ते के राठोड़ राव दूदाजी के चतुर्थ पुत्र रत्नसिंह की जिसको दूदा ने निर्वाह के लिये १२ गाँव दे रखे थे, इकलौती पुत्री थीं। उसका जन्म कुड़की गाँव में वि० सं० १५५५ में (ई० सन् १४९८) के लगभग होना माना जाता है। बाल्यावस्था में ही उसकी माता का देहान्त हो गया, जिससे राव दूदा ने उसे अपने पास बुलवा लिया और वहीं उसका पालन पोषण हुआ। वि० सं० १५७२ (ई० सन् १५१५) में राव दूदा जी का देहान्त होने पर बीरमदेव मेड़ते का स्वामी हुआ। गद्दी पर बैठने के दूसरे साल उसने उस का विवाह महाराणा साँगा के कुंवर भोजराज के साथ कर दिया। विवाह के कुछ वर्षों बाद युवराज भोजराज का देहान्त हो गया। यह घटना किस सम्वत् में हुई यह निश्चित रूपेण ज्ञात नहीं। तो भी सम्भव है कि यह वि० सं० १५७५ (ई० सन् १५१८) और १५८० १५२३) के बीच किसी समय हुई हो।

मीराँ बाई बचपन से ही भगवद् भक्ति में रुचि रखती थीं

इसलिये वह इस शोकप्रद समय में भी भक्ति में ही लगी रहीं। यह भक्ति उसके पितृ-कुल में पीढ़ियों से चली आती थी। दूदाजी, बीरमदेव और जयमल सभी परम वैष्णव थे। वि० सं० १५८४ (ई० सन् १५२७) में उसका पिता रत्नसिंह महाराणा साँगा के और बाबर की लड़ाई में मारा गया। महाराणा साँगा की मृत्यु के बाद रत्नसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ और उसके भी वि० सं० १५८८ (ई० सन् १५३१) में मरने पर विक्रमादित्य मेवाड़ की गद्दी पर बैठा। इस समय से पूर्व ही मीराँबाई की अपूर्व भक्ति और भावपूर्ण भजनों की ख्याति दूर दूर तक फैल चुकी थी और सूदूर स्थानों से साधु-सन्त उससे मिलने आया करते थे। इसी कारण विक्रमादित्य उससे अप्रसन्न रहता और उसको तरह तरह की तकलीफें दिया करता था, ऐसा प्रसिद्ध है। उसने मीराँ बाई को मरवाने के लिये विष देने आदि के प्रयोग भी किये परन्तु वे निष्फल हुए। मीराँ बाई की स्थिति जानकर उसको बीरमदेव ने मेड़ते बुला लिया। वहाँ भी उसके दर्शनार्थी साधु-संतों की भीड़ लगी रहती थी। जब जोधपुर के राव मालदेव ने बीरमदेव से मेड़ता छीन लिया तब मीराँ बाई तीर्थ यात्रा को चली गई और द्वारिकापुरी में जाकर रहने लगीं, जहाँ वि० सं० १६०३ (ई० सन् १५४६) में उसका देहान्त हुआ।

मीराँ बाई का मलार राग तो बहुत प्रसिद्ध है। 'उसने राग गोविन्द' नामक कविता का एक ग्रंथ भी बनाया था। मीराँ बाई के सम्बन्ध की कई तरह की बातें पीछे से प्रसिद्ध हो गई हैं जिनमें ऐतिहासिक तत्व नहीं है।"

पृष्ठ २६१पर:—"विक्रमादित्य और उदयसिंह को महाराणा

साँगा ने यह बड़ी जागीर (रणथम्भोर) रत्नसिंह की आन्तरिक इच्छा के विरुद्ध और अपनी प्रीतिपात्र महाराणी करमेती के विशेष आग्रह से दी परन्तु अन्त में उसका परिणाम रत्नसिंह और सूरजमल दोनों के लिये ही घातक हुआ।"

पृष्ठ ३८४ पर:–"भाटों की ख्यात के अनुसार महाराणा साँगा ने २८ विवाह किये थे जिनसे उसके सात पुत्र भोजराज, कर्णसिंह, रत्नसिंह, विक्रमादित्य, उदयसिंह, पर्वतसिंह और कृष्णसिंह तथा चार लड़कियाँ कुंवर बाई, गंगाबाई, पद्मा बाई और राज बाई हुई। कुंवरों में से भोजराज, कर्णसिंह, पर्वतसिंह और कृष्णसिंह तो महाराणा के जीवन–काल में ही मर गये।"

पृष्ठ ३८४ पर फुटनोट:–"भोजराज का जन्म सोलंकी रायमल की पुत्री कुंवर बाई से हुआ था। (बड़वे देवीदीन की ख्यात, 'वीर-बिनोद' पृष्ठ १)

रत्नसिंह जोधपुर के राव जोधा के पोते बाघा सूजावत की कन्या (धना बाई) धनाई (धन कुंवर) से उत्पन्न हुआ था। विक्रमादित्य और उदयसिंह बूंदी के राव भांडा की पोती और नरवद की बेटी करमेती से पैदा हुए थे।"

पृष्ठ ३५८ पर फुटनोट:–"मीराँ बाई 'मेड़तणी' कहलाती हैं जिसका आशय मेड़तिया शाखा की कन्या है। जोधपुर के राव जोधा का एक पुत्र दूदा जिसका जन्म वि० सं० १४९७ में हुआ था, वि० सं० १५१८ या उससे पीछे मेड़ते का स्वामी बना। उसी से राठोड़ों की मेड़तिया शाखा चली। दूदा का ज्येष्ठ पुत्र बीरमदेव जिसका जन्म वि० सं० १५३४ में हुआ था उस (दूदा)

के पीछे मेड़ते का स्वामी बना। उसके छोटे भाई रत्नसिंह की पुत्री मीराँ बाई थीं। महाराणा कुम्भा वि० सं० १५२५ में मारा गया जिसके ९ वर्ष बाद मीराँ के पिता के बड़े भाई बीरमदेव का जन्म हुआ। ऐसी दशा में मीराँ बाई का महाराणा कुम्भा की राणी होना सर्वथा असम्भव ही है।

महाराणा की मृत्यु के बाद कुंवर रत्नसिंह गद्दी पर बैठे वि० सं० १५८४ सौतेले भाइयों के वैमनस्य के कारण उनके रक्षक सूरजमल को शिकार के छल से मार डालने के प्रयास में खुद भी मारे गये (वि० सं० १५८८)।"

पृष्ठ ३९४ परः—"महाराणा रत्नसिंह के निस्संतान होने से उसका छोटा भाई विक्रमादित्य रणथम्भोर से आकर वि० सं० १५८८ में मेवाड़ की गद्दी पर बैठा। शासन करने के लिये वह तो बिल्कुल अयोग्य था। अपने छिछोरेपन के कारण वह सरदारों की दिल्लगी उड़ाया करता था। जिससे वे अप्रसन्न होकर अपने अपने ठिकाने चले गए और राज्यव्यवस्था बहुत बिगड़ गई।"

पृष्ठ ४०१ परः—"इतनी तकलीफ उठाने पर भी महाराणा अपनी बाल्यावस्था एवं दूसरी संगति के कारण अपना चाल-चलन सुधार न सका और सरदारों के साथ उसका व्यवहार पूर्ववत ही बना रहा जिससे वे अपने अपने ठिकाने चले गए। ऐसी दशा देख कर महाराणा रायमल के सुप्रसिद्ध कुंवर पृथ्वीराज का अनौरस पुत्र बनबीर चित्तौड़ में आया और महाराणा के प्रीति-पात्रों से मिलकर उनका मुसाहिब बन गया। वि० सं० १५९२ में एक दिन महाराणा को अपनी तलवार से मार डाला। उदय-

सिंह धाय की स्वामि-भक्ति के कारण बच गया। घमंडी बनबीर की अकुलीनता के कारण सरदार उससे घृणा करते थे। अतएव उदयसिंह की खबर पाकर सरदार गण उसको वि० सं० १५९४ में चित्तौड़ ले आये। इस प्रकार वि० सं० १५९७ में उदयसिंह अपने सारे पैतृक-राज्य का स्वामी बन गया।

ओझा जी लिखित 'राजपुताने का इतिहास' में मीराँ का जीवन-वृत्त दिया गया है वह उपर्युक्त वृतान्त से शब्द प्रति शब्द मिलता है।

हरविलास सारडा—'महाराणा साँगा'।

"मेवाड़ के राजवंश के बड़वा देवीदान जी की बही में लिखे अनुसार महाराणा के २८ राणियाँ थीं, जिनसे उनके ७ बेटे और ४ बेटियाँ हुईं। उनका सबसे बड़ा कुंवर भोजराज जिसका विवाह मेड़ते के राव बीरमदेव के छोटे भाई रत्नसिंह की बेटी प्रसिद्ध मीराँ बाई से हुआ था। वह (भोजराज) अपने पिता के सामने ही मर गया था।

वहीं, पृष्ठ ८८ पर फुटनोट:—"कर्नल टाड ने मीराँ बाई को महाराणा कुम्भा की राणी लिखा है, यह गलत है। कुम्भा सं० १५२४ (१५२५) (१५६७ई०) में मार गये। जब कि मीराँ का दादा दूदा उक्त संवत के पीछे मेड़ते का राजा हुआ। मीराँ का बाप रतनसिंह कुम्भा की मृत्यु के ५९ वर्ष पीछे खानवा की लड़ाई में मारा गया और उस मीराँ का भतीजा जयमल चित्तौड़ के धावे में, जो अकबर ने कुम्भा की मौत के ९९ वर्ष पीछे किया था। भोजराज के साथ मीराँ बाई का विवाह सं० १५७३ (१५१६ ई०) में हुआ। मीराँबाई का जन्म सं० १५५५ वि०

(१४९९ ई०) और मृत्यु द्वारिका (काठियावाड़) में सं० १६०३ (१५४६ ई०)में हुई। मीराँ बाई द्वारिका के तीर्थ स्थान में बहुत वर्षों से रहती थीं। देखो–'चतुर-कुल–चरित्र' अर्थात् मेड़ते के राठौड़ वंश का राज इतिहास और 'वीर–विनोद'।"

श्री जगदीशसिंह गहलोत–'राजपुताने का इतिहास' प्रथम भाग।

"महाराणा कुंभा संगीत-विद्या में प्रवीण था। उसके पड़-पौते राजकुमार भोजराज की स्त्री सती मीराँ बाई की मलार राग अब तक प्रसिद्ध है।"

बदनोराधीश ठाकुर गोपालसिंह राठोड़ मेड़तिया–'जयमल-वंश प्रकाश अर्थात् राजस्थान बदनोर का इतिहास' प्रथम भाग।

पृष्ठ ७१ में:–"रत्नसिंह जी–इनके कोई पुत्र नहीं हुआ। केवल एक पुत्री हुई जो मीराँ बाई के नाम से विख्यात है। मीराँ-बाई का विवाह चित्तौड़ के प्रसिद्ध महाराणा संग्रामसिंह जी के युवराज भोजराज जी से हुआ। रत्नसिंह जी को निर्वाह के लिए मेड़ता राज्य से कुड़की बाजोली आदि १२ गाँव दिये गये। वि० सं० १५८४ चैत्र शुक्ला १४(ई० स० १५२७)ता० १७ मार्च को बयाने में महाराणा संग्रामसिंह जी का मुगल बादशाह बाबर से जो प्रसिद्ध युद्ध हुआ था, उसमें ये मुसलमानों से बड़ी बीरता से युद्ध करके काम आये।

श्री शिवसिंह जी–'शिवसिंह–सरोज' पृष्ठ २५०।

"मीराँ बाई" चित्तौर की रानी

रसन कटै आन हिरटै फुटैं आन लखि नैन।
श्रवण फटैं तो सुने (कवित्त) बिन श्री राधा यश बैन।
कोऊ कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ।
कोऊ कहौ अंकिनी कलंकिनी कुनारी हौं।
कैसे सुरलोक नरलोक परलोक सब कीन में।
अलोक लोक लोकन ते न्यारी हौं।
तन जाहु मन जाहु देव गुरु जन जाहु।
जीभ क्यों न जाहु टेक टेरत न टारी हौं।
वृन्दावन वारि गिरिधारी के मुकुट पर।
पीत पटवारे की में मूरति पै वारी हौं।"

Col James Tod..........'Annals and Antiquities of Rajsthan' Vol II, Page 856.

"Merta was founded by RAO Duda of Mandor, whose son the celebrated Maldeo, erected the castle, which he called Malkot. Merta with its three hundred and sixty townships, became the appanage of his son Jaimall, and gave its name of Mertia, to the bravest of brave Clans of Rathors. Distrusted by his father and likely to be deserving of suspicion, he was banished from Marwar. He was hospitably received by Rana, who assigned to the heir of Mandor the rich district of Badnor......... The great Akbar claimed the honour of

having with his own hands sealed his fate. He immortalized the matchlock with which he effected it, and which was also the theme of Jahangir's praise, who raised a statue in honour of this defender of Chitor and rights of its infant prince."

Foot note on...... Page 856·

"Rao Duda had three sons besides Maldeo; Namely, first Raimall, second Birsingh, who founded Ajmera in Malwa, still held by his decendants: third, Ratan Singh, father of Mira Bai, the celebrated wife of Kumbha Rana".

Page 950

"Jodha had fourteen sons, Duda the 4th"

Duda—Clan Mertia, fiefs of chieftanship Mertia,

Remarks:- Duda took Sambhar from the Chuhans. He had one son Biram, whose two sons Jaimall and Jagmall founded the clans of Jaimallot and Jagmallot"

Page 946

"Rayamall's 17th son Jagmall was the founder of the Jagmallot."

"The fourth son Duda, established himself on the plains of Merta. and his clan the Mertia is numerous and has always sustained the reputation of being the first swords of Maru. His daughter was the celebrated Mira Bai, wife of Rana Kumbha, and he was the grand-sire of the heroic Jaimall, who defended Chitor against Akbar."

Max Arthur Maculiffe.......'The Sikh Religion, Its Gurus Sacred-Writtings and Authors

"Born about A. D. 1504 (1561 Vikram.)

Page 349.

"Tulsidas, according to all received accounts, lived nearly a century after Mira Bai but some poets have made them contemporaries".

Page 350.

"Further inquary led to the identity of the strolling hermits with Akbar and his favourits minestrel. Mira Bai's fate was now sealed, her husband suspected that she had been polluted by Akbar, the Emperor. For this, there was but one penalty in that age. She must die. Mira Bai's father-in-law sent her a Cobra in a box........"

Page 352,
"Rana Sanga, Mira's Father-in-law was still abdurate and determined that she should die by the sword, but no one could be found to act as an excutioner. She was then ordered to kill herself in what ever she thought fit. By this time she was a widow. She plunged in the nearest river to die in obedience to the order she had received"
Page 354
"Mira Bai with loving devotion traversed every grave and path way of Brindraban and having fixed the sweet image of Krishna in her heart returned to her father-in-law still obdurate, she went on a pilgrimage to Dwarka, where Krishna reigned after leaving Mathura"

H. H. Wilson ... ."Religion of the Hindus"
Page 136. 'Mira Bai's'
"These may be considered as forming a subdivision of the preaceding, rather than a distinct sect, altthough, in the adoption of a new leader, and the worship of Krishna under a peculiar form, they differ esentially from the

followers of Vallabha; at the same time it is chiefly amongst those sectarians, that Mira Bai and her diety, Ranchora are held in high veneration, and, expcet in the weast of India it does not appear that she had many immediate and exclusive adherents".

'Encyclopedia Britanica', Vol 6 Page 205,

"(Mira) Born about A.D. 1504.

A sub sect is that founded in the 16th centuary by Mira Bai, a famous princess and poetess of Rajputana. Here the special object of worship is Krishna Ranchora."

मेकालिफ भी मीरां का दैवी शक्ति से बचा लिये जाने का और उसी की प्रेरणा से वृन्दावन जाने की कथा देते हैं। वृन्दावन पहुंच कर जीव गुंसाई से मिलने की वार्ता का भी उल्लेख मिलता होता है।[1]

---

१ पेज ३५३ के फुटनोट पर जीव गुंसाई का समय ई० सं० १४८५–१५३३, (वि० १५२४–१५९० सं०)

Selections From Classical Gujrati Literature

VOLUME-1

Edited by—**Irach Jehangir Sorabji Taraporewala**

B. A., Ph. D., Bar-at-Law.

5. MIRAN BAI (1499-1547)

P. 372.

"A mass of pseudo historical tradition and legend has grown round the name of the greatest woman writer of any Vernacular in India. Even her traditional date and the name of her husband are wrongly given. Tradition mentions Rana Kumbha as her husband but she was really the wife of Kumar Bhojraj, the eldest son of Rana Sangram Singh, the heroic Chief who fought against Baber. Rana Sanga (to call him by his more popular name) was the grand son of Rana Kumbha, whom legend mentions as the husband of Miran. Miran was thd daughter of Ratan Singh a younger prince of the royal house of Jodhpur of the clan of Rathors and was born, A. D. 1499, in the village of Kudki in the district of Medta, which was under the governship of her father at that time.

She was married in A. D. 1517 into the Royal house of Chitor, with which family her own had been closely united during a great many generations previous. In her father's home and from her earliest childhood she had seen the worship of krishna performed daily, for her grand father Dudaji who was a great devotee of the Divine Cowherd. Miran assisted very joyfully at all these daily acts of worship. Thus the seeds of devotion were already sown in her very impressionable nature quite early. A tale of her childhood is related that she chose the clay image of Girdharlal to be her husband and that she used to regard the Diety as her spouse with all the seriousness of her nature.

On her troubles in her husband's family a very large number of tales exist. But they have the evident stamp of being later inventions and most of them present her as an undutiful wife, a thing entirely contrary to all Hindu nations of womanhood. Why or how such tales grew up is hard to say probably. They were the inventions of later and bigoted followers of the Miranbai Sect. The fact is that Miran's married life was a very short one. Her husband died a few years after the

marriage. There seems to be at this misfortune in one of her songs, when she speaks of herself as a virgin and in another when she says that she was widowed shortly after her marriage. Her real sufferings began after the death of her husband. Very shortly after the death of Kumar Bhojraj her illustreous father-in-law, Rana Sanga died and in the stormy days that succeeded the treatment meted out to Miran was unduly harsh. Her two brothers in-law, who had succeeded to the throne of Chitor one after the other upon the death of Sanga, resented the pious life which the widowed princess who now bent upon leading, and the company of sages and holy men which she entertained. But in proportion to the undiscerning harshness of the Ranas, Mira's fame for piery and loving kindness began to spread; and she, whom they thought to be a blot on the unsullied honour of Mewar was destined to be the greatest glory of a glorious race. Legends have probably ascribed the harsh measures of her brother-in-law to her husband. She was ultemately obliged (according to some, commanded) to leave Chitor; so she went back to her childhood's home at Medta, where her uncle Viramji

was ruling. But here too she was not allowed to live her life as she liked best, such was the rigid code of propriety at the Rajput court, and so she ultemately had to turn her wearied heart towards Brindaban, the home of her beloved Girdharlal. But her wanderings were not yet over. She lived for a time (so the story goes) in kashi before she reached Brindabán. But her last earthly home was Dwarika, also closed knit with the name of Krishna. Here her last days were passed in fullest enjoyment of peace and in the worship of her beloved God. The date of her death is not quite certain, but the probability is that it took place in A. D. 1547 as all stories about her cease a couple of years before this date. Legend says that she was bodily absorbed into the image of Krishna while singing her last song.

Miran's songs have been current in three Vernaculars—Hindi, Marwari and Gujarati. And during the centuries that have elapsed since her time a great lot of mixing of dialects in her songs has came about. It is probable, however, that she herself a Rajputanī used the mixture of these three dialects in her later years. But her very popularity in all these

three Vernaculars has made it extremely difficult to determine what is her own ginuine work and what is later forgery. Women have especially delighted in writing down verses depicting the deep yearnings of their hearts and by adding in the last line the words characterstic of Miran मीरां के प्रभु गिरधर नागर। to pass them off as her work. Many of the songs dealing with the miracles, with which later times have embellished her life story, seem to have had such a spurious origin. In some cease glaring anachronisms betray them but in the vast majority we have no means of making out the genuine from the imitation. There are, however, enough of genuine ones which tell us of the secret, springs of a devoted heart. Disillusioned in the joys of life the virgin widow takes refuge in the chosen husband of her childhood—her beloved Girdhar and gains a contentment and peace thereby which the proudest queen of Chitor never possessed. The language is always homely and direct for she spoke not to cultured Pandits but to the masses of her fellow men and women and they have responded to her philosophy and have loved and worshipped her name with a deep and grateful

devotion. Thus today Miran has a power to awaken the answering echoes from more hearts than any other vernacular writer of India, except perhaps tulsi and kabir.

Her reputed writings are the following:—

1. नरसी जी का मायरा This is a poem celebrating her great predecessor Narsinha Mehta.

2. A commentary on Jayadeva's Gita-govinda. It is doubted by many that this is really her work. Some attribute it to Rana Kumbha and this is probably an effect or perhaps a cause of the linking of Miran's name with his in the popular mind.

3. राम गोविन्द a poem known only by the name.

4. Miscellaneous padas. Chiefly singing the praises of Girdharlal. These are most widely sung and loved all over India and these small gems of thought constitute her chief claim to greatness."

The Modern Vernacular Literature of Hindustan.

by George A Grierson, B.A., B.C.S.

Page 12.

20. मीरां बाई Mira Bai, the Marwari. Fl. 1420 A. D. Leaving Bidyapati and his successors, we may now turn to great poetess of Northern India, was pouring forth her passionate hymns to Krish'n Ran'chhor. This remarkable woman, who flourished in the year 1420 A.D., was the daughter of Raja Ratiya Rana, the Rathaur of Merta and was married in Sambat 1470 (A.D. 1413) to Raja Kumbh Karan son of Mokal Deb, of Chitaur. Her husband was killed in Sambat 1534 (A. D. 1469) by his son Uda Rana. Her great work is the Rag Gobind, and she also wrote a much admired commentry on the Gita Govind of Jayadeva. She was devoted to that form of the god Krishna known as Ranchhor, and the tradition is that she worshipped his image with such favour that it came to life, and the god, descending from his shrine embraced her, crying "Welcome Mira." On hearing these words, overcome with rapture,

she died in his arms. According to Wilson she was much persecuted to her husband's family on account of her religious principles. She became the patroness of vagrant Vaishnavas, and visited in pilgrimage Brindaban and Dwarika. Previous to leaving the later place, she visited the temple of her tutelary deity to take leave of him, when on the completion of her adoration the image opened, and Mira leaping into the fissure it closed and she finally disappeared. Some idea of the popularity of her writings may be gained from the fact that I have collected from the mouths of the people of Mithila songs purporting to be by her.

21. कुम्भकरण Kumbhkaran, King of Chitaur (Mewar) husband of Mira Bai. Fl 1419 A. D.

He came to the throne about 1400 A. D. and was killed by his son Uda in the year 1469 A.D. According to Tod (289; calc. ed. i, 308) he was a skilled poet, and wrote a commentry to the Gita-Govinda. He is said to have been originally instructed in poetry by his wife, the famous Mira Bai.

22. नानक Nanak the Bedikhatri of Tilwari (see Wilson, Essays, ii, 123) in the Panjab. B. 1469 A.D.; d. 1539 A. D.

The celebrated founder of the Nanakpanthi sect, and part author of the Granth.

Selections from Hindi Literature, Book IV Compiled by. Lala Sita Ram. B. A. Sahitya-ratna."

5. MIRABAI

P. 144.

"Mirabai, according to Sir George Grierson, the one great poetess of India, was the daughter of Raja Ratna Singh Rathor, second son of Duda and grand son of Rao Jodha, founder of Jodhpur. Duda's brother, Bika, was the founder of Bikaner and Duda himself restored the old and deserted town of Merta on the road from Ajmer to Jodhpur at a distance of 80 miles from the later. Ratan Singh had received twelve villages of Merta State and founded a village named Ratnas. One of the villages allotted to Ratan Singh was Kurki and here Mirabai was born. The country about 40 miles around is still called Mirabai ka Des (Mirabai's country) She was married to Bhojraj, eldest son of the famous Rana Sanga of Chitor. It was expected that Mira would in time become Queen of Chittor but unfortunately Bhojraj predeceased his father.

The date of Bhoj's death has not yet been ascertained but it was evidently between 1573. and 1583. V.E. Duda, Viram and Jaimal were well known Vaishnavas and a temple of Chaturbhuj built by Duda is still an object of worship in Merta. There is no wonder, therefore, that Mira from her very childhood imbibed that love of Lord Krishna. which is prominent in her writings and has secured for her a high place among the votaries of the Lord. A pretty story is told of how she attached herself to Krishna in her childhood. It is said that a marriage party was passing near the windows of the palace with a child bridegroom. Mira in a fit of childish curiousity asked her mother who her bridegroom would be. The mother, smiled and pointed out the image of Krishna Ranchor installed in a temple inside the palace.

In her husband's family, Mira took the image which she worshipped and to which she sang songs, and even danced ecstacy. She always slept on a deer-skin spread on the ground and mixed freely with sadhus. This irritated her husband's family and several conversations between Mira and her husband's sister, Uda, still preserved, depict her unshaken

love for the Lord krishna and her high regard for sadhus. It is said that vexed by treatment in her husband's family, she went over to Brindaban where she was worshipped like a saint. Her husband repented and putting on the dress of an ordinary beggar, went to the temple in Brindaban where Mirabai lived, and prayed for alms. Mira said "What can you exepect from a beggar woman ? I can only give you my blessings." Bhojraj said, "you alone. can give me what I require" Mira said "What can I do for you." Bhojraj thereupon said, "Pardon, me" and laid aside his beggar's dress. Mira recognised her husband at once and forgave him and at his request went back to Chittor.

Mira's presoution, however commended, shortly after Bhojraj's death. It is said that she applied to Tulsi Das for advice.

P. 146

On receiving the reply (from Tulsi Das) Mira was confirmed in her resolve and left chittor. Various stories of her presoution by Ratan Singh have been handed down to us. The most famous of these in an attempt to poison her. Ratan Singh, on the advice of

bania courtier of the Bijawargi tribe, had a cup of deadly poison prepared.

P. 147

An other story is that Mira died after drinking the poison but cursed the courtier saying that his family would never have both wealth and progency and the Bijawargis of Jodhpur still believe that on account of this curse they are either childless or poor. It is also a fact that no Bijawargi is ever trusted in the management of the state or receives a high office.

P. 148

According to some, Mirabai went over to Merta and the date of her departure from Chittor also marks. The advent of the saries of calamities on the Sisodia family.

A number of miracles are recorded in Vaishnava books as having been performed by Mira. Jaimal was also a Vaishnava and a companion of Mira in devotion."

लोक-गीत परम्परा से प्राप्त कुछ पद

मारवाड़ी जनता द्वारा सुरक्षित मारवाड़ी लोक-गीतों में पाये जाने वाले वे कुछपद जो मीराँ के नाम पर प्रचलित हैं।

१–"सुत्यो राणो जी निसभर नींद ओ।
कोई सुत्याँ ने सुपणो राणा जी ने आयो।
साथियो रे भाई करो ए विचार ओ।
साथिड़ा ओ कोई म्हाँरी मेड़तणी भगवाँ पहर लियाँ।
सुपणो राणा जी आल जंजाल ओ।
राणा जी पड़्योरे जूनागढ़ रो मारग रे।
राणा जी कोई दीप उगायो मीराँ बाई के देस।
बूझ्यो राणा जी गायाँ रो ग्वाल ओ।
कोई देस बताओ मीराँ बाई रो।
ओई राणा जी मेड़तणी रो देस।
कोई साल थोड़ा सरवर भोगना ओ।
बूझ्यो राणा जी मालीड़ा रो पूत।
कोई बाग बतावो मीराँ बाई रो।
ओई राणा जी मीराँ बाई रो बाग।
कोई आम्बूतो पाक्याँ, नींबू रस भर्‌या।
सामी मिल गयी साधुड़ां री जमात।
बींच में तो मीराँ बाई घूमती ओ राम।
मीराँ बाई थांरो बिड़द बतलाय।
मेड़तणी, बिड़द बतलायाँ म्हें थांने पूजस्याँ।

मोड़ो लख्यो असल गंवार ओ राणा ।
पेहली तो लखतो बैकुण्ठां ले जाती ओ राणा ।"

अर्थ:—साल-कीचड़, भोमना-भोगने योग्य ।

उपर्युक्त पद से यह स्पष्ट होता है कि मीराँ सधवा थीं । इस पद की अभिव्यक्ति से ओझा जी के मत की पुष्टी होती है । ओझा जी का कहना है कि सीधे मेड़ते से ही मीराँ द्वारिका गयीं हैं । इस पद से भी यही व्यक्त होता है कि मेड़ते से ही मीराँ द्वारिका गयीं हैं—जूनागढ़ मार्ग में पड़ेगा ।

२—"ओ ल्यो राणा जी देस थांरो ।
बन में कुटियाँ बनास्याँ ।
राणा जी म्हें तो गोविन्द का गुण गास्याँ ।
राणा जी म्हें तो साधां के संग रहस्याँ ।
राणा जी रुसे म्हाँरो कछुए न बिगड़ै ।
हर रुस्याँ मर जास्याँ ।
विष को प्यालो राणा जी भेज्यो ।
कर चरणामृत पी जास्याँ ।
सिसोदियाँ म्हें तो साधाँ के संग रहस्याँ ।
ओ ल्यो राणा जी थांरी सुरंग चुनरियाँ ।
भगवा वसतर रगाँस्याँ ।
राणा जी म्हें तो गोविन्द का गुण गास्याँ ।
सिसोदिया म्हें तो साधां के संग रहस्याँ ।

'चुनरी' लौटाने की घटना से स्पष्ट होता है कि मीराँ सधवा थीं ।

३—"ए मीराँ थांरो काँई लागै गोपाल ।

राणो जी बूझे बात।
काँई थांरो लागे गोपाल।
सरप पिटारो राणो जी भेज्याँ।
द्यो मीराँ के हाथ।
ए मीराँ थांरो भायलो गोपाल।
मीराँ बैठी महल में जी।
छापा तिलक लगाय।
बतलाँयाँ बोली नहीं रे,
राणो जी रह्यो बल खाय।
काड़ कटारो खड़्यो हुयो जी,
अब बताय तेरो गोपाल।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर,
जोत में जोत मिलाय।"

"ए मीराँ थांरो भायलो गोपाल" पंक्ति विशेष ध्यान देने योग्य है। भायलो—यार।

४—"गढ़ से तो मीराँ बाई ऊतरी
करवा लीना जी साथ
डाँवो तो छोड़्यो मीराँ मेड़तो
पुस्कर न्हावा जाय।
मेरो मन लाग्यो हर के नाम
रहस्याँ साधाँ के साथ।
राणा जी ओठी भेज्याँ।
दीजो मीराँ बाई रे हाथ
घर की मानन अस्तरी

मुरड़ चली राठौड़ ।
लाजै पीहर सासरो, लाजै तेरो सौ परिवार
लाजै मीराँ जी थाराँ माइ र बाप चोथो वंश राठौड़ ।
मीराँ बाई कागद भेज्याँ
दीजो राणा जी रे हाथ
राणो जी समझ्यो नहीं, ले जाती बैकुण्ठाँ
सिसोदिया समझ्यो नहिं, ले जाती बैकुण्ठाँ
बागाँ में बोली कोयलियाँ, बन में दादुर मोर
मीराँ ने गिरधर मिलिया, नागर नन्दकिसोर ।"
अर्थ:—डाँवो-बायाँ, ओठी-पत्र ।

५—"उंभी मीराँ सरवरिया री पाल
मन में तो आमण-दूमणी ।
भर भर धोबा धोये नैन, साधाँ रे संग जोवति ।
तू छे ए मीराँ भले घर री नार, गेले बीच क्यूं ख ी ?
के थांरो पियो परदेस, के थांरी सास लड़ी
चल्यो जारे असल गंवार तने मीराँ की के पड़ी
चल्यो जा रे असल गंवार तने मेरी के पड़ी ।
म्हांरे हर गया बनवास ने, संदेशा ओ हर ने ज्यूं खड़ी ।
पोवे मीराँ मोतीड़ारो हार, हीरा री राखड़ी
राधा रुक्मण को नोसर हार, किसन जी की राखड़ी ।
ऊड़ जा ऊड़ जा सरवरियाँ रा हंस ओ
सुरंग थांरी पाँखड़ी ।
कद आसी गोपिया वालो कान्ह
फरुंखे बाई आँखड़ी ।

सतगुरु मिलिया चतुर सुजान
हीराँ रा कहिये पारखी ।"

अर्थः—आमण-दूमणी—द्विधा जनक अनिश्चितता मिश्रित उदासी की अनुभूति ।
जोवति—प्रतीक्षा करती, किसी नियत स्थान और समय प्रतीक्षा करती हुई ।

यह पद "इन सरवरिया री पाल" का पाठान्तर मात्र कहा जा सकता है ।

६—"कोई कछु कहो रे रंग लाग्यो
रंग लाग्यो, भ्रम भाग्यो
लोग कहे मीराँ भई बावरी
भ्रम दुनी ने खा गयो । कोई कहे रंग लाग्यो
मीराँ साधां में यूं रम बैठी
ज्यूं गूदड़ी में तागो
सोने में सुहागो ।
मीराँ सूती अपने भवन में
सतगुरु आय जगा गयो
ज्ञानी गुरु आय जगा गयो ।"

पद में असंगति है । अधिक सम्भव है कि कई पदों के विभिन्न अंश मिश्रित हो मीराँ के नाम पर चल पड़े हों, व शायद पद ही प्रक्षिप्त हो ।

७—"राणाँ जी म्हाँने या बदनामी लागै मीठी ।
थांरो रमैयो मीराँ म्हाँने बतावो
नाहीं तो भगति थांरी झूठी ।

म्हाँरो रमैयो थांरे घट में विराजै
थांरे हिये की क्यूं फूठी ?
प्रेम सहित में करूंमी रसोई
म्हाँरे गिरधर के भोग लगाई।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर
रंग दियो रंग मजीठी।
अर्थ—मजीठी—कभी न छुटने वाला रंग।

८—"मेरो नाम लाग्यो हरि के भजनाँ में
गोंदगिरी को ए मीराँ बाई चूतरों
कोई बैठ्या साध पचास।
साधां री संगत ए मीराँ बाई छोड़ द्यो
थे उठ बैठो ए सुहेलियाँ री माय।
साधां की संगत माँ म्हाँरी ना छूटे।
म्हें छोड़ियो सुहेलियाँ रो साथ।
धोला बसतर ए मीराँ बाई छोड़ द्यो
थें तो ओढ़ो दिक्खनी चीर
धोला वसतर ए माँ म्हाँरी ना छूटे
म्हें छोड़या दिक्खनी रो चीर।
काठ की माला ए मीराँ बाई छोड़ द्यो
थे पेहरो नोसर हार।
काठ की माला ए माँ म्हाँरी ना छूटे
म्हें तो छोड़्यो नोसर हार
पिता थांरो ए मीराँ बाई यूं कह्वै
म्हाँरी पगड़ी री पत राख

जाओ घर, जाओ घर पिता जी आपणे
थांरी पत राखे भगवान ।
माता थांरी ए मीराँ बाई यूं कह्वै
मेरे चुड़ले की पत राख ।
जाओ, जाओ ए घर आपणे
थांरे चुड़ले री पत राखै भगवान ।
भाई थांरो ए मीराँ बाई यूं कह्वे
म्हाँरे घुड़ला री पत राख ।
जाओ घर, जाओ घर बीरो जी आपणे
थांरी पत राखै गोपाल ।
भावज थांरी ए मीराँ बाई यूं कह्वै
म्हाँरे घूंघट री पत राख ।
जाओ घर, जाओ घर भावज आपणे
थांरी पत राखे ए गोपाल ।
म्हाँरी तो बरजी ए मीराँ बाई ना रह्वै
थांरो मन माँगे जठ्ठे जाय ।
थांरी तो बरजी ए माँ म्हाँरी न रहवाँ
म्हाँरे करम लिख्यो गोपाल ।
म्हें तो चाल्याँ ए माय म्हाँरी द्वारिका
म्हाँरी राम ही राम ल्यो
लिखन वालाँ ए माँ म्हाँरी लिख दिया
इ्‌थ कोई मेटणवालो नाहिं
ए माँ म्हाँरी राम ही ल्यो ।"

९—"राणा जी महल पधारिया जी

ज्ञर केसरिया साज।
राणी जी पाछाँ फिर गया जी
राणो जी जन्याँ म्हाँसू लाज।
राणा जी बुझै काँई ओ लागै गोपाल
राणी जी मुजरो करो
सनमुख उबास्याँ
म्हें छे राणा चित्तौड़ काँ
और बरब्साँगाँ थांने राज
मीराँ ने बुझे काँई ओ लागे गोपाल।
साध संत हिरदै बसे
हथलेवे को लाग्यो पाप।
राणा जी बुझै काँई ओ लागे गोपाल।
ढ्योढ़्याँ मे बुझो काँई ओ लागै गोपाल।
राणा जी खड़ग संवारियाँ
ले खांड़ो तरवार।
किसड़ी मीराँ ने राणो जी मारसी
हो गई एक हजार
मीराँ ने बुझो काँई ओ लागे गोपाल।
राणा जी बतलावै काँई ओ लागै गोपाल।"

पद विशेष ध्यान देने योग्य है। पद से मीराँ का सधवा होना ही साबित होता है।

अर्थः—उबास्याँ—खड़ा हूं, सम्मान सूचक होने के कारण स्याँ हो गया। ढ्योढ़्याँ—रानियों के रहने का स्थान, जनान खाना, बतलावै—बात करे, यहाँ अर्थ होगा पूछते हैं।

१०—"राणी जी महलाँ से उतरी
ऊंटा कसियो ए भार ।
डाँवो तो राणी छोड़्यो मेड़तो
पूठ दयी चित्तौड़ ।
म्हाँरा रे भाई ओठिया
मीराँ ने लाओ ए समझाय ।
घर को मानन राणी रुस गया रे
रुस गया राठोड़ ।
म्हाँरा रे भाई साँडिया रे बीर
जाजो सौ सौ कोस ।
म्हाँरा रे भाई साँडिया रे तेरो ऊंट पाछो ले जाय
इण राणा जी रे राज माँ पानी पिवानो दोस ।
म्हाँरी एक न मानी बात राणा रे, ले जाती बैकुण्ठ माँहि ।
बागाँ में बोली कोयली जी, बन में दादुर मोर
मीराँ ने गिरधर मिलिया नागर नन्दकिसोर ।"

अर्थ:—डाँवो—बायाँ, पूठ—पीठ, ओठिया—पत्र वाहक, साँडियो—"सारथी", घर को मानन—घर का मालिक

११—"मीराँ की मायड़ यूं कह्वै
सुन मीराँ म्हाँरी रे बात
साध संगत मीराँ छोड़ द्यो
बैठो भाभियाँ रे माय ।
म्हूंरो मन लाग्यो साध से ।
साध संगत मिलावे राज राम से ।
काटै जीवन का जंजाल ।

साध संगत माता ना छूटै
छूटियो भाभियाँ रो साथ।
काठा की कन्ठी मीराँ छोड़ द्यो
पहिरो नोसर हार।
काठ का कन्ठी माता ना छूटै
छोड़ दियो नोसर हार।
रमस्याँ भगताँ के माँहि।"
१२–"ऊंभी मीराँ सरवरियाँ री पाल
उदासी मीराँ क्यूं खड़ी
थे छो भले घर की नार
के थांरो पियो दूर काँई ओ थांने सास लड़ी।
ना म्हाँरा पियो दूर ना सास लड़ी
आ न आ असल गंवार
मीराँ की लने के पड़ी
आज म्हाँरा हर गया बनवास ने
संदेशा ल्यूं खड़ी।
गया है तो मीराँ जान भी द्यो
थांरो काँई ओ ले गया गोपाल
ले गया ले गया म्हाँरा हर जी सोलह सिंगार
ढक गया प्रभुजी सजन किवाड़
ताला जड़ कूंची ले गया।
कद म्हाँरा प्रभु जी आवे बनबास
संदेशा ल्यूं खड़ी।
उड़ जा उड़ जा सरवरिया रा हंस

सोने में गढ़ा द्यूं तेरी चाच, रुपे में थांरी पांखड़ी ।
मीराँ पोवै मोतीड़ारो हार, भल गूंथे राखड़ी
फरुखे म्हाँरी आखड़ी ।
आज म्हाँरा प्रभु जी आया बनवास
फरुंखे म्हाँरी आखड़ी ।"
यूं कहे मीराँ बाई ।

पद ५ भी देखें। यह पद नं० ५ वाले पद का गेय पाठान्तर ही प्रतीत होता है।

१३–"सुत्या राणा जी नींस भरी नींद
सुत्यो राणा ने सुपणो भी आयो
थांरी मीराँ मेड़तणी भगवाँ लियो
मीराँ मेड़तणी ए भगवाँ लियो
सुपणो तो है आल जंजाल
मीराँ तो मेड़तणी बैठी बाप के
उठो रे साथीड़ा कसलो घोड़ा जी
दिनड़ो उगास्याँ मीराँ जी के देस में
चाल्यों राणा जी ढलती सी रात
दिनड़ो उगायो मीराँ जी के देस में ।
खूंट्या टाँगो ए घुड़ला जी ।
तम्बूड़ा तना दो चम्पा बाग में ।
आयो आयो साधु ड़ारो साथ
भाय तो मीराँ आवे घूमती ओ राम ।
छोड़ो ए मीराँ साधु ड़ारो साथ
लाजै पीहर और थांरो सासरो

नहिं छोड़ां साधुड़ा रो साथ
भल लाजो पीहर और सासरो
ओढ़ो ए मीराँ दिक्खनी रा चीर
भगवा तो वसतर ए छोड़ द्यो
बालूं ए जालूं थांरा दिक्खनी रा चीर
प्यारा लागे ए धोला वसतर।
चुड़लो तो पहरो ए हाँथी दाँत को
पहरो ए नोसर हार।
चुड़लो तो मोलूं गढ़ के काँगरे
तोड़ूं ए नोसर हार।
आयी आयी राणा जी ने रीस
काढ़ कटारो मीराँ जी पर बायो
आयी आयी राणा जी ने रीस
एक मीराँ की सहस होय गयी।"

इस पद को पद नं० १ का पाठान्तर कहा जाता है। ओझा जी के मत का समर्थन कई लोकगीतों से होता है।

'मोल्यूं'—फोड़ दूं, नष्ट कर दूं, 'चुंड़लो तो मोल्यूं' अर्थात् 'चुंड़ियाँ फोड़ दूं'।

इस अभिव्यक्ति के आधार पर मीराँ का सधवा होना ही सिद्ध नहीं होता अपितु पति 'राणा' के प्रति मीराँ की भावना भी सुस्पष्ट हो उठती है। 'दक्खिनी रो चीर' अर्थ—मूल्यवान वस्त्र! दक्षिण में बना हुआ वस्त्र अति मूल्यवान और बढ़िया होता था—ऐसी एक मान्यता राजस्थान में आज भी प्रचलित है।

१४—"मीराँ ए ज्ञान धरम की गाँठड़ी
हीरा रतन जड़ाओ जी।
लोग थांरी निंदरा करे, साधों में मत जाओ जी।
कुण गुरु सम्झायौ, घर को धन्धो छोड़्यो जी।
लोग थांरी निंदरा करै, साधां में मत जाओ जी।
कने कहोगी बाई माइड़ी
कने कहोगी बाई बीरो जी
कूण थांराँ पगलिया चापसी
कूण बूझे थांरे मन री बात
बुढ़ी टेढ़ी म्हाँरी मायड़ी
बीराँ भर्‌यो रे संसार।
पावड़ी पगलियाँ चापसी, माला बूझे मन की बात
हरिदास दर्जी की बीनती जी, धोला वसतर सिमाओ जी
देर नगारो मीराँ चढ़ गयी, माता हियो मत हारो जी।
बागाँ में बोली कोयली, बन में दादुर मोर
मीराँ ने गिरधर मिलिया, नागर नन्दकिसोर।"

अर्थ:—निंदरा—निंदा, कुण—कौन, कने—किसको, बीरोजी—भाई, बीराँ—बीर का बहुवचन। पगलिया चापसी—पैर दबावेगा। पावड़ी—खड़ाऊं। देर नगारो—नगारा देकर, डंके की चोट। हियो मत हारो जी—इतनी उदास, निराश न होओ।

इस पद से स्पष्ट ही माँ और भाई का होना साबित हो जाता है। 'हरिदास दर्जी' की 'बीनती' के कारण मीराँ ने घर त्यागा, यह भी स्पष्ट हो उठता है। यह हरिदास कौन हैं ? जिसके कहने पर मीराँ के डंके पर चोट कर चल पड़ती है और उस पर गर्व भी करती हैं जैसा कि पद की अंतिम पंक्तियों से स्पष्ट है। क्या यही 'हरिदास' अन्य पदों में 'रैदास' हो गये हैं ? या यह 'हरिदास' ही मीराँ के 'जोगी' है ? पद पर विशेष ध्यान देना ही उपयुक्त है।

सहायक साहित्य

प्राप्त-संग्रह

१–'मीराँ बाई की पदावली',—श्री परशुराम, चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।

२–'मीराँबाई',–डा०श्री कृष्ण लाल, एम० ए०, डी० फिल०, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग ।

३–'मीराँ की प्रेम-वाणी',–पं०रामलोचन शर्मा 'कण्टक' एम० ए०, बम्बई पुस्तक भंडार, कलकत्ता ।

४–'मीराँ पदावली'–श्रीमती विष्णु कुमारी 'मंजु', हिन्दी भवन, लाहौर ।

५–'मीराँ की प्रेम-साधना'–भनेश्वर नाथ मिश्र, 'माधव', एम० ए०, वाणी मन्दिर, छपरा ।

६–'मतवाली मीराँ'–श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, मानस पीयूष कार्यालय, दारागंज, प्रयाग ।

७–'मीराँ'–श्री महावीरसिंह गहलोत, शक्ति कार्यालय, दारागंज, प्रयाग ।

८–'मीराँ और उनकी प्रेमवाणी'...श्री ज्ञानचंद जैन, एम० ए०, विशाल भारत बुक डिपो, कलकत्ता ।

९–'मीराँ'......श्री श्याम पाण्डे, इन्दौर ।

१०–'मीराँ बाई का काव्य'......श्री मुरलीधर श्रीवास्तव, साहित्य भवन लि०, इलाहाबाद ।

११–'मीराँ माधुरी'.....श्री ब्रजरत्न दास, बी० ए०, एल० एल० बी०, हिन्दी साहित्य कुटीर, काशी ।

१२–'श्री मीराँ बाई जी'........श्री सीताराम शरण भगवान प्रसाद 'रुपकला' खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर ।

१३–'मीराँ मन्दाकिनी'......श्री नरोत्तम स्वामी जी, यूनिवर्सिटी बुकडिपो, आगरा ।

१४–'मीराँबाई की शब्दावली'....श्रीबालेश्वर प्रसाद, बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग ।

१५–'मीराँ-स्मृति-ग्रंथ'......बंगीय हिन्दी परिषद, कलकत्ता,

१६–'मीराँबाई का जीवन चरित्र'......मुं० देवीप्रसाद मुंसिफ जैन प्रेस, लखनऊ ।

१७–'श्रीमती मीराँ बाई'.......गुराँदत्त खन्ना ।

निबन्ध

१–'मीराँ वा मीरा'.......स्वर्गीय पुरोहित श्री हरिनारायणजी, बी०ए०, विद्याभूषण, 'सन्तवाणी' पत्रिका, मंगलप्रेस, जयपुर।

२–'मीराँबाई की भक्ति का स्वरूप'...श्री परशुराम चतुर्वेदी, दीपावली विशेषांक लोकवाणी (१९४९) जयपुर ।

३–'मीराँ बाई'......'कल्याण कल्पद्रुम' (God number) जनवरी, १०३४ गीता प्रेस, गोरखपुर, सम्पादक सी०ले० गोस्वामी, एम० ए०, शास्त्री ।

४–'मीराँ बाई'........उपर्युक्त पत्रिका के सन् १९३४ अगस्त, दिसम्बर अंक, लेखक.. बांके बिहारी लाल ।

अन्य भाषाओं में लिखित ग्रन्थ

१–'मीराँ, प्रेम दिवानी' (गुजराती), श्री रामचन्द्र नारायण ठाकुर, धी सन्देश लिमिटेड नन्दलाल चुणीलाल, बीड़ींवाला बम्बई।

२–'मीराँ बाई नाँ भजनो' (गुजराती)........श्री हरिसिद्ध भाई व० दिवेटिया, सस्तुं साहित्यवर्द्धक कार्यालय, मुंबई।

३–'वृहद् काव्य दोहण', (गुजराती)......श्री इच्छाराम सूर्य-राम देसाई, बम्बई।

4. 'Gorakhnath and the Kanphata Yogis'........ G.W.Briggs. प्रकाशक—Y.M.C.A. Publishing House, Calcutta.

5. 'Annals and Antiquities of Rajasthan'....... By Col Tod

6. 'Britanica Encychlopedia' Vol, VI & II

7. 'The Sikha Religion', Maculiffi

8. 'Religion of Hindus' *by* H. H. Wilson *by* Farquhar.

9. 'Selections from Hindi Litrature' Vols Book II, IV, VI part II Compiled *by* Lala Sita Ram, B. A. साहित्य रत्न— Published by the C. U. 1924.

10. 'Selections from Gujarati Litrature' Vol Book II
Edited *by* Irach Jehangir Sorabji Taraporewala, B. A. Ph. D. Published *by* the C. U. 1924.

अंशतः सहायक ग्रन्थ

१–'वीर विनोद'……कविराजा श्यामल दास जी…।

२–'उदयपुर का इतिहास', श्री गौरीशंकर हीराशंकर ओझा ।

३–'राजपूताने का इतिहास' प्रथम भाग,……श्रीजगदीश सिंह गहलोत, हिन्दी साहित्य मन्दिर, जोधपुर ।

४–'महाराणा साँगा'……श्री हरिविलास सारडा ।

५–'मेवाड़ का संक्षिप्त इतिहास'…श्री देवनाथ पुरोहित ।

६–'योग-प्रवाह'…श्री पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, काशी विद्यापीठ, बनारस ।

७–'कबीर का रहस्यवाद'…डा० रामकुमार वर्मा, एम० ए०, साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग ।

८–'संत कबीर (संक्षिप्त) श्री रामकुमार वर्मा, एम० ए०, साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग ।

९–'हिन्दी साहित्य का इतिहास'……आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

१०–'हिन्दी साहित्य की भूमिका'……श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी रत्नाकर प्रेस बम्बई ।

११–'कबीर' श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी ।

१२–'भगवान रविदास की सत्य कथा'……महात्मा रामचरन 'कुरील', वाजपेयी प्रेस, कानपुर ।

१३–'कबीर वचनावली'………श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

१४–'भक्तमाल'………नाभादास (प्रियादास की टीका) ।

१५–'शिवसिंह सरोज'………श्री शिवसिंह सेंगर ।

१६–'ध्रुवदास'–पद
१७–'वियोगी हरि'–पद
१८–'महिला मृदुवाणी'–मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ, जोधपुर
१९–'जयमल वंश प्रकाश'..........ठा० गोपाल सिंह राठौर मेड़तिया ।
२०–'मीरा, सहजो और दयाबाई' ....श्री वियोगी हरि, साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग ।
२१–'हरिराम की व्यास की वाणी ।'
२२–'हिन्दी-विश्व-कोष ।'
२३–'भक्त-नामावली'.........प्रियादास ।
२४–'नाथ-संप्रदाय.'............श्री हजारी प्रसाद जी द्विवेदी, हिन्दुस्तानी एकेडमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद ।
२५–'राजस्थानी भाषा और साहित्य'..........पं० मोतीलाल मेनारिया एम० ए०, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।
२६–'अष्टछाप-और वल्लभ संप्रदाय'......लेखक डा० दीनदयाल गुप्त, प्रकाशक......हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।
२७–'दो सौ बावण वैष्णव की वार्ता ।'
२८–'चौरासी वैष्णव की वार्ता ।'
उपर्युक्त दोनों वार्ता पुस्तकों के प्रकाशक........वैष्णव रामदास जी गुरू श्री गोकुलदास जी ने छपवाया (रणछोड़ पुस्तकालय) डाकोर सं० १९६० ।